प्रकाशक
लोक सेवक प्रकाशन,
बुलानाला, बनारस।

प्रथम संस्करण
२०००

[मूल्य छः रुपये]

संवत्
२००६

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस।

शिक्वो !

'शबनम'

भूमिका

मीरॉं के प्रामाणिक पदो के सग्रह का प्रयास इधर कुछ ही दिनों से चल पडा है। इससे पहले मीरॉं के नाम से प्रसिद्ध अथवा मीरॉं की छाप से युक्त प्राय सभी पद मीरॉं रचित मान लिए जाते थे। बात यह थी कि तब तक मीरॉं के पद भक्ति-भावना से युक्त साधारण-जन-समाज के लिए गेय पद मात्र थे, उन पदों मे कुछ काव्य-सौन्दर्य, कुछ उच्च भाव-विभूति, कुछ तन्मय कर देने की शक्ति का अनुभव विद्वत्समाज नही कर पाता था, क्योंकि तब तक विद्वत्समाज मे सरल और सहज भाषा में सरल और सहज अनुभूतियों की सरल और सहज अभिव्यक्ति का महत्व विशेष नही था। ध्वनि-व्यजना और अलकार-वक्रोक्ति की अभ्यस्त सहृदयता ने अनलकृत सहज काव्य-सौन्दर्य की ओर से कुछ ऐसी आँखें मूंद ली थी कि मीरॉं के इन रससिक्त पदों में भी हिन्दी के सहृदय कहे जानेवाले विद्वानो को कोई रस नही मिलता था। इसी कारण मीरॉं के ये गेय पद साहित्य में उपेक्षित ही रहे। परतु अब जब कि हिन्दी के कुछ सहृदय विद्वानो को मीरॉं के पदों में रस मिलने लगा है, जब शिक्षित समाज में मीरॉं के पदो की चाह बढने लगी है, तब से विद्वानो के मस्तिष्क में जिज्ञासा और सशय ने घर करना प्रारम्भ कर दिया है। जिज्ञासा ज्ञान-वृद्धि के लिए सबसे बडा वरदान है, इसी जिज्ञासा के वशीभूत हो विद्वान् गहन तत्वों की खोज में निकल पडता है। मीरॉं के प्रति जिज्ञासा की भावना उठने ही उनके पदों के सग्रह की रुचि बढने लगी, उनके जीवन-चरित सबधी विविध प्रश्नो के उत्तर और विविध शकाओ के समाधान ढूंढ़े जाने लगे, साहित्य, इतिहास और जनश्रुतियों का मथन कर अनेक नयी बातें खोज निकाली गईं। जिज्ञासा के पश्चात् सशय की बारी आई और आधुनिक वैज्ञानिक बुद्धिवाद ने सशय उत्पन्न किया कि मीरॉं के नाम से प्रसिद्ध सैकडो सरस और नीरस, साहित्यिक और अनगढ तथा बीहड, अनेक विचार-धारा और भाव-धारा की निर्झरणी तुल्य इन गेय पदो में स्वय मीरॉं की प्रामाणिक रचनाएँ कौनसी है और कितने दूसरो के पद मीरॉं के नाम से चल पडे हैं। मीरॉं के नाम से उपलब्ध पदो में भाषा और भाव, विचार और अभिव्यक्ति की दृष्टि से इतनी भिन्नताएँ दृष्टिगोचर

होती है कि उन सभी को किसी एक की रचना मान लेने में सदेह होता ही है। अस्तु, विद्वानों ने सशय की कि बागडोर ढीली कर दी। मीराँ के पदो, उनके संबध में प्रसिद्ध कथाओ और जनश्रुतियो पर सदेह करते-करते एक प्रतिष्ठित विद्वान् ने स्वयं मीरां के नाम पर भी सदेह प्रकट किया। उनका कहना है कि मीरांबाई मीरां के नाम से प्रसिद्ध पदो की गायिका का नाम नही था, परन्तु सतो द्वारा दी गयी उनकी उपाधि मात्र थी। सशय ज्ञानोपलब्धि के लिए एक उपयोगी साधन है, परतु सशय की भी एक सीमा होनी चाहिए। केवल सशय के लिए सशय का कोई महत्व नही।

परतु सदेह करना तो सरल है, उसका समाधान ढूंढ निकालना उतना सरल नही। विशेष रूप से मीरां के पदों के सम्बन्ध में यह कठिनाई और भी अधिक है। मीरां के पद लिखे नही गए थे, वे गाए गए थे। मीरां भक्त थी, उन्होने भक्ति-भावना के आवेश में अपने गिरधर नागर की मूर्ति के सामने, अथवा मार्ग पर चलते हुए अथवा वृंदावन और द्वारका के मदिरो मे अथवा साधु सतो और महात्माओ के समागम के समय उनके सामने अपने पदो का गान किया था और वे गीत मौखिक परम्परा मे बहुत दिनो तक जनता में प्रसिद्ध रहे। सूर, कबीर, रैदास तथा अन्य सतो और महात्माओ ने भी अपने पद और छद गाए थे, लिखा नही था, परतु उन महात्माओ के शिष्य और सम्प्रदाय वालो ने उन्हींके जीवन काल मे अथवा उनकी मृत्यु के कुछ ही समय उपरात उनकी रचनाओ को लिपिबद्ध कर लिया था जिससे उनकी रचनाओ की प्रामाणिकता बहुत कुछ आंची जा सकती है। परतु मीरां का किसी सम्प्रदाय विशेष मे सबध नही था, उनकी शिष्य-परम्परा थी ही नही और सतान तथा कुटुम्बी भी उनके नही थे, इसी कारण उनकी रचनाएँ बहुत दिनों तक लिपिबद्ध नही हो सकी, केवल मौखिक परम्परा से ही उनका प्रचलन होता रहा। दूर दूर तक भक्तमडली में मीरां के पदो का प्रचार था। राजस्थान ब्रज और गुजरात मे तो उनके पद गाए ही जाते थे पजाब महाराष्ट्र तथा सुदूर बगाल मे भी मीरां के पद बडे चाव से सुने और गाए जाते थे। लिपिबद्धता के अभाव और अपेक्षाकृत सुदूर प्रातो तक प्रसिद्धि और प्रचार के कारण मीरां के पदो की किस सीमा तक कायापलट हुई होगी, इसका अनुमान लगाना कुछ कठिन नही है।

राजस्थानी, गुजराती और ब्रज के अतिरिक्त मीराँ के नाम से उपलब्ध पदो में पंजाबी, पूर्वी और खड़ी बोली का मिश्रण इसी कारण मिलता है। पदो के इन मिश्रित, विकृत और परिवर्तित रूपों में मीराँ के प्रामाणिक पद ढूंढ निकालना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

परतु मीराँ के नाम से उपलब्ध पदो में भाषा-संबंधी मिश्रण, विकार और विचित्रताओ से भी अधिक उलझन उत्पन्न करनेवाली भाव, विचार और अभिव्यक्ति की विचित्रताएँ है। मीराँ के पदों मे विचार और अभिव्यक्ति की विचित्रताएँ भी अनेक हैं। कुछ पदो में कबीर, रैदास, दादू आदि संत कवियो की विचार-परम्परा की धारा प्रवाहित हुई है, कुछ मे नाथ सम्प्रदाय की विविध मान्यताओ का सकेत है, कुछ पदो में भागवत पुराण के आधार पर कृष्ण-लीला-सबधी विचारो और भावो की अभिव्यक्ति है, कुछ पद विनय और दैन्य भाव के हैं, कुछ में माधुर्य भाव की भक्ति-पद्धति मिलती है और शेष अन्य पदो में कुटुम्बियों से सघर्ष की परस्पर विरोधी और असगत बातों का वर्णन मिलता है। इन सभी को एक ही मीराँ की रचना मान लेना आज के समय के युग में सम्भव नही जान पड़ता। आज तो हम प्रत्येक कवि की रचना में एक विशेष प्रकार की विचार-धारा तथा एक विशेष प्रकार की अभिव्यक्ति की खोज करते है और एक ही कवि की रचना में अनेक प्रकार की विचार-धारा तथा विविध प्रकार की भावाभिव्यक्ति देखकर समालोचकों के कान खडे हो जाते हैं और उनकी सशय वृत्ति को उडान भरने के लिए जैसे पख मिल जाते हैं। मीराँ के पदो में अनेक प्रकार की विचार-धारा और अभिव्यक्ति देखकर साधारण रूप से यह विचार उठता है कि किसी एक विशेष विचार-धारा और एक विशेष प्रकार की भावाभिव्यक्ति वाले पद मीराँ की प्रामाणिक रचनाएँ हैं और शेष सभी पद प्रक्षिप्त और अप्रामाणिक हैं।

मीराँ के पदो की प्रामाणिकता पर विचार करने के लिए, सुविधा की दृष्टि से, उनके उपलब्ध पदो को, प्रतिपाद्य विषय के अनुसार दो भागो में बाँट लेना होगा। मीराँ की जीवन-सम्बन्धी सामग्री प्रस्तुत करने वाले पद, जिनमें कुटुम्बियों से सघर्ष की अभिव्यक्ति मिलती है, पर्याप्त सख्या में मिलते है। उनकी प्रामाणिकता के सबध में सशय करने के पर्याप्त कारण हैं। इन पदो में प्राय एक ही बात कितने ही पदो में कितनी

ही तरह से कही गयी है और जब एक पद की कही बात को दूसरे पदो में उल्लिखित बातो से मिलाया जाता है तो उनमें प्राय. विरोधी, असगत और असम्बद्ध बातें ही अधिक मिलती हैं। मीराँ का अपने कुटुम्बियो से मतभेद और सघर्ष की बात कालातर से चली आ रही है। नाभादास ने अपने छप्पय में इसका उल्लेख किया और प्रियादास ने कई कवित्तों में इस मतभेद और सघर्ष की व्याख्या की। वह मतभेद और सघर्ष मीराँ के जीवन में किस रूप में उपस्थित हुआ, उसने क्या-क्या रूप धारण किए, उसका परिणाम क्या हुआ, इन सभी बातों का स्पष्ट उल्लेख मीराँ के पदो मे मिलना कोई आश्चर्य की बात नही है। परंतु उस सघर्ष की अभिव्यक्ति मीराँ ने कितनी और किस रूप में की होगी, यह केवल अनुमान की वस्तु है। सघर्षाभिव्यक्ति के जितने पद उपलब्ध हैं उनका बहुत थोडा अश ही मीराँ का लिखा जान पडता है। मेरा अनुमान है कि मीराँ का अपने कुटुम्बियो से मतभेद और सघर्ष परवर्ती काल के कितने ही गीतों और नाटच-रूपको का विषय बन गया था और उन गीतों और नाटच रूपको के रचयिता कवि सम्भव प्रमाण[1] द्वारा उस सघर्ष का विकृत और अतिरजित रूप जनता के सामने उपस्थित करते थे। वे ही गीत और नाटच-रूपको के सम्वाद आगे चलकर मीराँ की रचना के रूप मे प्रसिद्ध हो गए। अस्तु सघर्षाभिव्यक्ति के उपलब्ध सभी पदो को मीराँ की प्रामाणिक रचना मानना ठीक नही है।

सघर्षाभिव्यक्ति से इतर मीराँ के पदो मे जो अनेक विचार-धाराएँ और विविध प्रकार की भावाभिव्यक्ति मिलती हैं, उन सभी को मीराँ की रचना मानना कठिन जान पडता है। विशेष रूप से मौखिक परम्परा से प्राप्त मस्तक रचनाओ मे मिलावट की गुजाइश सर्वदा बनी रहती है। फिर भी यह असम्भव नही है कि एक ही कवि की रचना में अनेक प्रकार की

---

१ विद्वानों ने प्रत्यक्ष अनुमान, आप्त शब्द, उपमान आदि प्रमाणों के साथ साथ सम्भव प्रमाण भी माना है। उदाहरण के लिए शिव और पार्वती का विवाह पुराणों में वर्णित है परन्तु उसमें यह नहीं लिखा है कि शिव के बाराती कौन थे और शिव को वर रूप में देखकर पार्वती, मैना हिमालय आदि ने क्या क्या भाव व्यक्त किए। परन्तु परवर्ती कवियों ने सम्भव प्रमाण द्वारा शिव की बारात मैना का खेद आदि का विस्तृत वर्णन किया है। यही है सम्भव प्रमाण।

विचार-धाराएँ और अनेक भावों की सुदर और स्पष्ट अभिव्यक्ति उपलब्ध हो। फिर भी यदि एक कवि की रचना में एक ही विचार-धारा और एक ही प्रकार के भावो की अभिव्यक्ति मानना आवश्यक हो तो मीरॉ की रचना में भगवान् कृष्ण की लीला संबंधी माधुर्य-भाव की अभिव्यक्ति वाले पद ही सर्वाधिक प्रामाणिक माने जा सकते हैं। कारण यह है कि मीरॉ के सबध में जो प्राचीन उल्लेख प्राप्त होते हैं उनमें कृष्ण-लीला का गान और माधुर्य-भाव की भक्ति का स्पष्ट उल्लेख है। मीरॉ के संबंध में सबसे प्राचीन और सबसे प्रामाणिक उल्लेख नाभादास के 'भक्तमाल' (स० १६४२ के लगभग) में एक छप्पय में मिलता है जिसका प्रारम्भिक चरण इस प्रकार है :

सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलियुगहिं दिखायो ,
निर अकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो ।

अर्थात् मीरॉ के कठ से नि सृत पदो में रसिक शिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण की लीला का गान है और मीरॉ के इन पदो में गोपी-भाव अथवा कांता-भाव या माधुर्य-भाव की भक्ति और प्रेम की अभिव्यक्ति थी। सं० १६९८ में ध्रुवदास रचित 'भक्त नामावली' में मीरॉ के सबध में जो उल्लेख मिलता है वह अत्यत स्पष्ट तो नही है फिर भी उसमे यही ध्वनि निकलती है कि मीरॉ ने गोपी-भाव से भगवान कृष्ण की लीला का गान किया। ध्रुवदास के दोहे इस प्रकार हैं :

लाज छाँडि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल कानि ।
सोई मीरॉ जग-विदित, प्रगट भक्ति की खानि ॥
ललिता हू लइ बोलिकै, तासो हौं अति हेत ।
आनँद सों निरखत फिरत, वृन्दावन रस खेत ॥
नृत्यत नूपुर बाँध कै, गावत लै करतार ।
विमल हीय भक्तन मिल्यो, तृन सम गन्यो सगार ॥

इसके पश्चात् विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में इटावे के महाकवि देव ने एक कवित्त में मीरॉ के मुख से कहलाया है —

कोई कहौ कुल्टा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोई कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं ।
कैसो नरलोक परलोक, बरलोकनि में,
लीन्ही मैं अलीक लोक-लीकनि तें न्यारी हौं ।

तन जाउ, मन जाउ, देव गुरजन जाउ,
प्रान किन जाउ टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दाबनवारी बनवारी को मुकुट वारी,
पीतपट वारी वहि मूरति पै वारी हौं॥

इन सब उल्लेखो से जान पडता है कि नाभादास, ध्रुवदास और देवकवि को मीराँ के जिन पदो को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था उनमें अधिकाश पदो मे पीताम्बरधारी रसिक-शिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन गोपी-भाव से किया गया था। इससे यह नही कहा जा सकता कि मीराँ ने केवल कृष्ण-लीला का ही गान किया, सत-परम्परा की रचनाएँ मीराँ ने नही की अथवा नाथ-सम्प्रदाय के प्रभाव से जोगी वाले पद मीराँ के रचित नही हैं। परतु इससे यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मीराँ की प्रसिद्धि जिन पदो से हुई थी, मीराँ की जो विशिष्टतम रचनाएँ हैं, मीराँ की जिन रचनाओ की दूर-दूर तक प्रसिद्धि थी, वे रचनाएँ माधुर्य-भाव की भक्ति से पूर्ण भगवान कृष्ण की ब्रज-लीला के गान थे। इसीलिए तो मैं मीराँ के कृष्णलीला-सबधी तथा माधुर्य भाव के अभिव्यक्ति वाले विरह पदो को मीराँ की सर्वाधिक प्रामाणिक रचना मानता हूँ।

मीराँ के सबध में प्रसिद्ध कुछ जनश्रुतियो से भी यह स्पष्ट है कि मीराँ अपने प्रौढ वय और अतिम काल में गिरधर नागर भगवान कृष्ण की लीलाओ का गान माधुर्य-भाव से करती थी। वृन्दावन में जीव गुसाईं (अथवा रूप गोस्वामी) को फटकार और मिलन वाली जनश्रुति मे मीराँ के माधुर्य-भाव की स्वीकृति मिलती है और द्वारका मे रणछोड जी के मदिर म मूर्ति के सामने नाचते-गाते भगवान कृष्ण की मूर्ति मे विलीन होने की जनश्रुति मे भी मीराँ के माधुर्य-भाव और कृष्ण -लीला के पद-गान की ही स्वीकृति मिलती है। उपर्युक्त जनश्रुतियाँ चाहे सत्य न भी हो फिर भी इसम तो कोई सदेह नही है कि साधारण भक्त जनता मीराँ को इसी रूप म मानती चली आ रही है। मीराँ माधुर्य-भाव के भक्ति की प्रतीक है अस्तु विषय और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से कृष्णलीला के माधुर्य भाव से पूर्ण पद ही मीराँ की सर्वाधिक प्रामाणिक रचनाएँ मानी जा सकती हैं।

इसके विपरीत प्राचीन किसी उल्लेख मे मीरां के सत-परम्परा तथा नाथ-सम्प्रदाय के योगियों से प्रभावित होने की बात नही मिलती। जन-श्रुतियो में भी केवल एक जनश्रुति मीरां को रैदास की शिष्या प्रमाणित करती है। नाथ-सम्प्रदाय के जोगियो के सबध मे किसी भी जनश्रुति में स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। फिर भी यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि मीरां की वे रचनाएँ जिनपर सत-परम्परा और नाथ-परम्परा का प्रभाव स्पष्ट है, उनकी प्रामाणिक रचनाएँ नही हैं। परतु इतना तो निर्विवाद रूपसे स्वीकार करना पडेगा कि मीरां की माधुर्य-भाव की अभिव्यक्ति और कृष्णलीला के पद अपेक्षाकृत सर्वाधिक प्रामाणिक हैं।

प्रस्तुत पुस्तक मे मीरां के सरस पदो से एकात रुचि रखने वाली श्रीमती पद्मावती देवी जी 'शबनम' ने बडे लगन और परिश्रम से काफी दौड-धूप कर सैकडो नए पद ढूंढ निकाले हैं। मीरां के साहित्य का अध्ययन उनका रुचिकर विषय है और उनके पदो का प्रामाणिक सग्रह प्रस्तुत करना उनकी चिर अभिलषित वस्तु रही है। मुझे पाडुलिपि रूप मे समस्त पदो के देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। मुझे बडी प्रसन्नता है कि देवीजी ने केवल पदो का सग्रह ही नही किया है, भाषा और भाव की दृष्टि से उनका सुचारु रूप से वर्गीकरण भी कर दिया है और राजस्थानी के भाव स्पष्ट करने के लिए फुटनोट मे कुछ कठिन शब्दो का अर्थ भी दे दिया है। विशिष्ट पदो पर टिप्पणियाँ देकर सुयोग्य लेखिका ने अपने गहन अध्ययन का परिचय दिया है जिससे पाठक अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक मे कुछ पदो के आठ-आठ दश-दश पाठातर दिए गए हैं। इतने अधिक पाठातर इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि मौखिक परम्परा से चलनेवाले पदो में गानेवाले किस प्रकार परिवर्तन करते चलते हैं। कभी-कभी गाने वाले को केवल भाव की ही स्मृति रहती है और वे उस भाव को अपनी रुचि के अनुसार नए शब्दो का परिधान प्रदान करते है, कभी किसी दूसरे पद के कुछ चरण अन्य पदो मे जुड जाया करते हैं और कभी शब्द तो वही रहते हैं, परतु राग और भाव मे ही परिवर्तन हो जाते हैं। इस प्रकार के पदो को किसी एक ही पद का पाठातर माना जाय अथवा उनमे से कुछ पद स्वतत्र मान लिए जायँ—इसके लिए कोई

नियम स्थिर करना बहुत कठिन है। यह भी सम्भव है कि स्वयं मीरां ने ही एक ही भाव के कई पद कई स्थानो और अवसरो पर गाए होगे। फिर भी पाठातर रूप में देने से उनके तुलनात्मक अध्ययन में सुविधा होगी, इसमे कोई सदेह नही है।

प्रस्तुत पुस्तक में देवीजी ने मीरां के अध्येताओ के लिए बडी मूल्यवान सामग्री दी है जिसके लिए उन्हें जितना भी साधुवाद दिया जाय थोडा है। मुझे आशा है कि इसी प्रकार वे हिन्दी पाठको के लिए अध्ययन और मनन की सामग्री देती रहेंगी।

दुर्गाकुड, काशी,
फाल्गुन कृष्ण द्वितीया,
स० २००८

श्रीकृष्ण लाल

प्राक्कथन

'मीराँ-बृहत्-पद-संग्रह' जैसे नाम से ही पुस्तक का विषय स्पष्ट है। मीराँ के पदों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं तथापि ऐसा कोई संग्रह प्राप्त नहीं जिसमें मीराँ के नाम पर प्रचलित प्राय. सभी पद और उसके पाठान्तर भी प्राप्त हो सके। अपनी प्रथम पुस्तक, 'मीराँ, एक अध्ययन' लिखते हुए मुझको एक ऐसे बृहत्-संग्रह की आवश्यकता प्रतीत हुई अतः प्रस्तुत पुस्तक उपस्थित करके मैंने एक प्रयास किया है। प्रकाशित व अप्रकाशित संग्रहो व मौखिक परम्परा से प्राप्त पद और उनके पाठान्तरों का संग्रह कर मीराँ के नाम पर प्रचलित सभी पदों को एकत्रित करने का प्रयास किया गया है तथापि बहुत सम्भव है कि कुछ पद फिर भी छूट गये हो।

अद्यावधि प्राप्त मीराँ का जीवन-वृत्तान्त सुनिश्चित इतिहास की पुष्टता को प्राप्त नहीं कर सका। भक्त-गाथाओ के रूप मे प्राप्त प्राचीन-साहित्य से भी इस ओर कोई स्पष्ट प्रकाश नहीं पडता। प्राप्त पदो मे भी कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इतना ही नहीं, प्राप्त पदो में अधिकाश की प्रामाणिकता असदिग्ध नहीं। उपर्युक्त परिस्थितियो मे किसी भी एक आधार पर सर्वथा निर्भर नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण प्राप्त सामग्री की समन्वयात्मक विवेचना ही सत्य के सर्वाधिक निकट पड़ सकती है।

प्राप्त सामग्री में भक्त-गाथाएँ महत्वपूर्ण बहिःसाक्ष्य सिद्ध होती हैं। भक्तो की रचनाओं में सर्व-प्रथम उल्लेख नाभादास कृत 'भक्तमाल' में मिलता है। नाभादास मीराँ के सुदृढ भक्ति-भाव की भूरि-भूरि प्रशसा करते हैं तथापि जीवन-वृत्त पर कोई प्रकाश नहीं डालते। महाकवि देव भी नाभादास का ही अनुसरण करते हैं। प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका और ध्रुवदास रचित 'भक्तनामावली' में मीराँ का उल्लेख है। ये दोनों ही उल्लेख जनश्रुतियो पर आधारित हैं अत इन पर भी सर्वथा निर्भर नहीं किया जा सकता। प्रियादास कृत टीका से मीराँ के विवाह तक उनके माता और पिता दोनों के ही जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। मीराँ की वृन्दावन यात्रा का सर्व-प्रथम उल्लेख भी ध्रुवदास में ही मिलता है। रघुराजसिंह कृत 'भक्तमाल' में भी मीराँ का उल्लेख मिलता है। यह

ग्रंथ भी प्रियादास कृत 'भक्तमाल' में प्राप्त जनश्रुतियों का एक विस्तृत संग्रह ही है। भक्त-गाथाओ मे अन्य महत्वपूर्ण ग्रथ 'चौरासी' और 'दो सौ बावन वैष्णवण की वार्ताएँ' हैं। इन ग्रथों की प्रामाणिकता ही सर्वथा सदिग्ध है, तिस पर ये साम्प्रदायिक ग्रथ भी हैं। इतना ही नही, दोनों ग्रथो मे प्राप्त उल्लेख परस्पर विरोधात्मक भी हैं। ऐसी स्थिति में इनको भी निश्चित प्रमाण स्वरूप उपस्थित नही किया जा सकता।

मीराँ का सम्बन्ध राजस्थान के दो विख्यात राजकुलो से था अतः *मीराँ के जीवन-वृत्त को एक सुदृढ रूपरेखा देने के लिये राजस्थान का* इतिहास भी अपेक्षित है।

राजस्थान का इतिहास लिखते हुए कर्नल टाड ने मीराँ के जीवन-वृत्तान्त पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने का सर्व-प्रथम प्रयास किया। कर्नल टाड द्वारा हुए इस प्रयास के पूर्व मीराँ का प्राप्त जीवन-वृत्त अलौकिक गाथाओ से परिपूर्ण एक अतिरजित पौराणिक कथा मात्र था। यत्किंचित प्राप्त प्रमाण और जनश्रुतियो के आधार पर कर्नल टाड ने मीराँ को राणा कुम्भ की राणी सिद्ध किया। 'एनाल्स एन्ड एन्टीक्वीटीस आफ राजस्थान' देखने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ के पिता कौन थे इसका निर्णय वे स्वय भी न कर सके। कर्नल टाड के मतानुसार मीराँ को राणा कुम्भ की रानी मानने पर समय की सगति के आधार पर राव दूदा को ही मीराँ के पिता मानना युक्तियुक्त होता है। प्राप्त पदाभिव्यक्तियाँ इसका समर्थन भी करती हैं।

कर्नल टाड के मत का खण्डन सर्व-प्रथम स्ट्रेटन ने अपनी पुस्तक 'मेवार एन्ड इट्स फेमिलीस' मे किया परन्तु वे भी कोई निश्चित प्रमाण नही देते। तत्पश्चात् मुशी देवीप्रसाद ने कर्नल टाड का खण्डन करते हुए मीराँ को राव रत्नसिंह की पुत्री और महाराणा साँगा के पुत्र भोजराज की विधवा सिद्ध करने का प्रयास किया। मुशी जी का यह प्रयास भी अपूर्ण व भ्रमाच्छादित ही सिद्ध होता है।

मुशी जी लिखित 'मीराँबाई का जीवन और उनका काव्य' देखने से ही यह निश्चित हो जाता है कि मुशी जी स्वय भी सशय में ही थे। मुशी जी ने महकमा तवारीख मेवाड मे प्राप्त दो विभिन्न समाचारो के आधार पर ही चलने का प्रयास किया। प्राप्त दोनों समाचार विरोधात्मक है। अतः सर्व-प्रथम उनका आधार ही भ्रमात्मक सिद्ध हो जाता है। इसी तरह मीराँ

द्वारा किये गये विष-पान की कथा भी भ्रमजनक रूप में ही दी गई है। विष-पान से मीरां की मृत्यु हो जाने और मरते मरते मीरां का विष लाने वाले मुसाहिब को श्राप देने की कथा भी देते हैं। मीरां के इस श्राप से उस मुसाहिब के वंश में आज तक भी धन और जन की एक ही साथ वृद्धि न होने की चर्चा भी करते हैं। तब भी, इसके बाद ही विष-पान जैसी अप्रिय घटना के कारण राव वीरमदेव द्वारा मीरां को बुला लिये जाने की चर्चा भी करते हैं। मीरां द्वारा की गई तीर्थयात्राओ की भी चर्चा करते हैं। उनके मतानुसार सम्भवत: मीरां ने दो बार तीर्थ-यात्रा की थी। पहली बार गृह-त्याग के पूर्व और दूसरी बार गृह-त्याग के बाद। दूसरी बार भी वे सम्भवत वृन्दावन होती हुई ही द्वारिका जाती हैं। भूरिदान भाट के कथन के आधार पर वे मीरां का मृत्यु सवत् १६०३ मानते हैं। उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचना से मुशी जी के कथन की अपूर्णता सिद्ध हो जाती है।

फिर भी अन्य सामग्री के नितान्त अभाव के कारण प्रायः सभी आधुनिक विद्वानो ने मुशी जी के मतको ही आधार माना। इस आधार पर अपनी अपनी विवेचना के अनुसार घटना-क्रम के सवतो मे कुछ अन्तर पडता है। कुछ विद्वान मीरां का जन्म वि० १५५५ स० मानते हैं तो अन्य वि० १५६० स०। भारतेदु हरिश्चन्द्र मीरां का मृत्यु सवत् वि० १६३० स० तक खीच ले जाते हैं। वे भी मेवाड के राजघराने से प्राप्त सामग्री को ही अपने कथन का आधार बताते हैं। गुजराती साहित्यकारो ने कर्नल टाड का ही समर्थन किया है। बगाल की जनश्रुति व कलाकार-वर्ग भी कर्नल टाड का समर्थन करते हुए मीरां को राणा कुम्भ की रानी व राव दूदा जी की पुत्री मानते हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकारो ने भी अपने अपने विभिन्न ग्रथो मे मुशी जी का ही समर्थन किया। अद्यावधि प्राप्त राजस्थान का इतिहास भी अपूर्ण ही है। कविराजा श्यामलदास कृत 'वीर-विनोद', स्व० विद्वान् ओझा जी लिखित 'उदयपुर राज्य का इतिहास' और श्री हरिविलास सारडा लिखित महाराणा साँगा मे, प्राप्त विभिन्न उद्धरण परस्पर विरोधात्मक ही हैं। 'मीरां-स्मृति-ग्रथ' की भूमिका लिखते हुए श्री रामप्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं, "मीरां का विवाह राणा साँगा के किसी राजकुमार से हुआ। ओझा जी का अनुमान है कि उसका नाम भोजराज था।" अतः सहज ही सशय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

उपर्युक्त स्थिति मे पदों से व्यक्त होती भावनाओ और घटनाओ का महत्व विशेष रूपेण बढ जाता है। इस बढी हुई महत्ता के कारण पदो की प्रामाणिकता पर भी विचार कर लेना सर्व-प्रथम आवश्यक हो जाता है। तथाकथित मीरां के पदो के सकलन का एकमात्र आधार गेय परम्परा ही रही है। मात्र राजस्थान मे ही नही अपितु समस्त उत्तर भारत मे ही ये पद विशेष जन-प्रिय हुए। अस्तु, कही कोई नवीन पद या पदाश मीरां के नाम पर चल पडा तो कही मीरां के पद ही विशेष परिवर्तनो के साथ चल पडे। *अत प्रामाणिक पदो को छाँट लेना असम्भव नही तो भी अत्यन्त* दुरूह कार्य अवश्य ही हो गया है। पदो की हस्तलिखित प्रति के सर्वथा अभाव मे इस कार्य की दुरूहता अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी। फिर भी भाव और भाषा के आधार पर वर्गीकरण करने से कुछ पदो को निश्चित रूपेण प्रक्षिप्त कहना सम्भव हो सकता है। शेष पदो की प्रामाणिकता असदिग्ध नही तथापि कोई ऐसा सूत्र भी प्राप्त नही जिसके आधार पर हम उनको सुनिश्चित रूपेण प्रक्षिप्त या प्रामाणिक कह सके।

वस्तुत मेरी प्रथम पुस्तक 'मीरां, एक अध्ययन' ही इस पुस्तक की पृष्ठभूमि है फिर भी प्रस्तुत सग्रह मे किये गये पदो के वर्गीकरण के आधार का एक सक्षिप्त परिचय *अप्रासगिक न होगा। तथाकथित मीरां के* पदों को भाव के आधार पर प्रमुखत दो भागो में बाँटा जा सकता है। कुछ पद ऐसे है जिनसे व्यक्त होती भावनाओ और घटनाओ से जीवन-वृत्त पर एक हलका-सा प्रकाश पडता है। ऐसे पद जीवन-खड के अन्तर्गत रखे गये है। अन्य पदों से व्यक्त होती भावनाओ से विभिन्न धार्मिक मतमतान्तरो का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है। ऐसे पद उपासना-खड के अन्तर्गत रखे गये है।

जीवन-खड के अन्तर्गत आने वाले पदो से भी जीवन-वृत्तान्त पर कोई प्रत्यक्ष प्रकाश नही पडता अपितु व्यक्त भावनाओ के आधार पर कुछ घटनाओं व स्थिति का आभास मिलता है। गेय-परम्परा से प्राप्त इन पदो से व्यक्त होती घटनाओ को ज्यो का-त्यो मान लेना भ्रमात्मक ही सिद्ध होगा अत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर इन घटनाओ की विवेचना आवश्यक हो जाती है। इस विवेचना के लिये प्राप्त पदो को भावाभिव्यक्ति के आधार पर विभिन्न वर्गों म बाँट देना आवश्यक है। ऐसे पदो की श्रणी म सर्व-प्रथम आने वाले पद वे है जिनमे मीरां और

परिवार व समाज के बीच हुए गहरे मतभेद की अभिव्यक्ति मिलती है। परिजनो और मीराँ के बीच हुए गहरे मतभेद और सघर्ष की अभिव्यक्ति नाभादास मे भी मिलती है। अन्य भक्त-गाथाओ व प्राप्त इतिहास मे भी इसका समर्थन मिलता है। समाज में निन्दा होने के कारण परिवार वालो ने मीराँ के साधु-समागम का गहरा विरोध किया। पदो मे व्यक्त होती इस भावना को इतिहास व भक्त-कथाओ का पूर्ण समर्थन प्राप्त है। ऐसे पद लगभग सभी कथोपकथन और वर्णनात्मक शैली मे प्राप्त है। अधिकाश पदो में दोनो ही शैलियो का सम्मिश्रण हुआ है। भावावेश में अपने उद्‌गारो को गा उठने वाली मीराँ द्वारा इन उपर्युक्त शैलियो मे रचना अयुक्त ही प्रतीत होती है। इन पदाभिव्यक्तियो से स्पष्ट हो जाता है कि यह कथनोपकथन मीराँ व माँ, ननद ऊदाँ बाई, सास और किसी राणा के बीच हुआ है। अद्यावधि मीराँ की माता का उनकी छोटी वयस मे ही निधन हो जाना मान्य है। प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका व अन्य उद्धरणों[1] के आधार पर भी पदो से व्यक्त होने वाले इस पहलू को सर्वथा अमान्य नही कहा जा सकता। ननद ऊदाँ बाई या सास के बारे मे भी वर्तमान इतिहास कोई सुनिश्चित हल नही दे पाता है। इसी तरह यह भी सुस्पष्ट नहीं हो पाता कि पदो मे वर्णित यह राणा कौन थे। पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह राणा मीराँ के पति ही सिद्ध होते है। कुछ पदो (न० ५) मे तो राणा के साथ हुए विवाह का विशद वर्णन भी है। इतना ही नही विभिन्न पदाभिव्यक्तियो से यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि इस विवाह कार्य को मीराँ की अनिच्छा और कठिन विरोध की अवहेलना कर सम्पन्न किया जाता है। प्राप्त इतिहास बताता है कि गृह-प्रवेश के साथ ही साथ मीराँ का अन्य परिवार वालो से देवी-पूजा के प्रश्न को लेकर विरोध हो गया था। राजस्थानी प्रथानुसार गृह-प्रवेश के अवसर पर देवी-पूजा का कोई प्रसग ही नही उठता। अस्तु बहुत सम्भव है कि विवाह के प्रति उदासीनता की कथावस्तु ही कालान्तर म देवी-पूजा के प्रति उदासीनता की कथा मे परिवर्तित हो गई हो। "लाजै कुम्भा जी रो वैसणो" जैसी कुछ पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पदो मे वर्णित ये राणा सम्भवत मीराँ के पति राणा कुम्भ ही थे। "लाजै दूदा जी रो वैसणो" जैसी अभिव्यक्ति

१ देखें, 'मीराँ, एक अध्ययन'—मातापिता

उपर्युक्त स्थिति में पदों से व्यक्त होती भावनाओं और घटनाओं का महत्व विशेष रूपेण बढ जाता है। इस बढी हुई महत्ता के कारण पदों की प्रामाणिकता पर भी विचार कर लेना सर्व-प्रथम आवश्यक हो जाता है। तथाकथित मीराँ के पदों के सकलन का एकमात्र आधार गेय परम्परा ही रही है। मात्र राजस्थान में ही नहीं अपितु समस्त उत्तर भारत में ही ये पद विशेष जन-प्रिय हुए। अस्तु, कही कोई नवीन पद या पदाश मीराँ के नाम पर चल पड़ा तो कही मीराँ के पद ही विशेष परिवर्तनो के साथ चल पड़े। अत प्रामाणिक पदो को छाँट लेना असम्भव नहीं तो भी अत्यन्त दुरूह कार्य अवश्य ही हो गया है। पदो की हस्तलिखित प्रति के सर्वथा अभाव में इस कार्य की दुरूहता अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी। फिर भी भाव और भाषा के आधार पर वर्गीकरण करने से कुछ पदो को निश्चित रूपेण प्रक्षिप्त कहना सम्भव हो सकता है। शेष पदो की प्रामाणिकता असदिग्ध नही तथापि कोई ऐसा सूत्र भी प्राप्त नही जिसके आधार पर हम उनको सुनिश्चित रूपेण प्रक्षिप्त या प्रामाणिक कह सकें।

वस्तुत मेरी प्रथम पुस्तक 'मीराँ, एक अध्ययन' ही इस पुस्तक की पृष्ठभूमि है फिर भी प्रस्तुत सग्रह में किये गये पदो के वर्गीकरण के आधार का एक सक्षिप्त परिचय अप्रासगिक न होगा। तथाकथित मीराँ के पदों को भाव के आधार पर प्रमुखत दो भागों में बाँटा जा सकता है। कुछ पद ऐसे हैं जिनसे व्यक्त होती भावनाओं और घटनाओं से जीवन-वृत्त पर एक हल्का-सा प्रकाश पडता है। ऐसे पद जीवन-खड के अन्तर्गत रखे गये हैं। अन्य पदों मे व्यक्त होती भावनाओं से विभिन्न धार्मिक मतमतान्तरो का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है। ऐसे पद उपासना-खड के अन्तर्गत रखे गये हैं।

जीवन-खड के अन्तर्गत आने वाले पदो से भी जीवन-वृत्तान्त पर कोई प्रत्यक्ष प्रकाश नहीं पडता अपितु व्यक्त भावनाओ के आधार पर कुछ घटनाओ व स्थिति का आभास मिलता है। गेय-परम्परा से प्राप्त इन पदो से व्यक्त होती घटनाओं को ज्यों-का-त्यों मान लेना भ्रमात्मक ही सिद्ध होगा अत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर इन घटनाओ की विवेचना आवश्यक हो जाती है। इस विवेचना के लिये प्राप्त पदो को भावाभि-व्यक्ति के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँट देना आवश्यक है। ऐसे पदो की श्रेणी में सर्व-प्रथम आने वाले पद वे हैं जिनमें मीराँ और

परिवार व समाज के बीच हुए गहरे मतभेद की अभिव्यक्ति मिलती है। परिजनों और मीराँ के बीच हुए गहरे मतभेद और सघर्ष की अभिव्यक्ति नाभादास में भी मिलती है। अन्य भक्त-गाथाओ व प्राप्त इतिहास मे भी इसका समर्थन मिलता है। समाज मे निन्दा होने के कारण परिवार वालो ने मीराँ के साधु-समागम का गहरा विरोध किया। पदो मे व्यक्त होती इस भावना को इतिहास व भक्त-कथाओ का पूर्ण समर्थन प्राप्त है। ऐसे पद लगभग सभी कथोपकथन और वर्णनात्मक शैली मे प्राप्त है। अधिकाश पदो में दोनो ही शैलियो का सम्मिश्रण हुआ है। भावावेश में अपने उद्‌गारो को गा उठने वाली मीराँ द्वारा इन उपर्युक्त शैलियो मे रचना अयुक्त ही प्रतीत होती है। इन पदाभिव्यक्तियो मे स्पष्ट हो जाता है कि यह कथनोपकथन मीराँ व माँ, ननद ऊदाँ बाई, सास और किसी राणा के बीच हुआ है। अद्यावधि मीराँ की माता का उनकी छोटी वयस मे ही निधन हो जाना मान्य है। प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका व अन्य उद्धरणों[1] के आधार पर भी पदो से व्यक्त होने वाले इस पहलू को सर्वथा अमान्य नही कहा जा सकता। ननद ऊदाँ बाई या सास के बारे मे भी वर्तमान इतिहास कोई सुनिश्चित हल नही दे पाता है। इसी तरह यह भी सुस्पष्ट नहीं हो पाता कि पदों मे वर्णित यह राणा कौन थे। पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह राणा मीराँ के पति ही सिद्ध होते हैं। कुछ पदो (स० ५) में तो राणा के साथ हुए विवाह का विशद वर्णन भी है। इतना ही नही विभिन्न पदाभिव्यक्तियों से यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि इस विवाह कार्य को मीराँ की अनिच्छा और कठिन विरोध की अवहेलना कर सम्पन्न किया जाता है। प्राप्त इतिहास बताता है कि गृह-प्रवेश के साथ ही साथ मीराँ का अन्य परिवार वालो से देवी-पूजा के प्रश्न को लेकर विरोध हो गया था। राजस्थानी प्रथानुसार गृह-प्रवेश के अवसर पर देवी-पूजा का कोई प्रसग ही नहीं उठता। अस्तु बहुत सम्भव है कि विवाह के प्रति उदासीनता की कथावस्तु ही कालान्तर मे देवी-पूजा के प्रति उदासीनता की कथा मे परिवर्तित हो गई हो। "लाजै कुम्भा जी रो वैंणणों" जैसी कुछ पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पदो में वर्णित ये राणा सम्भवत मीराँ के पति राणा कुम्भ ही थे। "लाजै दूदा जी रो वैंगणो" जैसी अभिव्यक्ति

---

१ देखें, 'मीराँ, एक अध्ययन'—मातापिता

से भी इस ओर कुछ प्रकाश पड़ता है। दूदा जी की पुत्री का राणा कुम्भ के साथ ब्याहा जाना समय के दृष्टिकोण से असंगत भी नहीं ठहरता। यहाँ एक और पहलू भी विशेष विचारणीय है। राजस्थान और बंगाल की जनश्रुतियाँ मीराँ को सधवा ही प्रमाणित करती है परन्तु ऐसे क्षेत्रों में जहाँ मीराँ के साहित्य का प्रचार पिछले कुछ वर्षों में हुआ है, जनश्रुति मीराँ को विधवा ही मानती है। मीराँ के जीवन का प्रमुख भाग राजस्थान में व्यतीत हुआ अत. वहाँ की जनश्रुति तुलनात्मक दृष्टिकोण से अधिक मान्य है। मीराँ की ख्याति राजस्थान के बाहर बंगाल में ही सर्व-प्रथम फैली; यहाँ तक कि बंगाल में 'भजन' शब्द ही मीराँ के पदों के लिये रूढ़िरूप हो गया। अत राजस्थान के बाद बंगाल की जनश्रुति को ही विशेष महत्व दिया जा सकता है। इन दोनो ही जनश्रुतियों से मीराँ विधवा सिद्ध नहीं होती। विभिन्न स्थलों पर एक ही रूप में चलने वाली जनश्रुति नितान्त निराधार हो, ऐसा सम्भव नहीं प्रतीत होता। भक्त-गाथाओं के आधार पर भी मीराँ का वैधव्य कहीं से भी लक्षित नहीं होता। अस्तु, अद्यावधि मान्य इतिहास की अपूर्णता को देखते प्राय सभी पदों से व्यक्त होती उपर्युक्त भावना को कोरी जनश्रुति कह कर कदापि टाला नहीं जा सकता।

ऐसी कुछ पदाभिव्यक्तियों में मीराँ के दृढ भक्ति-भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा भी मिलती है। स्पष्ट ही है कि ऐसी भक्तिमती नारी द्वारा स्वयं अपनी प्रशंसा असंगत ही है। फिर ऐसे पदों की क्रिया तृतीय-पुरुष वाचक है। इससे भी यही लक्षित होता है कि ऐसे पद किसी अन्य की रचना हैं।

मतभेद द्योतक अधिकांश पद राजस्थानी भाषा में ही प्राप्त हैं। कुछ पद व्रज मिश्रित राजस्थानी में और कुछ थोड़े से शुद्ध व्रजभाषा में भी मिलते हैं। मतभेद द्योतक पदों में अधिकांश का राजस्थानी में पाया जाना संगत भी है। इन राजस्थानी में प्राप्त पदों की अभिव्यक्ति पर मतभेद का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि व्रजभाषा में प्राप्त पदों पर वैष्णव-प्रभाव ही अधिक स्पष्ट है। व्रज मिश्रित राजस्थानी में प्राप्त पदों पर दोनों ही मतों का प्रभाव है। भाषा के परिवर्तन के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति में आया यह गहरा परिवर्तन विशेष विचारणीय है।

प्राप्त पदाभिव्यक्तियों से ही यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि यह मतभेद शीघ्र ही कटु संघर्ष में परिवर्तित हो गया। "ताला चौकी" बिठा कर मीराँ को महलों की सीमा में बाँध रखने का निष्फल प्रयास बार बार

किया गया। "जहर पियाला", "साँप पिटारा", "सूल सेज" आदि के द्वारा मीराँ की हत्या का षडयन्त्र भी किया गया। उपर्युक्त प्रयासो में निष्फल क्रुद्ध राणा ने स्वय ही मीराँ को "खड्ग" के पार उतारने का प्रयास किया। इन अप्रिय घटनाओं के कारण असतुष्ट हो मीराँ स्वय ही एक दिन पति-गृह त्याग कर अपने पीहर चली जाने को उद्यत होती है। यहाँ पदाभिव्यक्तियाँ विरोधात्मक हैं। कुछ पदाभिव्यक्तियो से मीराँ का अपने पीहर मेड़ते पहुँच कर तीर्थ-हेतु जाना सिद्ध होता है, तो अन्य पदाभिव्यक्तियों से बीच रास्ते से ही तीर्थ की ओर मुड जाना सिद्ध होता है। अधिकाश पदाभिव्यक्तियाँ प्रथम मान्यता का ही समर्थन करती हैं। पति-गृह से असतुष्ट हो कर मीराँ का पितृ-गृह जाना और कालान्तर मे तीर्थ-हेतु प्रस्थान, मान्य इतिहास का एक सुनिश्चित पहलू है। इतना ही नही प्राप्त इतिहास का यही एक ऐसा पहलू है जिस पर सब विद्वान् एकमत हैं और इतिहास व पदाभिव्यक्तियों में भी गहरा सामञ्जस्य है। इस गहरे साम्य के बावजूद भी इस तीर्थयात्रा के लक्ष्य को लेकर दोनो मे गहरा विरोध है। पदाभिव्यक्तियों के आधार पर जहाँ मीराँ का पितृ-गृह त्याग कर सीधे द्वारिका जाना सिद्ध होता है, वहाँ प्राप्त वृत्तान्त द्वारा मीराँ का वृन्दावन होते हुए द्वारिका जाना ही मान्य है। "डाँवो तो छोड्यो मीराँ मेड़तो, पेलाँ पोक्र जाय" (पद स० १, पाठान्तर २) "डाँवो तो छोड्यो मीराँ मेड़तो, पुष्कर न्हावा जाय" (पद स० ७) "डाँवो तो छोड्यो मीराँ मेड़तो, पूठ दयी चितौड़" जैसी अभिव्यक्तियों के आधार पर मीराँ द्वारा की गयी तीर्थ-यात्रा का मार्ग निर्धारित किया जा सकता है। ध्रुवदास रचित 'भक्त नामावली' में ही मीराँ की वृन्दावन-यात्रा का सर्व-प्रथम उल्लेख है। मुशी देवीप्रसाद भी इस विषय में अनिश्चित ही हैं। इतना ही नहीं, उनके मतानुसार मीराँ ने सम्भवत दो बार तीर्थ-यात्रा की थी। घटना और समय के क्रमानुसार विचार करने पर मीराँ द्वारा की गई वृन्दावन-यात्रा असम्भव ही सिद्ध होती है।

"इन सरवरिया री पाल" जैसे पदो मे उपर्युक्त घटना पर और भी प्रकाश पडता है। ऐसी पदाभिव्यक्तियों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण राजसी ठाट को छोड कर मीराँ अकेली ही "सरवर के पाल" खड़ी हैं। गृह-त्याग कर "पेलाँ पोक्र" या 'पुष्कर न्हाने" जाने जैसी उपर्युक्त पदाभिव्यक्तियों से लक्षित होनेवाले तीर्थ-यात्रा का मार्ग निर्देश और घटना-क्रम का सामञ्जस्य भी ठीक बैठ जाता है। गृह-त्याग के बाद

से भी इस ओर कुछ प्रकाश पडता है। दूदा जी की पुत्री का राणा कुम्भ के साथ ब्याहा जाना समय के दृष्टिकोण से असगत भी नही ठहरता। यहाँ एक और पहलू भी विशेष विचारणीय है। राजस्थान और बगाल की जनश्रुतियाँ मीराँ को सधवा ही प्रमाणित करती हैं परन्तु ऐसे क्षेत्रो में जहाँ मीराँ के साहित्य का प्रचार पिछले कुछ वर्षों में हुआ है, जनश्रुति मीराँ को विधवा ही मानती है। मीराँ के जीवन का प्रमुख भाग राजस्थान में व्यतीत हुआ अत. वहाँ की जनश्रुति तुलनात्मक दृष्टिकोण से अधिक मान्य है। मीराँ की ख्याति राजस्थान के बाहर बगाल मे ही सर्व-प्रथम फैली; यहाँ तक कि बगाल मे 'भजन' शब्द ही मीराँ के पदो के लिय रूढिरूप हो गया। अत. राजस्थान के बाद बगाल की जनश्रुति को ही विशेष महत्व दिया जा सकता है। इन दोनो ही जनश्रुतियो से मीराँ विधवा सिद्ध नही होती। विभिन्न स्थलो पर एक ही रूप में चलने वाली जनश्रुति नितान्त निराधार हो, ऐसा सम्भव नही प्रतीत होता। भक्त-गाथाओ के आधार पर भी मीराँ का वैधव्य कही से भी लक्षित नही होता। अस्तु, अद्यावधि मान्य इतिहास की अपूर्णता को देखते प्राय सभी पदो से व्यक्त होती उपर्युक्त भावना को कोरी जनश्रुति कह कर कदापि टाला नही जा सकता।

ऐसी कुछ पदाभिव्यक्तियो में मीराँ के दृढ भक्ति-भाव की भूरि-भूरि प्रशसा भी मिलती है। स्पष्ट ही है कि ऐसी भक्तिमती नारी द्वारा स्वय अपनी प्रशसा असगत ही है। फिर ऐसे पदो की क्रिया तृतीय-पुरुष वाचक है। इससे भी यही लक्षित होता है कि ऐसे पद किसी अन्य की रचना हैं।

मतभेद द्योतक अधिकाश पद राजस्थानी भाषा में ही प्राप्त है। कुछ पद व्रज मिश्रित राजस्थानी मे और कुछ थोडे से शुद्ध व्रजभाषा में भी मिलते हैं। मतभेद द्योतक पदो मे अधिकाश का राजस्थानी में पाया जाना सगत भी है। इन राजस्थानी में प्राप्त पदो की अभिव्यक्ति पर सतमत का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि व्रजभाषा में प्राप्त पदो पर वैष्णव-प्रभाव ही अधिक स्पष्ट है। व्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त पदों पर दोनो ही मतो का प्रभाव है। भाषा के परिवर्तन के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति मे आया यह गहरा परिवर्तन विशेष विचारणीय है।

प्राप्त पदाभिव्यक्तियों से ही यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि यह मतभेद शीघ्र ही कटु सघर्ष मे परिवर्तित हो गया। "ताला चौकी" विठा कर मीराँ को महलो की सीमा मे बाँध रखने का निष्फल प्रयास बार बार

किया गया। "जहर पियाला", "साँप पिटारा", "सूल सेज" आदि के द्वारा मीराँ की हत्या का षडयन्त्र भी किया गया। उपर्युक्त प्रयासों में निष्फल क्रुद्ध राणा ने स्वयं ही मीराँ को "खड्ग" के पार उतारने का प्रयास किया। इन अप्रिय घटनाओं के कारण असन्तुष्ट हो मीराँ स्वयं ही एक दिन पति-गृह त्याग कर अपने पीहर चली जाने को उद्यत होती हैं। यहाँ पदाभिव्यक्तियाँ विरोधात्मक हैं। कुछ पदाभिव्यक्तियों से मीराँ का अपने पीहर मेड़ते पहुँच कर तीर्थ-हेतु जाना सिद्ध होता है, तो अन्य पदाभिव्यक्तियों से बीच रास्ते से ही तीर्थ की ओर मुड़ जाना सिद्ध होता है। अधिकांश पदाभिव्यक्तियाँ प्रथम मान्यता का ही समर्थन करती हैं। पति-गृह से असन्तुष्ट हो कर मीराँ का पितृ-गृह जाना और कालान्तर में तीर्थ-हेतु प्रस्थान, मान्य इतिहास का एक सुनिश्चित पहलू है। इतना ही नहीं प्राप्त इतिहास का यही एक ऐसा पहलू है जिस पर सब विद्वान् एकमत हैं और इतिहास व पदाभिव्यक्तियों में भी गहरा सामञ्जस्य है। इस गहरे साम्य के बावजूद भी इस तीर्थयात्रा के लक्ष्य को लेकर दोनों में गहरा विरोध है। पदाभिव्यक्तियों के आधार पर जहाँ मीराँ का पितृ-गृह त्याग कर सीधे द्वारिका जाना सिद्ध होता है, वहाँ प्राप्त वृत्तान्त द्वारा मीराँ का वृन्दावन होते हुए द्वारिका जाना ही मान्य है। "डाँवो तो छोड्यो मीराँ मेड़तो, पेलाँ पोसर जाय" (पद स० १, पाठान्तर २) "डाँवो तो छोड्यो मीराँ मेड़तो, पुष्कर न्हावा जाय" (पद स० ७) "डाँवो तो छोड्यो मीराँ मेड़तो, पूठ दयी चितौड़" जैसी अभिव्यक्तियों के आधार पर मीराँ द्वारा की गयी तीर्थ-यात्रा का मार्ग निर्धारित किया जा सकता है। ध्रुवदास रचित 'भक्त नामावली' में ही मीराँ की वृन्दावन-यात्रा का सर्व-प्रथम उल्लेख है। मुंशी देवीप्रसाद भी इस विषय में अनिश्चित ही हैं। इतना ही नहीं, उनके मतानुसार मीराँ ने सम्भवतः दो बार तीर्थ-यात्रा की थी। घटना और समय के क्रमानुसार विचार करने पर मीराँ द्वारा की गई वृन्दावन-यात्रा असम्भव ही सिद्ध होती है।

"इन सरवरिया री पाल" जैसे पदों से उपर्युक्त घटना पर और भी प्रकाश पड़ता है। ऐसी पदाभिव्यक्तियों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण राजसी ठाट को छोड़ कर मीराँ अकेली ही "सरवर के पाल" खड़ी हैं। गृह-त्याग कर "पेलाँ पोसर" या 'पुष्कर न्हाने' जाने जैसी उपर्युक्त पदाभिव्यक्तियों से ध्वनित होनेवाले तीर्थ-यात्रा का मार्ग निर्देश और घटना-क्रम का सामञ्जस्य भी ठीक बैठ जाता है। गृह-त्याग के बाद

मीराँ की मानसिक स्थिति अत्यन्त करुण हो उठी है। "भर भर धोवा धोये नैन, सावाँ रो सग जोवति" मीराँ "आमण दूमणी" हो उठी है। अपने दृढ भक्ति-भाव और समर्पण के बाद भी सतत महल-निवासिनी मीराँ का अपने को नितान्त एकाकिनी पाकर क्षणिक आकुलता का अनुभव करना असगत भी नहीं कहा जा सकता। सम्भव है कि प्राप्त वृत्तान्त और प्राप्त पदो मे सामञ्जस्य की एक कडी सिद्ध होने वाले इन पदो से व्यक्त होती अन्य भावनाओ और घटनाओ का पक्षपात विहीन विश्लेषण इतिहास की सुदृढ रूपरेखा बनाने मे सफल हो सके।

विभिन्न अलौकिक गाथाओ का वर्णन भी इन सघर्ष द्योतक पदो का एक प्रधान अग है। राणा द्वारा मीराँ तक "जहर पियाला" भेजे जाने की कथा प्राय सबत्र ही मिलती है। पदाभिव्यक्तियो और प्राप्त सामग्री के आधार पर भी यह सुनिश्चित हो जाता है कि मीराँ के साधु-समागम के कारण फैलती बदनामी के कारण राणा ने मीराँ तक "जहर पियाला" भेजने म ही अपना कल्याण समझा। अत कुछ लोगो के मतानुसार अपने एक मुँहलगे मसाहिब के द्वारा और अन्य कुछ किम्वदन्तियो के अनुसार अपनी बहन ऊदाँ बाई के द्वारा यह पियाला मीराँ तक पहुँचा दिया जाता है। पदाभिव्यक्तियों से यह प्रकट होता है कि ननद ऊदाँ इस "पियाले" के रहस्य को जानती थी और [illegible] मीराँ को इसमे आगाह भी कर चुकी थी। नाभादास में भी मीरा का [illegible] द्वारा दिये गये विष की चर्चा मिलती है। इस विष-पान का प्रभाव मीरा पर क्या पडा यह सर्वथा अनिश्चित ही है। मुशीजी [illegible] उल्लेख करते हैं। एक मान्यता के अनुसार मीरा का [illegible] जाता है और मरते मरते वे विष लाने वाले राणा के [illegible] जिसके कारण आज तक भी उस [illegible] और [illegible] की वृद्धि [illegible] साथ नहीं हो पाती। [illegible] मीरा किसी रहस्यमय तरीके से बच जाती है [illegible] का इस अप्रिय घटना का पता चलता है [illegible]। परन्तु [illegible] भी साधु-समागम में गहरी [illegible] हो [illegible] और सम्पूर्ण राज वैभव [illegible] आराध्य के आश्रय मे। [illegible] जीवन की किसी [illegible] और नाभादास में भी

उसकी चर्चा ठीक उसी रूप में कर दी हो और कालान्तर में कवि-हृदय का यह सत्य ही जनश्रुतियों में वस्तुतः सत्य बन गया हो। जो भी हो, यह तो निश्चित है कि विष-पान की जनश्रुति अन्य जनश्रुतियों से बहुत पुरानी है क्योंकि नाभादास में भी इसकी चर्चा मिलती है।

"शूल सेज" और "साँप पिटारा" भेजे जाने की अथवा "खड्ग" से हत्या के प्रयास की जनश्रुतियों का वर्णन रघुराजसिंह कृत 'भक्तनामावली' में भी प्राप्त नहीं होता। अतः यह सिद्ध हो जाता है कि इनका प्रचलन बहुत बाद में हुआ है। फिर, एक ही कथा के कई विभिन्न रूप भी पाये जाते हैं। अतः उनकी प्रामाणिकता और भी संदिग्ध है। उदाहरणार्थ "साँप पिटारा" की कथा है। यह साँप कहीं "सालिगराम की बटिया" में, कहीं "चन्दन हार" में और कहीं "मोतीडारो हारों" में भी परिवर्तित हो जाता है। इन उपर्युक्त कथाओं के द्योतक कुछ इने-गिने पद वर्णनात्मक शैली में ही प्राप्त हैं। अस्तु, ऐसी कथाओं को मीराँ के प्रति भक्तों की अतिरंजित श्रद्धांजलि मात्र ही कहा जा सकता है।

अभिव्यक्ति के आधार पर अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होनेवाले ये संघर्ष-द्योतक सभी पद राजस्थानी में ही प्राप्त हैं। उपर्युक्त विभिन्न समूहों में यही एक ऐसा समूह है जिसके पद केवल राजस्थानी में ही प्राप्त हैं। इन प्राप्त पदों में कुछ पद तो ठेठ पुरानी राजस्थानी में प्राप्त हैं और शेष पदों की भाषा आधुनिक राजस्थानी है।

मतभेद और संघर्ष द्योतक लगभग सभी पद वर्णनात्मक और कथोपकथन की मिश्रित शैलियों में प्राप्त हैं। शैली के आधार पर ये पद नौटंकियों के पद्यबद्ध वार्तालाप कहे जा सकते हैं। पारस्परिक वार्तालाप के बीच-बीच में कथा-वस्तु का वर्णन नौटंकियों के लिये आवश्यक भी सिद्ध होता है। नौटंकियों और रासलीला आदि करने वालों में ऐसी परम्परा प्रचलित भी है। अपनी पुस्तक मीरांबाई में पृष्ठ ११ पर डा० श्री कृष्णलाल लिखते हैं, "मध्यकालीन भारत में प्रमुख भक्तों और महापुरुषों की स्मृति अनेक गीतों, कथा-वार्ताओं और प्रसंगों तथा रूपकों द्वारा जीवित रखी जाती थी। कवि और गायक गीतों और पदों में उन महात्माओं की कीर्ति गाते लिखते थे। वृद्धगण उनके संबंध में अनेक कथा और प्रसंग उत्सुक श्रोताओं को सुनाते रहते थे और संगीत अथवा छंदबद्ध वार्तालापों में उनके जीवन के प्रमुख प्रसंग रूपकों के रूप में प्रदर्शित किए जाते थे।" अस्तु, उपर्युक्त श्रेणी के पद

अपने प्रचलित रूप में तो प्रामाणिक कदापि नहीं माने जा सकते हैं। तब भी, सम्पूर्ण प्राप्त सामग्री में सामञ्जस्य की एक कड़ी सिद्ध होने वाले इन पदों की अभिव्यक्ति की सर्वथा अवहेलना भी नहीं की जा सकती। एक मध्य-मार्ग को अपनाकर ही इस गम्भीर समस्या का हल निकाला जा सकता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्राप्त पदाभिव्यक्तियों और प्राप्त सामग्री की मनोवैज्ञानिक आलोचना ही प्रस्तुत समस्या का एक मात्र हल हो सकती है।

यहाँ, प्रचलित जनश्रुतियों पर विचार कर लेना भी अप्रासंगिक न होगा। ऐतिहासिक जनश्रुतियों का नितान्त निराधाररूपेण चल पड़ना सम्भव नहीं प्रतीत होता। सूक्ष्मातिसूक्ष्म आधार को कल्पना और भावना के आधार पर अतिरंजित और अलौकिक बनाया जा सकता है, परन्तु आधार के नितान्त अभाव में ऐसा सम्भव नहीं प्रतीत होता, विशेषत जब विभिन्न पदाभिव्यक्तियों में कथा एक ही रूप में मिलती हो। मीराँ की यात्राओं का मार्ग-निर्देश करने वाली विभिन्न पदाभिव्यक्तियों से एक ही तथ्य प्रकट होता है। इतना ही नहीं, प्राप्त भक्त-गाथाएँ, पदाभिव्यक्तियाँ और जनश्रुतियों का सम्मिश्रण ही हमारे मान्य इतिहास का एक महत्वपूर्ण आधार है। अस्तु, इतिहास की सुदृढ़ रूपरेखा तय्यार करने के लिये सम्पूर्ण प्राप्त सामग्री की समन्वयात्मक आलोचना अत्यावश्यक हो जाती है।

प्राप्त पदों में सर्वाधिक संख्या ऐसे पदों की है जिनकी अभिव्यक्ति वियोगात्मक है। ऐसे कुछ पदों में संघर्ष की भी अभिव्यक्ति मिलती है परन्तु अधिकांश पदों में मात्र वियोग ही लक्षित होता है। वियोग की यह अभिव्यक्ति अधिकांश संघर्ष-द्योतक पदों में भी मिलती है। अत॰ प्रस्तुत पुस्तक में मतभेद द्योतक पदों के बाद ही वियोग द्योतक पद और तब संघर्ष द्योतक पद रखे गये हैं, परन्तु प्रस्तुत विवेचना में इस क्रम को बदल कर संघर्ष द्योतक पदों की चर्चा पहले ही कर दी गई है क्योंकि उपर्युक्त दोनों भावाभिव्यक्ति द्योतक पदों की विवेचना के कई पहलू सर्वथा एक हैं और अंत में भी गहरा साम्य है।

संघर्ष द्योतक पदों में प्राप्त वियोगाभिव्यक्तियों में वह भाव-गाम्भीर्य नहीं जो वियोग द्योतक पदाभिव्यक्तियों की विशेषता है। ऐसी पदाभिव्यक्तियों में विरह व्याकुला नारी की सुरुचिपूर्ण भोजन, भवन और शृङ्गारादि के प्रति गहरी उदासीनता ही लक्षित होती है। नौटंकियों की शैली में प्राप्त पदों में भाव गाम्भीर्य ही कृत्रिम सिद्ध होता।

वियोग द्योतक पदो मे "दरद की मारी" नारी की करुण आतुरता का अति गम्भीर व सुन्दर चित्र खीचा गया है। अन्य भक्त-कवियो मे भी विरहाभिव्यक्ति मिलती है। वैष्णव-साहित्य राधा-कृष्ण के प्रेम और वियोग के गीतो से परिपूर्ण है तो सत-साहित्य भी इस वियोगाभिव्यक्ति से रिक्त नही। "राम की बहुरिया" बने हुए कबीर की वियोगाभिव्यक्ति कही-कही नारी हृदय की सहज वियोगाभिव्यक्ति के समकक्ष आ जाती है। इतने पर भी, "सूनी सेज न कोई" या "तेरा साँइयाँ तुज्झ में" जैसी भावनाओ का एक अन्तःस्रोत सतत लक्षित होता रहता है। मीराँ की विरहाभिव्यक्ति इन दोनो से ही सर्वथा भिन्न पडती है। यहाँ न तो वैष्णव साहित्य की अतिशयोक्ति है न सत-साहित्य का तत्व-चिन्तन। यहाँ तो केवल एक ऐसा दर्द है जिसको कोई नही जानता और शायद जान भी नही सकता। मीराँ स्वय ही कहती हैं —

"दरद की मारी मैं बन बन डोलूँ, मेरो दरद न जाने कोय।
घायल की गति घायलया जाने, की जिन लाई होय।"
"को विरहणी को दुख जाणे हो।
जा घट विरहा सोई लखि है, कै कोई हरिजन मानै हो।"

यह दर्द भी सम्पूर्ण मानव-भावनाओ से ओतप्रोत है। इसमे खीज है, उपालम्भ है, मनावन है और है आत्म-समर्पण, जो सर्वोपरि है। मीराँ के आँसू गोकुल मे बाढ नही लाते अपितु वे भी "मोतियन की माल" बन जाते हैं, शायद आराध्य की पूजा हेतु ही। विरहाकुला गोपियाँ मधुवन को आराध्य के वियोग मे भी हरा भरा रहने के लिये धिक्कारती हैं परन्तु मीराँ स्वय अपने कठिन हृदय को ही धिक्कारती हैं जो आराध्य के वियोग मे अब तक भी फट नही गया —

"पिंड माँ सूँ प्राण पापी, निकस क्यूँ नही जात।"

परन्तु यहाँ भी कितनी बडी विवशता है। आराध्य के दर्शनो के लोभ मे ही प्राण अब भी अटके हुए हैं —

"सावण आवण कहि गया रे, हरि आवण की आस।
रैन अधेरी बीज चमकै, तारा गिणत निरास।
लेई कटारी कठ सारूँ, मरूँगी जहर विष खाइ।
मीराँ दासी राम राती, लालच रही ललचाइ।"

मीराँ द्वारा की गई इन गम्भीर विरहाभिव्यक्तियो में किसी व्यक्तिगत

दाम्पत्य सम्बन्ध को व्यक्त करने वाला अन्त स्रोत पुन पुन लक्षित हो उठता है। अस्तु, श्री परशुराम जी चतुर्वेदी के शब्दो में कहा जा सकता है कि "मीरांबाई के इष्टदेव सगुण व साकार श्रीकृष्ण थे।"[1] वियोगाभिव्यक्ति द्योतक पद राजस्थानी, ब्रज मिश्रित राजस्थानी, ब्रज, गुजराती, पजाबी और खडी बोली आदि विभिन्न बोलियो में प्राप्त है। राजस्थानी और ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त पदो की अभिव्यक्ति लगभग एक ही सी पडती है। ये अभिव्यक्तियाँ हृदय-गत भावनाओ के छद-अलकार-विहीन शुद्धतम चित्र है। इनकी अभिव्यक्ति मे एक तडप है, एक टीस है। अधिकाश पदो मे अपने इष्टदेव से शीघ्रातिशीघ्र दर्शन देने के लिये अति करण प्रार्थना की गई है। ऐसे कुछ पदो पर नाथपथ का हल्का-सा प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त कुछ पदो पर सतमत का भी प्रभाव मिलता है। ऐसे कुछ पदो मे गुरु की चर्चा मिलती है। एक पद म मीराँ अपने गुरु का नाम रैदास बताती हैं। ब्रजभाषा म प्राप्त पद साहित्यिक सौन्दर्य का विशेष रूपेण सृजन करते है। यहा तक कि कुछ पद तो सूरदास के पदो से भी होड लेते मे प्रतीत होते हैं। ऐसे अधिकाश पदो मे पौराणिक गाथाओ का ही वर्णन है। हिन्दी की अपूर्व गायिका मीराँ की महत्ता एक कवयित्री के रूप म नही अपितु एक भक्तिमती नारी के रूप में ही है। हृदय-गत भावनाओ की सहज सरल अभिव्यक्ति के कारण ही ये पद इतने अधिक जन प्रिय हो सके है।

मीराँ का वृन्दावन-गमन और निवास बहु-मान्य होते हुए भी असदिग्ध नही। प्राप्त सामग्री म घटना और समय के क्रमो मे असम्बद्धता स्पष्ट ही है। शास्त्रीय शिक्षा का सुअवसर भी मीराँ को प्राप्त हुआ हो, ऐसा भी प्राप्त सामग्री से स्पष्ट नही होता। अस्तु, विशुद्ध ब्रजभाषा मे उच्चकोटि के ये कुछ पद प्रामाणिक रूपेण मीराँ की रचना हो या न हो, पर हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि निस्सदेह ही हैं।

गुजराती म प्राप्त अधिकाश पदो की अभिव्यक्तियो मे विरोधाभास और पूर्वापर सबध का अभाव है। इनमे वह भाव-गाम्भीर्य भी नही जो मीराँ के पदो की विशेषता है। पजाबी मे दो और खडी बोली मे एक पद प्राप्त है। इनकी अभिव्यक्ति भी बहुत हल्की पडती है।

---

१. 'मीराँ स्मृति ग्रथ'—'सतमत और मीराँ' पृ० ४६३।

मिलन जनित आनन्द को व्यक्त करने वाले कुछ पद उपर्युक्त सभी भाषाओं में प्राप्त हैं। इनमें से अधिकांश ब्रजभाषा में ही हैं। "बहोत दिनाँ की जोवती, विरहिन पिव पाया जी" जैसी पदाभिव्यक्ति ही इन पदों की विशेषता है। ऐसे कुछ पदों से वैष्णव मत का प्रभाव सुस्पष्ट है शेष से संतमत का प्रभाव ही व्यक्त होता है तथापि उमड़ते हुए आनन्द की सहज अभिव्यक्ति ही इनकी विशेषता है। शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में प्राप्त संतमत से प्रभावित इन पदों की प्रामाणिकता विशेष विचारणीय है।

आराध्य के प्रति एक गहरा समर्पण ही मीराँ की विशेषता है। ऐसे अनुभूति-द्योतक कुछ थोड़े से पद प्राप्त होते हैं। राजस्थानी में ऐसे दो पद प्राप्त हैं जिनमें एक, *"मीराँ रंग लाग्यो हरि"* की *प्रामाणिकता* विशेष विचारणीय है। ब्रज मिश्रित राजस्थानी में प्राप्त दोनों पदों की प्रामाणिकता भी असंदिग्ध नहीं। ब्रजभाषा में प्राप्त पदों की कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं। इनकी अभिव्यक्ति के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि मीराँ को समाज और स्वजनों से गहरी लांछना ही मिली थी तथापि किसी एक वर्ग से गहरा समर्थन और सम्मान भी मिला था।

"कोई कहै मीराँ भई बावरी, कोई कहै कुलनासी।
कोई कहै मीराँ दीप आगरी, नाम पिया सूँ रसी।"

लोक-निन्दा और पारिवारिक कटुता की सर्वथा अवहेलना करते हुए अपने निर्धारित मार्ग पर दृढ़ रहने की अभिव्यक्ति ही इन पदों की दूसरी विशेषता है। अवधी और गुजराती में भी समर्पण द्योतक कुछ पद प्राप्त होते हैं परन्तु भाव और भाषा के आधार पर इनकी प्रामाणिकता सर्वथा संदिग्ध ही प्रतीत होती है। इन विभिन्न भाषाओं में प्राप्त समर्पण-द्योतक अधिकांश पदों पर संतमत का ही विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ऐसे अधिकांश पदों में "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर" जैसी टेक-परम्परा "यूँ कहै मीराँ बाई", "मीराँ के प्रभु गहिर गम्भीरा" आदि विभिन्न प्रयोगों में परिवर्तित हो गई है।

कुछ पदों में यह परम्परा 'मीरा दासी', 'दासी मीरा', 'मीरा दास' और 'जन मीराँ' में भी परिवर्तित हो गई है। ऐसे पद अन्य सभी प्राप्त पदों से सर्वथा भिन्न पड़ते हैं। इन पदाभिव्यक्तियों से मीराँ के जीवन पर बहुमुखी प्रकाश पड़ता है। ऐसी अभिव्यक्तियों से विभिन्न घटना-क्रम के

साथ ही साथ विभिन्न धार्मिक मतों का प्रभाव भी स्पष्ट हो जाता है। ऐसे पदों मे सर्वाधिक सख्या उन पदो की है जिनकी अभिव्यक्ति वियोगात्मक है और जो नाथ-पथ से विशेष प्रभावित है। विशेषत. इन्ही पदाभिव्यक्तियो के आधार पर मीराँ के इष्टदेव "सगुण व साकार" प्रतीत होते है।

राजस्थानी में प्राप्त 'दासी' और 'जन' छाप युक्त अधिकाश पदो में विरहाकुला नारी की आराध्य से शीघ्र दर्शन देने की आतुर प्रार्थना है। ऐसे अधिकाश पदो पर विभिन्न धार्मिक मतमतान्तरो का कोई विशेष प्रभाव नही दीखता तथापि एक पद (स २८३) से सतमत का और कुछ पदो से विभिन्न पौराणिक गाथाओ का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। पद स० २८४ ही एक ऐसा पद है जिसमें रणछोड जी का वर्णन हुआ है।

व्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त पदाभिव्यक्ति भी वियोग-द्योतक ही है। इन पदो पर पौराणिक गाथा और नाथ-पथ का समान रूपेण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

व्रजभाषा मे प्राप्त ऐसे पदो पर सतमत का ही विशेष प्रभाव है। इन पदाभिव्यक्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ख्याति फैलने के बाद परिवारवालो से मीराँ को सम्मान मिला।

"कुल कुटुम्बी आन बैठे, मनहुँ मधुमासी।
दास मीरा लाल गिरधर, मिटी जग हाँसी।"

यह एक विशेष विचारणीय पहलू है। अन्य कुछ पदो मे आनन्द और दृढ भक्ति-भाव भी लक्षित होता है। कुछ प ो पर पौराणिक गाथाओ का भी प्रभाव मिलता है परन्तु ऐसे पदो में भाव-गाम्भीर्य नही है।

गुजराती मे प्राप्त पदों मे पौराणिक गाथाओं के साथ ही निर्वेद की भी अभिव्यक्ति मिलती है। पजाबी में एक ही पद प्राप्त होता है जिसकी भी प्रामाणिकता सदिग्ध ही है।

'दास' और 'जन' प्रयोग की परम्परा अन्य भक्त-कवियो में भी प्राप्त होती है। एच० एच० विलसन के मतानुसार दक्षिण भारत में 'मीराँ दासी' सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी। श्री नटवर नडियाल भी अपनी पुस्तक मे इस सम्प्रदाय की कुछ चर्चा करते है। अन्यत्र कही कोई ऐसा स्पष्ट उल्लेख नही मिलता जिसके आधार पर इस सम्प्रदाय का इतिहास जाना जा सके।

हिन्दी जगत् मे मीराँ सर्व-प्रथम एक भक्तिमती नारी के ही रूप मे आती हैं। इनके नाम पर प्रचलित विभिन्न पदो से विभिन्न धार्मिक

भावनाओं का प्रभाव सुस्पष्ट होता है। विक्रम की १५, १६ और १७वीं शताब्दियों का युग विभिन्न धार्मिक भावनाओं से आलोडित एक अपूर्व युग था। इस युग में प्रस्फुटित होती प्रेरणा ब्राह्मणों द्वारा प्रसारित पौराणिक युग-धर्म व इनकी रूढ़ियों को एक गहरी चुनौती थी। इस युग में एकेश्वरवाद के शुष्क सिद्धान्तों और प्रचलित कर्मकाण्ड का सर्वथा खण्डन करने वाली एक अद्भुत व अभूतपूर्व धार्मिक प्रवृत्ति का उदय हुआ। यह प्रवृत्ति मानव-हृदय की रस-सिक्त सहज भावनाओं के अधिक निकट पड़ी। नवीन उदित होने वाली इस प्रवृत्ति में तत्व-चिन्तन और आत्मज्ञान के शुष्क सिद्धान्तों के प्रति गहरी उदासीनता थी तो ब्राह्मणों द्वारा प्रसारित कर्मकाण्ड में भी कोई आस्था नहीं थी। इतना ही नहीं, बौद्धों की सेवा, दया और जीव-मात्र के प्रति प्रेम के सिद्धान्तों से भी पूर्ण सतोष न था। व्यक्तिगत हृदय की प्रवृत्तियाँ ही इस नवीन धर्म की नींव थी। यह धर्म व्यक्ति का धर्म था। आराध्य के प्रति एकान्त समर्पण ही इसकी विशेषता थी। इसी धर्म को पडितों ने भक्ति-धर्म की सज्ञा प्रदान की। इस भक्ति-धर्म का उद्गम कब और कहाँ हुआ, यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता यद्यपि श्रीमद्भागवत में ही इसका सर्व-प्रथम स्पष्ट उल्लेख मिलता है। गीता में प्रतिपादित भक्ति-धर्म में और जन-समुदाय में प्रसारित भक्ति धर्म के मूल सिद्धान्तो मे ही गहरा अन्तर है। गीतानुमोदित भक्ति-मार्ग में ज्ञान और कर्म भी सर्वथा अपेक्षित है परन्तु जनता में प्रचलित इस धर्म में नारद के भक्ति-सूत्र तथा भागवत के अनुकूल विशुद्ध भावमय मार्ग ही अपेक्षित है। पूर्ण शान्ति और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति ही इसका लक्ष्य था। जनता मे इस धर्म को प्रसारित करने का श्रेय दक्षिण भारत के वैष्णव गायक-कवि अलवारो को प्राप्त है। "जाति पाँति पूछै नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई" जैसी भावना को जन्म इन्हीं अलवार साधको से मिला। ये स्वय जाति-बहिष्कृत थे और शूद्रों व जाति-बहिष्कृतों को भी उपदेश देते थे। इन अलवार कवियों के सुमधुर गान मे प्रस्फुटित होने वाली इस विशुद्ध भक्ति-भावना ने कालान्तर में पडितो और विचारकों को भी प्रभावित किया। फलत हृदयगत भावनाओं से उद्भासित इस धर्म का भी एक शास्त्र बन गया। विभिन्न यम-नियम और दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर एक गहरा वितण्डावाद खड़ा हो गया जो भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। रामानुज इस आन्दोलन के प्रमुख आचार्य थे।

क्रमश: यह आन्दोलन दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर प्रसारित होने लगा। उत्तर भारत में इसके अग्रगण्य नेता थे रामानन्द, जिन्होंने काशी को अपना क्षेत्र बनाया।

"भक्ति द्राविड ऊपजी, लाये रामानन्द ।
प्रकट करी कबीर ने, सप्त दीप नौ खड ।"

उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते हुए इस नवीन आन्दोलन के प्रभाव से राजस्थान भी अछूता न रह सका। राजस्थान में प्रत्येक प्रचलित धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ तथा विचार-स्वातन्त्र्य का पूर्ण अनुमोदन हुआ। फलत: एकलिंग और भवानी के उपासक राणा-परिवार में भी महाराणा कुम्भ वैष्णव भक्ति के रग में रँग कर राधा-कृष्ण के प्रेम-गीत गा उठे तो दूसरी ओर "अक्बर के गर्व दलनहार और चितौड के जोद्धार" वीर श्रेष्ठ जयमल भी परम वैष्णव सुविख्यात हुए। चितौड की महाराणी झाली ने भी रामानन्द के शिष्य कबीर के गुरुभाई चर्मकार रैदास को अपना गुरु स्वीकार करने मे गौरव का ही अनुभव किया। राजस्थान, इस युग में प्रवाहित होनेवाली इन तीनो ही विभिन्न धाराओ का सगमराज बना हुआ था। अस्तु मीराँ की रचना पर भी तीनो ही विभिन्न धाराओ का प्रभाव का पाया जाना स्वाभाविक ही सिद्ध होता है। अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि मीराँ अपने युग की प्रतिनिधि कवयित्री थी।

प्राप्त पदो में तीनों धाराएँ इतनी स्पष्ट हैं कि इनको बडी सरलता से छाँटा जा सकता है। कृष्ण-भक्ति के कारण ही मीराँ की सर्वाधिक ख्याति हुई। अत वैष्णव-परम्परा से प्रभावित पदों पर ही सर्व-प्रथम विचार कर लेना उचित होगा।

वैष्णव-परम्परा से प्रभावित पदो को भी दो विभिन्न प्रभेदो में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम समूह उन पदो का है जिनसे निर्वेद की भावना झलकती है। इनमे ससार के सुख और सम्बन्धी को मोह जनित और नश्वर मान कर उनकी ओर से एक गहरी उदासीनता और परमात्मा के शरणागत होने पर ही पूर्ण शान्ति और आनन्द की प्राप्ति सम्भव होने की ही अभिव्यक्ति मिलती है। ये पदाभिव्यक्तियाँ अधिकाशत उपदेशात्मक हैं। कुछ पदो पर विभिन्न पौराणिक गाथाओं का प्रभाव भी मिलता है। ऐसे पद राजस्थानी ब्रज मिश्रित राजस्थानी, ब्रज, गुजराती और खडी बोली म भी पाये जाते हैं। इन पदो म से अधिकाश की प्रामाणिकता सदिग्ध ही है। खडीबोली म प्राप्त पदो को भाषा के आधार पर निश्चित-

रूपेण प्रक्षिप्त कहा जा सकता है। गुजराती में प्राप्त अधिकांश पद भी भाव और भाषा के आधार पर प्रामाणिक नही प्रतीत होते हैं। राजस्थानी और व्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त अधिकाश पदों मे पूर्वापर सबध का और अर्थ-सगति का सर्वथा अभाव है। अस्तु, ऐसे अधिकाश पदो को तो प्राप्त रूप में प्रामाणिक मान लेना सगत नही सिद्ध होता।

वैष्णव परम्परा से प्रभावित अन्य पदो पर पौराणिक गाथाओं का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वियोगाभिव्यक्ति द्योतक पदो के बाद सर्वाधिक सख्या इन्ही पदो की है। इनमे भी बहुसख्यक पद राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला और बाँसुरी-वर्णन के ही हैं। इसी वर्ग के पद सर्वाधिक विभिन्न प्रान्तीय बोलियों में भी प्राप्त हैं। राजस्थानी, व्रज मिश्रित राजस्थानी, व्रज, गुजराती, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियाँ इन पदो की भाषा है। निर्वेदाभिव्यक्ति द्योतक पदो की तरह ही इनमें भी अधिकाश मे पूर्वापर सबध और अर्थ-सगति का अभाव है। अत बहुत सम्भव है कि इनमे से अधिकाश पद प्रामाणिक न हों। 'मीर माधो', 'रैदास' आदि अन्य भक्त कवियो के पद भी मीराँ के नाम पर चल पडे हैं। सर्वाधिक सख्या में 'चन्द्रसखी' के पद ही मीराँ के पदो से मिल कर मीराँ के ही नाम पर चल पडे हैं। राजस्थान के इस जन-प्रिय कवि का साहित्य और वृत्तान्त दोनो ही गहरे अन्धकार मे हैं। मीराँ के पदो की तरह इनके सकलन का भी एकमात्र आधार लोक-गीत ही है। लोक-गीतो की यह परम्परा भी बडे वेग से लुप्त हो रही है। अत समय रहते ही सकलन हो जाने की अत्यधिक आवश्यकता है। प्रस्तुत सग्रह को तय्यार करने के प्रसग में ही 'चन्द्रसखी' के कुछ पदो को सकलित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। ये लगभग सौ पद हैं। इन प्राप्त पदो मे 'चन्द्रसखी' के व्यक्तित्व या जीवन-वृत्तान्त पर कोई प्रकाश नहीं पडता। ऐसी भी एक मान्यता है कि सम्भवत मीराँ ने ही इस उपनाम से रचना की; परन्तु ऐसी मान्यता का कोई आधार नहीं। 'चन्द्रसखी' नामक यह भक्त कौन थे और कब हुए थे यह जानने का कोई भी सूत्र अद्यावधि उपलब्ध नही। इनकी प्रामाणिक रचनाओ को भी छाँट लेने का भी कोई आधार नही। जो भी हो, प्राप्त पदो के आधार पर इतना तो निश्चित-रूपेण ही कहा जा सकता है कि 'चन्द्रसखी' और मीराँ के कुछ पदो में भाव और भाषा का गहरा साम्य है। इतना ही नहीं, कुछ पद तो एक दूसरे

के गेय-रूपान्तर ही प्रतीत होते हैं, तो अन्य कुछ पदो में शब्दावली भी हूबहू एक ही है। उपर्युक्त परिस्थिति मे यह कहना सम्भव नही कि कौन पद मौलिक रूपेण किसका है। इतने पर भी, 'चन्द्रसखी' के पदो में प्राप्त "चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि" जैसी टेक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'चन्द्रसखी' की भक्ति वात्सल्य-भाव की ही थी। मीराँ अपनी माधुर्य-भाव की भक्ति के लिये ही प्रसिद्ध हुईं। सम्भवतः इस आधार पर कुछ पदो को छाँट लेने का प्रयास सफल हो सके।

तथाकथित मीराँ के कुछ पदों से सतमत का प्रभाव विशेष रूपेण स्पष्ट हो जाता है। मतभेद, सघर्ष, वियोग, आनन्द, समर्पण आदि सभी विभिन्न भावाभिव्यक्ति द्योतक पदो मे भी सतमत का प्रभाव लक्षित होता है। 'दासी' और 'जन' प्रयोग युक्त पदो में भी कुछ थोड़े से पद सतमत से प्रभावित मिल जाते हैं। कुछ पदो में मीराँ अपने गुरु का नाम रैंदास बतलाती हैं। मुशी देवीप्रसाद के आधार पर मीराँ को भोजराज की विधवा मान लेने पर मीराँ और रैंदास दोनो के जीवन-काल में लगभग सौ वर्ष का अन्तर पड़ जाता है। अतः रैंदास का मीराँ का गुरु होना सर्वथा ही असम्भव हो जाता है परन्तु मुशी देवीप्रसाद का कथन भी सर्वथा प्रामाणिक नही सिद्ध होता। असम्भव नही कि मीराँ राव दूदा जी की पुत्री और राणा कुम्भ की ही राणी हो। जनश्रुतियाँ और पदाभिव्यक्तियाँ इसका समर्थन करती हैं तथा इतिहास सुनिश्चित न होते हुए भी विरोधात्मक नहीं। सर्वमान्य है कि मीरा का विरोध कृष्ण-पूजा के हेतु नही अपितु कुलमर्यादा के विरुद्ध पड़ने वाले साधु-समागम के कारण हुआ। अस्तु अद्यावधि इन रचनाओं को निश्चित रूपेण प्रामाणिक या प्रक्षिप्त कहना युक्तियुक्त न होगा। फिर भी, प्रामाणिक पदों के छाँट लेने के *लिये ही भाव भाषा के आधार पर इनका विश्लेषण आवश्यक हो जाता* है। राजस्थानी, ब्रज मिश्रित राजस्थानी, और ब्रज तीनो ही भाषाओ मे सतमत से प्रभावित पद प्राप्त होते हैं। सतमत से प्रभावित शुद्ध ब्रजभाषा में प्राप्त इन कुछ पदो की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध ही प्रतीत होती है। इनमें अधिकांश पदों में लय-संगति और पूर्वापर संबंध का अभाव है, फलतः उपर्युक्त संदेह को एक और समर्थन मिलता है।

वैष्णव और सतमत से प्रभावित इस राणापरिवार में एकलिंग और भवानी की पूजा का महत्व सदा ही अक्षुण्ण रहा। एकलिंग के पुजारी

नाथ-पथानुयायी जोगी ही हुआ करते थे। राज-परिवार पर नाथ-पथ के इस गहरे प्रभाव के रहते हुए भी जनता इससे विमुख हो चली थी। जनता में नाथ-पथ और उसके योगियो के प्रति आदर-सम्मान नही रह गया था।

बहुत सम्भव है कि राजपरिवार से सम्बन्धित होने के कारण मीराँ भी कुछ विशिष्ट योगियो के सम्पर्क में आयी हो और इनसे प्रभावित भी हुई हो। अत नाथ-परम्परा से प्रभावित पदो की रचना अयुक्त नही कही जा सकती।

ऐसे पदो मे सर्वाधिक पदो की अभिव्यक्ति वियोगात्मक है। इतना ही नही, इन्ही पदो में प्राप्त अभिव्यक्तियो के आधार पर किसी व्यक्तिगत दाम्पत्य सम्बन्ध को व्यक्त करनेवाला अन्त स्रोत विशेष रूपेण प्रस्फुटित हो जाता है। किसी जाते हुए 'जोगी' को रोक रखने का निष्फल प्रयास, 'जोगी' के वियोग की वेदना और उसके विश्वासघात के प्रति गहरे उपालम्भ के साथ ही साथ एक गहरे समर्पण की अभिव्यक्ति ही इन पदो की विशेषता है। इन पदाभिव्यक्तियों के आधार पर यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ अपने नाथ परम्परानुसार सुसज्जित 'जोगी' आराध्य के अनुकूल स्वय भी "भगवाँ भेप" धारण कर "जोगण" बनने को "आकुल व्याकुल" हो उठी है।

इनमे अधिकाश पद राजस्थानी मे ही प्राप्त है, जैसा कि स्थिति विशेष में स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। कुछ पद ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे और कुछ पद ब्रज व गुजराती भाषा मे भी प्राप्त है। नाथ-प्रभाव-द्योतक ये थोडे से पद, विशेपत इनमें प्राप्त वियोगाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

विभिन्न भाव और भाषा में प्राप्त लगभग सभी पदो की टेक है "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर"। 'दासी' और 'जन' प्रयोग-युक्त पदों में यह परम्परा खण्डित हो गई है परन्तु इनकी प्रामाणिकता ही सर्वथा सदिग्ध है। गुजराती भाषा मे प्राप्त अधिकाश पदो में यह टेक "मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण" मे परिवर्तित हो गई है। इस परिवर्तन के लिये गेय-परम्परा ही उत्तरदायी प्रतीत होती है। कुछ पदो में "मीराँ के प्रभु गहिर गम्भीरा", "यूँ कहै मीराँ बाई", "मीराँ व्याकुल विरहणी" आदि भी टेक रूप मे व्यवहृत हुए हैं। अन्य कुछ पदो में मीराँ ने अपने आराध्य को "जोगी," "गुसाईं" आदि सम्बोधनो से भी पुन-पुन सम्बोधित किया है। "जिन भेखाँ म्हाँरो साहिब रीझै, सोई भेख धारणाँ।" के

के गेय-रूपान्तर ही प्रतीत होते है, तो अन्य कुछ पदो में शब्दावली भी हूबहू एक ही है। उपर्युक्त परिस्थिति मे यह कहना सम्भव नही कि कौन पद मौलिक रूपेण किसका है। इतने पर भी, 'चन्द्रसखी' के पदो में प्राप्त "चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि" जैसी टेक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'चन्द्रसखी' की भक्ति वात्सल्य-भाव की ही थी। मीराँ अपनी माधुर्य-भाव की भक्ति के लिये ही प्रसिद्ध हुई। सम्भवत इस आधार पर कुछ पदो को छाँट लेने का प्रयास सफल हो सके।

तथाकथित मीराँ के कुछ पदो से सतमत का प्रभाव विशेष रूपेण स्पष्ट हो जाता है। मतभेद, सघर्ष, वियोग, आनन्द, समर्पण आदि सभी विभिन्न भावाभिव्यक्ति द्योतक पदो से भी सतमत का प्रभाव लक्षित होता है। 'दासी' और 'जन' प्रयोग युक्त पदो मे भी कुछ थोडे से पद सतमत से प्रभावित मिल जाते हैं। कुछ पदो मे मीराँ अपने गुरु का नाम रैदास बतनी हैं। मुशी देवीप्रसाद के आधार पर मीराँ को भोजराज की विधवा मान लेने पर मीराँ और रैदास दोनो के जीवन-काल मे लगभग सौ वर्ष का अन्तर पड जाता है। अत रैदास का मीराँ का गुरु होना सर्वथा ही असम्भव हो जाता है परन्तु मुशी देवीप्रसाद का कथन भी सर्वथा प्रामाणिक नही सिद्ध होता। असम्भव नही कि मीराँ राव दूदा जी की पुत्री और राणा कुम्भ की ही राणी हो। जनश्रुतियाँ और पदाभिव्यक्तियाँ इसका समर्थन करती हैं तथा इतिहास सुनिश्चित न होते हुए भी विरोधात्मक नहीं। सर्व-मान्य है कि मीराँ का विरोध कृष्ण-पूजा के हेतु नही अपितु कुलमर्यादा के विरुद्ध पडने वाले साधु-समागम के कारण हुआ। अस्तु अद्यावधि इन रचनाओ को निश्चित रूपेण प्रामाणिक या प्रक्षिप्त कहना युक्तियुक्त न होगा। फिर भी, प्रामाणिक पदो के छाँट लेने के लिये ही भाव-भाषा के आधार पर इनका विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। राजस्थानी, व्रज मिश्रित राजस्थानी, और व्रज तीनो ही भाषाओ में सतमत से प्रभावित पद प्राप्त होते हैं। सतमत से प्रभावित शुद्ध व्रजभाषा म प्राप्त इन कुछ पदों की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध ही प्रतीत होती है। ऐसे अधिकाश पदो में अर्थ-सगति और पूर्वापर सबध का अभाव है, फलत: उपर्युक्त सदेह को एक और समर्थन मिलता है।

वैष्णव और सतमत से प्रभावित इस राणापरिवार में एकलिंग और भवानी की पूजा का महत्व सदा ही अक्षुण्ण रहा। एकलिंग के पुजारी

नाथ-पथानुयायी जोगी ही हुआ करते थे। राज-परिवार पर नाथ-पथ के इस गहरे प्रभाव के रहते हुए भी जनता इससे विमुख हो चली थी। जनता मे नाथ-पथ और उसके योगियो के प्रति आदर-सम्मान नही रह गया था।

बहुत सम्भव है कि राजपरिवार से सम्बन्धित होने के कारण मीराँ भी कुछ विशिष्ट योगियो के सम्पर्क मे आयी हो और इनसे प्रभावित भी हुई हो। अत नाथ-परम्परा से प्रभावित पदो की रचना अयुक्त नही कही जा सकती।

ऐसे पदो मे सर्वाधिक पदो की अभिव्यक्ति वियोगात्मक है। इतना ही नही, इन्ही पदो में प्राप्त अभिव्यक्तियो के आधार पर किसी व्यक्तिगत दाम्पत्य सम्बन्ध को व्यक्त करनेवाला अन्तस्रोत विशेष रूपेण प्रस्फुटित हो जाता है। किसी जाते हुए 'जोगी' को रोक रखने का निष्फल प्रयास, 'जोगी' के वियोग की वेदना और उसके विश्वासघात के प्रति गहरे उपालम्भ के साथ ही साथ एक गहरे समर्पण की अभिव्यक्ति ही इन पदो की विशेषता है। इन पदाभिव्यक्तियो के आधार पर यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ अपने नाथ परम्परानुसार सुसज्जित 'जोगी' आराध्य के अनुकूल स्वय भी "भगवाँ भेष" धारण कर "जोगण" बनने को "आकुल व्याकुल" हो उठी है।

इनमे अधिकाश पद राजस्थानी में ही प्राप्त है, जैसा कि स्थिति विशेष में स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। कुछ पद ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे और कुछ पद ब्रज व गुजराती भाषा मे भी प्राप्त है। नाथ-प्रभाव-द्योतक ये थोडे से पद, विशेषत इनमे प्राप्त वियोगाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

विभिन्न भाव और भाषा में प्राप्त लगभग सभी पदो की टेक है "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर"। 'दासी' और 'जन' प्रयोग-युक्त पदों मे यह परम्परा खण्डित हो गई है परन्तु इनकी प्रामाणिकता ही सर्वथा सदिग्ध है। गुजराती भाषा में प्राप्त अधिकाश पदो मे यह टेक "मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण" में परिवर्तित हो गई है। इस परिवर्तन के लिये गेय-परम्परा ही उत्तरदायी प्रतीत होती है। कुछ पदो में "मीराँ के प्रभु गहिर गम्भीरा", "यूँ कहै मीराँ बाई", "मीराँ व्याकुल विरहणी" आदि भी टेक रूप में व्यवहृत हुए हैं। अन्य कुछ पदो में मीराँ ने अपने आराध्य को "जोगी," "गुसाईं" आदि सम्बोधनो से भी पुन-पुन सम्बोधित किया है। "जिन भेखाँ म्हाँरो साहिब रीझै, सोई भेस धारणाँ।" के

अनकूल मीराँ स्वयं भी कभी "मोतियन माँग भरां" के लिये अत्युत्सुक हो उठती है तो कभी "कर जटाधारी वेश" "जोगण" बनने को "आकुल व्याकुल" हो जाती है। इतने पर भी कभी-कभी इस योग-साधना पर झुंझला जाती है "भाग लिखियो सो ही पायो।"

अपनी माधुर्य भाव की भक्ति के कारण ही मीरां ख्याति को प्राप्त हुई। नाभादास जी लिखते है, "सदरिस गोपिन प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो।" पति-भाव से ही मीरां ने अपने आराध्य की पूजा की। अत. पदो म प्राप्त वियोग और शृङ्गार, खीज और समर्पण की अभिव्यक्ति तो सहज ही प्रतीत होती है परन्तु कुछ पदो में प्राप्त बाल-वर्णन उतना ही असगत भी प्रतीत होता है। सूर आदि अन्य ब्रजभापा के कवियो मे भी सयोग और विप्रलम्भ शृङ्गार के अति उत्कट वर्णन के साथ ही साथ वात्सल्य और बाल वर्णन की अभिव्यक्ति भी मिलती है। ब्रजभाषा के इन भक्त-कवियो ने आराध्य कृष्ण की विभिन्न लीलाओ का वर्णन किया, वे कवि थे परन्तु मीरा तो स्वयं ही गोपिका बनी हुई थी। एक कवि की तरह उन्होंने अपने इष्टदेव की लीलाओं का वर्णन नही किया अपितु आराध्य म तन्मय हो जाने से अनजाने ही कुछ गा उठी, भावातिरेक मे वस्तुतः हृदय के छंद-अलंकार-विहीन वे निश्छल चित्र ही हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि बन गए। अस्तु मीरां के पदो मे वात्सल्य-युक्त वर्णन कुछ असगत सा लगता है। मीरा सी नारी द्वारा अपने ही प्रियतम के बालरूप का वर्णन तर्कसंगत नही प्रतीत होता।

व्यक्ति मौलिक रूपेण मीराँ की ही है, मात्र भाषा ही गेय-परम्परा के कारण परिवर्तित हो गई है, प्रियकर हो सकता है और हमारी हृदयगत भावनाओं के निकटतर भी पड सकता है परन्तु खोज कार्य में सहायक कदापि नहीं हो सकता है। यह भी माना जा सकता है कि उनमें काव्य-सत्य है। तथापि इस काव्य-सत्य के साथ ही साथ उनमें से वस्तुत सत्य को भी खोज निकालने का प्रयास आकाश-कुसुम को पाने का ही प्रयास मात्र होगा। प्राप्त रूप में ऐसे पदो की प्रामाणिकता सदिग्ध ही सिद्ध होती है।

प्रस्तुत सग्रह में भाव और भाषा के आधार पर ही पदो का वर्गीकरण किया गया है। मीराँ का जीवन कुछ विशिष्ट क्षेत्रो में व्यतीत हुआ। अत उन विभिन्न क्षेत्रों की भाषा का प्रभाव उनकी रचना में पाया जाना स्वाभाविक ही है। साधु-समागम के प्रभाव के कारण भी अन्य भाषाओं के कुछ शब्द-विशेष का प्रयोग भी सम्भव हो सकता है। परन्तु विभिन्न प्रान्तीय बोलियो में इक्के-दुक्के पदो की रचना असम्भव ही प्रतीत होती है। अत ऐसे पदो को प्रक्षिप्त कहना ही युक्तियुक्त होगा।

राजस्थान में ही मीराँ ने जन्म लिया और राजस्थान मे ही उनका अधिकाश जीवन व्यतीत हुआ अत अधिकाश पदो का शुद्ध राजस्थानी भाषा मे पाया जाना ही युक्ति-सगत है। फिर भी पुरानी राजस्थानी और आधुनिक राजस्थानी मे गहरा भेद है। अत राजस्थानी मे प्राप्त पदो की भाषा की शुद्धता पुरानी राजस्थानी के माप पर ही निर्धारित की जा सकती है। ऐसा एक प्रयास मैं कर भी रही हूँ और आशा रखती हूँ कि शीघ्र ही हिन्दी-साहित्य की यह छोटी सी सेवा भी कर सकूँगी।

इसके बाद वे पद आते हैं जो मिश्रित भाषाओ के अन्तर्गत रक्खे गए हैं। इनमें से कुछ की भाषा प्रधानत राजस्थानी होते हुए भी ब्रजभाषा से प्रभावित है, तो अन्य कुछ की भाषा प्रधानत ब्रजभाषा होते हुए राजस्थानी से प्रभावित है। साधु-समागम के कारण भी भाषा का यह सम्मिश्रण सम्भव हो सकता है। अद्यावधि मीराँ का ब्रज-क्षेत्र में गमन और निवास भी मान्य है।

तथाकथित मीराँ के पदों की एक बडी सख्या ब्रजभाषा में भी प्राप्त है। इनमें से कुछ की भाषा विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है। ऐसे कुछ पद साहित्यिक सौन्दर्य का सृजन करने में सूरदास के पदो से भी होड लेते हैं अद्यावधि प्राप्त सामग्री के आधार पर मीराँ की वृन्दावन-यात्रा और निवास बहुमान्य होते हुए भी सुनिश्चित इतिहास नहीं अपितु एक अत्यन्त विवाद-

ग्रस्त विषय है। इन पदों की साहित्यिकता भी इनकी प्रामाणिकता के विरुद्ध ही गवाही देती है। मीरां को शास्त्रीय अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ हो, ऐसा भी कोई निश्चित इंगित प्राप्त सामग्री में नहीं मिलता। प्राप्त पद कवि की रचना न होकर एक स्वतः सिद्ध भक्त के भावातिरेक के सत्यतम चित्र हैं। अतः शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में प्राप्त पदों की प्रामाणिकता विशेष सन्दिग्ध हो जाती है।

गुजराती में भी मीरां के नाम पर प्रचलित पद पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते हैं। अपने जीवन के अन्तिम काल में मीरां का द्वारिका-गमन और निवास इतिहास-सिद्ध है। अद्यावधि मान्य इतिहास, प्राप्त जनश्रुतियों और पदाभिव्यक्तियों से भी उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है।

अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि प्राप्त सम्पूर्ण सामग्री में यही एक ऐसा पहलू है जो सर्व-सम्मति से सुनिश्चित है। क्रमशः विकसित होते हुए जीवन के अन्तिम समय की भावाभिव्यक्ति में इतने निम्न स्तर के घरेलू जीवन व अन्य बहुत ही हल्की भावनाओं का चित्रण बहुत सहज नहीं प्रतीत होता। चित्तौड़ के सम्पूर्ण राज-वैभव व तद्जनित सुख-सुविधा को 'तजि बटक की नाई' अपने आराध्य की शरण में द्वारिका आ जाने पर मीरां जैसी भक्तिमती नारी की रचना में विराग और नैराश्य की भावनाओं का मिलना ही अधिक सहज है। अस्तु गुजराती में पद रचना असम्भव या असंगत नहीं प्रतीत होती तथापि अभिव्यक्ति के आधार पर प्राप्त पदों की प्रामाणिकता में संदेह ही उत्पन्न होता है।

कुछ गुजराती में प्राप्त पदों में "मीरां के प्रभु गिरिधर नागर" "मीरां के प्रभु गिरिधर ना गुण" में भी परिवर्तित हो गया है—बहुत सम्भव है कि यह परम्परा ही इसका कारण हो, अस्तु, ऐसे पदों की प्रामाणिकता और भी संदिग्ध है।

प्रस्तुत सग्रह में बहुत से पदो पर एक ऐसा † चिह्न लगा दिया गया है। भापा और भाव के आधार पर प्रक्षिप्त प्रतीत होनेवाले पदों पर ही यह चिह्न लगाया गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है बहुत सम्भव है कि शेष पदों में से भी अधिकाश प्रक्षिप्त ही हों परन्तु उनको प्रक्षिप्त या प्रामाणिक कहने का कोई सुनिश्चित सूत्र अद्यावधि उपलब्ध नही। बहुत सम्भव है कि प्राप्त सामग्री के गहरे अध्ययन के बाद शेष पदों पर भी निश्चय पूर्वक विचार किया जा सके। किसी ऐसे ही प्रामाणिक सग्रह के आधार पर ही मीराँ के जीवन-वृत्त को सुनिश्चित इतिहास का रूप दिया जा सकता है।

इस सग्रह में लिखित व मौखिक परम्परा से प्राप्त मीराँ के नाम पर प्रचलित सभी पदों को एकत्रित करने का प्रयास किया गया है, फिर भी बहुत सम्भव है कि और भी कुछ ऐसे पद प्राप्त हो सके जो इस सग्रह में नही आ सके हैं। विभिन्न प्राप्त सग्रह, जिनकी सूची 'मीराँ, एक अध्ययन' में दे दी गयी है, इन पदो के सग्रह का मूल आधार रही है। अत उन सभी विद्वानो की कृतज्ञ हूँ। श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी (जयपुर) द्वारा २०० पद ऐसे प्राप्त हुए जिनके बिना यह सग्रह निश्चित ही अधूरा रह जाता, अत मैं उनकी विशेप कृतज्ञ हूँ। इन पदो में अधिकाश राजस्थानी भापा मे हैं। इनमे अधिकाश की अभिव्यक्ति मतभेद, सघर्प और वियोग-द्योतक है। इन पदाभिव्यक्तियो से विभिन्न धार्मिक मतों का विशेषतः सतमत का ही प्रभाव स्पप्ट हो जाता है। कुछ पदो के विपय में अपने विचार (जो पद विशेप के नीचे दिये गये हैं) देकर इन्होंने मेरे कार्य में अधिक सुगमता ला दी। उनके इस कप्ट के लिये मैं विशेप आभारी हूँ।

भाई श्री नर्मदेश्वर जी चतुर्वेदी और उनके अग्रज हिन्दी के सुविख्यात विद्वान् श्री परशुराम जी चतुर्वेदी द्वारा सामग्री एकत्रित करने में पर्याप्त सहायता मिली। अपनी राजस्थान की यात्रा काल मे किसी दादू पन्थी सत के हस्त-लिखित सग्रह से प्राप्त ६२ पद आपने मुझको दिये जिनमें लगभग ५० मेरे सग्रह में थे और शेप पद नवीन थे। इनमें से अधिकाश नाथ-परम्परा प्रभाव द्योतक है। 'दासी' और 'जन' प्रयोग युक्त पद भी इस सग्रह का एक बडा भाग है। शेप पदो पर सतमत का ही विशेप प्रभाव है। इनमें अधिकाश की अभिव्यक्ति वियोगात्मक और भापा राजस्थानी व ब्रज मिश्रित राजस्थानी है।

उपर्युक्त पदों के सिवाय कुछ पद लोक-गीत परम्परा से भी प्राप्त हुए। विशप प्रयास करने के बाद कुल १४ पदो को एकत्रित करने मे सफल हो सकी। ये पद भी 'मीराँ', एक अध्ययन' मे परिशिष्ट मे दे दिये गये है। लोक-गीत परम्परा से प्राप्त प्राय. पद सग्रह मे वर्तमान किसी-न-किसी पद का गेय रूपान्तर मात्र ही सिद्ध हुए।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष हिन्दी के सुविख्यात विद्वान् श्री हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने पदो के वर्गीकरण के बारे में जो महत्वपूर्ण सुझाव दिये उनके बिना इस सग्रह को इस रूप में प्रस्तुत करना सम्भव न होता। "मीरा बाई" के विद्वान् लेखक डा० श्रीकृष्ण लाल ने अपनी कार्य-व्यस्त दिनचर्या के बाद भी सग्रह में महत्वपूर्ण सुझाव देने और भूमिका लिखने का कष्ट स्वीकार किया। गुरुजनो के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना भी धृष्टता ही होगी, अत मैं इनको नमस्कार ही करती हूँ।

अनुज तुल्य श्री अवधेश तिवारी के सहयोग और कार्य-निष्ठा के बिना प्रस्तुत सग्रह असम्भव ही था। इन पदो की पुन पुन प्रतिलिपि करना सुगम या रुचिकर कार्य नही। उनकी अटूट लगन और कठिन परिश्रम के बिना यह सग्रह कदाचित तय्यार नही हो सकता था। अपने छोटे देवर श्री जानकीप्रसाद झुनझुनवाला, श्री गोपालचन्द सराफ और पुत्र तुल्य श्री बालकृष्ण मालवीय के विशेष सहयोग की महत्ता भी सदा अक्षुण्ण रहेगी। भाई श्री नरेन्द्र श्रीवास्तव और भाई श्री सुधाकर पाण्डेय ने प्रूफ देखने का भार उठा कर मेरे कार्य को विशेष सुगम बना दिया। मानव-जीवन में स्निग्ध भावनाओ का एक अपना विशिष्ट स्थान है। अत उपर्युक्त सभी स्वजनो के स्नेहमय सहयोग के लिये कृतज्ञता प्रकाशन या धन्यवाद दोनो ही असम्भव है।

प्रस्तुत सग्रह में जो *अपूर्णता और गलतियाँ* रह गई हों, उन पर प्रकाश डाल कर गुरुजन मेरा प्रोत्साहन और पथ-प्रदर्शन करेंगे, ऐसी ही आशा करती हूँ।

विशेप प्रयास के बावजूद भी प्रूफ आदि की जो गलतियाँ छूट गयी हों, उनके लिये मैं क्षमाप्रार्थिनी हूँ।

विपय-सूची

विपय — पृ० सं०

जीवन खण्ड

मतभेद

वियोगाभिव्यक्ति

संघर्षाभिव्यक्ति

मिलन और बधाई

समर्पण द्योतक पद

"दासी" और "जन" प्रयोग युक्त पद

उपासना खण्ड

वैष्णव-प्रभाव द्योतक पद—निर्वेदाभिव्यक्ति

पौराणिक गाथाएँ

राधावर्णन

बाँसुरी वर्णन

नाथ-प्रभाव द्योतक पद

संतमत-प्रभाव द्योतक पद

मतभेद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

व्रजभाषा में प्राप्त पद

वियोगाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

पंजाबी में प्राप्त पद

खड़ी बोली में प्राप्त पद

संघर्षाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

पजाबी मे प्राप्त पद

खडी बोली में प्राप्त पद

संघर्षाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

खड़ी बोली मे प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

मिलन और बधाई

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

"दासी" और "जन" प्रयोग युक्त पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद ।

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद ।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

उपासना खण्ड

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

गढ़वालों में प्राप्त पद

विविध बोलियों में प्राप्त पद

पौराणिक गाथायें

कैलाश प्रकाश दीपक पद

राजस्थानी प्राप्त पद

ब्रजभाषाओं में प्राप्त पद

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

खड़ी बोली में प्राप्त पद

पंजाबी मे प्राप्त पद

भोजपुरी में प्राप्त पद

विहारी में प्राप्त पद

व्रजभाषाओं में प्राप्त पद

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

खड़ी बोली में प्राप्त पद

पंजाबी मे प्राप्त पद

भोजपुरी में प्राप्त पद

बिहारी में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

राधा वर्णन

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

व्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

बाँसुरी वर्णन

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

नाथ-प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

संत-मत प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

बाँसुरी वर्णन

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

नाम-प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

व्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

वाई ऊदाँ हो लोकां ने लोकां रो भाव,
म्हे म्हांको राम लड़ावस्या ।
भाभी मीरां हो लाजे सेस[1] मेवाड़,
लाजै कुम्भा जी रो वैसणो[2] ।
भाभी मीराँ हो लाजै नो कोटि मारवाड़,
लाजै दूदा जी रो मेड़तो ।

भाभी मीराँ हो लाजै माई मोसाल, लाजै हो पीहर थारो सासरो ।
भाभी मीराँ हो थापरि राणो कोपिया, बाटकड़े विष घोलने ।
बाई ऊदाँ हो साथरी[3] सेज विछाई, नैणा मे विष सचर्यो[4] ।
बाई ऊदाँ मदर भयो है उजास, सही साध रो तारण आवई ।
बाई ऊदाँ, दूधा पखालूँ हरि रा पाव, रतन जड़ित गोविन्द जी ने वैसणो ।
बाई ऊदाँ हूँ मोत्या थाल भराई, करस्या गोविन्द जी री आरती ।
राणा जी रो वाघेला थेल्यो ने मीराँ जी, खबरि मुइ के जीवै मीराँ मेडती ।

राणा सिसोद्या बाजे छै ताल मृदंग,
बाजै छै गोविन्द जी रा घूघरा ।
राणा सिसोदिया झालर रो झणकार,
नारद सग मीराँ निरत करे ।
भाभी मीराँ हो खोलो ने दुवार,
ऊभो राणा जी विनती करे ।
बाई ऊदाँ थे राणा ने रावले[5] मेल्हि,
कुल रो ही नातो म्हारे कोई नही ।
भाभी मीराँ हो खोली ने धरम दुवार,
पयीडो दिखावौ ताहरा देवरो[6] ।
बाई ऊदाँ हो पयड़ो खाड़ा री धार,
पयड़ो निवाहनहारो कोई नही ।

---

१ सौ अर्थात् सौ सौ वार मेवाड लजाता है। २ वास स्थान ३ गुदडी, ४ व्याप गया। ५ राणा के खवासो के रहने के लिए बनाया गया महल विशेष, ६ मदिर।

११

भाभी मीराँ ! कुल ने लगायी गाल, ईडर गढ़ ते आया ओलमा[1] ।
बाई ऊदाँ ! थाँरे म्हाँरे नातो नाहि, बासो बस्या का आया जी ओलमा ।
भाभी मीराँ ! साधाँ को संग निवारि, सारो सहर थाँरी निन्दा करै ।
बाई ऊदाँ करे तो पड्या झख मारो, मन लाग्यो रमता राम सूँ ।
भाभी मीराँ पहरो नी मोत्या को हार, गहणो पहर्यो रतन जड़ाव को ।
बाई ऊदाँ छोड्यो मोत्या को हार, गहणो तो पहर्यो सील सन्तोष को ।
भाभी मीराँ ! औराँ के आवे छै आच्छी[2] रूढ़ी जान,
थाँरे आवे हरिजन पावनाँ ।
बाई ऊदाँ चौबसियाँ[3] झाँक, साधाँ को मंडल लागे सुहावणो ।
भाभी मीराँ ! लाजे गढ चितौड़, राणो जी लाजै गढ रा राजवी ।
बाई ऊदाँ ! तार्यो तार्यो चित्तौड़, राणा ज़ी तार्या गढ रा राजवी ।
भाभी मीराँ ! लाजै लाजै थारा मायड़ बाप, पीहर लाजै जी मेड़तो ।
बाई उदाँ ! तार्या म्हे तो मायड़ बाप, पीहर तार्यो जी मेड़तो ।
भाभी मीराँ ! राणा जी कियो छै था पर कोप, रतन कचोले विष घोलियो ।
बाई ऊदाँ ! घोल्यो तो घोलवा द्यो कर, चरणामृत वो ही म्हे पीवस्या ।
भाभी मीराँ ! देखतड़ा ही मर जाय, विष तो कहिए बासक नाग को ।
बाई ऊदाँ ! नही म्हारे माय र बाप, अमर डाली धरती झेलिया ।
भाभी मीराँ ! राणा उभा छै थारे द्वार, पोथी मागे छै थारे ज्ञान की ।
बाई ऊदाँ ! म्हारी खाड़ा री धार, ज्ञान निभावन राणा छै नही ।
भाभी मीराँ ! राणा जी रो वचन न लोप, उन रूठ्या भीडी कोऊ नही ।
बाई ऊदाँ! रमापति आवे म्हारी भीड़, अरज करूं छूं तासू बीनती ॥११॥†

१२

भाभी मीराँ हो साधा को सग निवारि,
थारी लोक निन्दा करै ।

---

१ चिरायन, २ भली सुन्दर, ३ बराम्दा ।

वाई ऊदाँ हो लोकां ने लोकां रो भाव,
म्हे म्हाको राम लड़ावस्यां ।
भाभी मीरां हो लाजे सेस[1] मेवाड़,
लाजै कुम्भा जी रो वैसणो[2] ।
भाभी मीराँ हो लाजै नो कोटि मारवाड़,
लाजै दूदा जी रो मेड़तो ।

भाभी मीराँ हो लाजै माई मोसाल, लाजै हो पीहर थारो सासरो।
भाभी मीराँ हो थापरि राणो कोपिया, वाटकड़े विष घोलने।
वाई ऊदाँ हो साथरी[3] सेज बिछाई, नैणा मे विष सचर्यो[4]।
वाई ऊदाँ मदर भयो है उजास, सही साध रो तारण आवई।
वाई ऊदाँ, दूधा पखालूँ हरि रा पाव, रतन जड़ित गोविन्द जी ने वैसणो।
वाई ऊदाँ हूँ मोत्या थाल भराई, करस्या गोविन्द जी री आरती।
राणा जी रो वाघेला थेल्यो ने मीराँ जी, खवरि मुइ के जीवै मीराँ मेडती।

राणा सिसोद्या बाजे छै ताल मृदंग,
वाजै छै गोविन्द जी रा घूघरा ।
राणा सिसोदिया झालर रो झणकार,
नारद सग मीराँ निरत करे ।
भाभी मीराँ हो खोलो ने दुवार,
ऊभो राणा जी विनती करे ।
वाई ऊदाँ थे राणा ने रावले[5] मेल्हि,
कुल रो ही नातो म्हारे कोई नही ।
भाभी मीराँ हो खोली ने धरम दुवार,
पथीडो दिखावौ ताहरा देवरो[6] ।
वाई ऊदाँ हो पथडो खाडा री धार,
पथड़ो निवाहनहारो कोई नही ।

---

१ सौ अर्थात् सौ सौ बार मेवाड लजाता है। २ वास स्थान ३ गुदडी, ४ व्याप गया। ५ राणा के खवासो के रहनेके लिए बनाया गया महल विशेष, ६ मदिर।

साचा साहिब जी यो दुख सह्‌यो न जाई,
हीवड़ो तो सुमर भर्‌यो ।
सांचा साहिब जी बिड़द री लाज,
कर जोड़े मीराँ बिनती करै ॥१२॥ †

उपर्युक्त पद मे कुम्भा जी तथा दूदा जी का नाम आया है, यह विचारणीय है। ऐसे पदो से यही स्पष्ट हो जाता है कि मीराँ का विवाह "कुँवर" से नही अपितु "राणा" से ही हुआ था, परन्तु यही एक पद ऐसा है जिसके आधार पर यह राणा कौन थे, इस पर प्रकाश पड़ता है। पद की पक्ति "राणा जी रा वाघेला ... मेड़ती" विशेष महत्वपूर्ण है। इस अभिव्यक्ति के आधार पर कहा जा सकता है कि मीराँ तक जहर का प्याला पहुँचाने वाले राणा के वाघेला सरदार ही थे। पद विशेष विचारणीय है।

१३

ऊदाँ माया थे क्यूँ रे तजी भाभी मीराँ, क्यूँ रे लियो वैराग,
काई थारे मन वसी ।
मीराँ. याही म्हारे मन वसी ऊदाँ, यूँ लियो वैराग,
माया यूं रे तजी ।
ऊदाँ: ऊचा नीचा वेसणा ये भाभी उत्तम तिहारी जात,
राणा सो वर पाइयो हे भाभी, नो कूँटाँ[1] में थारो राज।
मीराँ ऐसा तो मोती ओस का ये बाई, जैसी यो संसार,
लगे झकोलो पोन को ये बाई, छिन मे सब ढल जाय।
ऊदाँ खीर खाड को भोजन जीमो भाभी, ओढ़ो दिखनी चीर[2]।
राणा सो वर पाइयो थे भाभी, सव महलाय थारो सीर।

---

१ कोना, दिशा, २ दिखनी चीर दक्षिण मे आया हुआ वस्त्र। राजस्थान में इसको अति उत्तम और सुन्दर माना जाता है। अपनी बहुमूल्यता के कारण यह राजघराने के ही उपयुक्त पड़ता है। अत यह शब्द सुन्दर और कीमती वस्त्र के लिए रूढ़ि रूप हो गया।

मीराँ खीर खांड को भोजन त्याग्यो ये बाई, त्याग्यो दिखणी चीर
राणा सो वर त्याग्यो ये बाई, सब संतन में म्हारो सीर।
ऊदाँ : वास्या-कूस्या[1] टुकड़ा ये भाभी, और मिलेगी खाटी छाय
रो रो भूखा मरो ये भाभी, नही मिलेगो हरि आय।
मीराँ : वास्या तो कूस्या टूकड़ा ये बाई, पीस्यां खाटी छाय[2]।
म्हे रोवा भूखा मरा ये बाई, जब रे मिलेगो हरि आय ॥१३॥†
माया म्हे तो यूँ र तजो।

१४

सुणजो जी थे भाभी मीराँ, थापे राणा जी कोप कियो छै जी।
भाभी थारे मारणा कारणे, प्यालो हाथ लियो छै जी।
उठ उठ भाजे रोस रो, या तो हाथ खग लियो छै जी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इमरत पान कियो छै जी ॥१४॥†

यह पद भी कोई स्वतन्त्र पद न होकर पद न० ११ की कुछ पंक्तियो का ही गेय रूपान्तर प्रतीत होता है।

१५

अकोलो लाग्यो जी रग गिरधर को आन।
गिरधर गिरधर काई करो, कोई गिरधर श्याम सुजाण।
मीराँ तो चन्दा भई, कोई गिरधर उग्यो भान।
ऊदाँ थे तो बावली, कोई निहचै करल्यो ध्यान।
आपा दोन्यू मिल भजा, कोई ज्यो गोप्याँ बिच कान[3]।
मीराँ ने गिरधर मिलिया जी, ममता री राख्यो मान ॥१५॥†

पदाभिव्यक्ति असगत है। कीर्तन मडली मे प्राय ऐसे गीत मिलते हैं। प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ की किसी ननद का नाम ऊदाँ बाई नही मिलता। भोजराज की चार बहने थी। १. कुवरबाई

---

१ रूखा सखा, २ छाँछ. मट्ठा, ३ कान्ह, कृष्ण।

२. पद्मावाई, ३. गगावाई और ४. राज बाई। प्रसिद्ध ऐतिहासिक गहलोत जी के अनुसार मीराँ की एक ननद का डूगरगढ़ ब्याहा जाना सिद्ध होता है। अद्यावधि प्राप्त इतिहास के आधार पर उपर्युक्त पदो को प्रामाणिक मानना सम्भव नही।

१६

अब मीराँ मान लीजो म्हारी , हो जी थाने सखिया वरजे सारी।
राणा वरजे, राणी वरजे, वरजे सब परिवारी।
कुवर पाटवी[1] सो भी वरजे, और सहेल्या सारी।
सीस फूल सिर ऊपर सोहै, विंदली शोभा भारी।
सम्धन के ढिग बैठ बैठ के, लाज गमाई सारी।
नित प्रति उठि नीच घर जाओ, कुल को लगाओ गारी।
वड़ा घरां की छोरू कहावो, नाचो दे दे तारी।
वर पायो हिन्दुवाणे सूरज, इब दिल मे काई धारी।
तार्यो पीहर, सासरो तार्यो, माय मोसाली तारी।
मीराँ ने सद्गुरु मिलिया जी, चरण कमल वलिहारी ॥१४॥ †

पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह स्पष्ट नही होता कि यह सवाद किस के साथ हो रहा है। प्रथम दो पक्तियो की अभिव्यक्ति अवश्य ही कुछ नई सी प्रतीत होती है। परन्तु अन्य पक्तियो को देखने से ऐसा ही प्रतीत होता है कि ऊदाँ-मीराँ सवाद की भावनाओ की ही पुनरुक्ति हुई है। इतने अधिकारपूर्ण ढग से विरोध किसी प्रभावशाली निकट सवधी द्वारा ही सभव है। बहुत सम्भव है कि यह सवाद भी ऊदाँ-मीराँ के वीच हुआ हो।

पद की प्रथम दो पक्तियाँ विशेष महत्वपर्ण है। "राणा" और "राणी" तो [illegible] सो भी वरजे"। [illegible] है? प्राप्त इतिहास [illegible] रम्भ

---

१ युवराज।

हुआ, जब कि भोजराज के सौतेले छोटे भाई राज्याधिकारी बने। उपर्युक्त पद के आधार पर मीराँ का संघर्ष भोजराज की जीवित अवस्था में ही प्रारम्भ हो जाता है और वह भी कृष्ण की आराधना हेतु नहीं अपितु इसलिये कि "नितप्रति उठि नीच घर जाओ" और "नाचो दे दे तारी"।

अन्तिम पंक्ति में वर्णित यह "सदगुरू" भी अब तक एक रहस्य ही बने हुए हैं। सम्भव है कि "सदगुरु" कौन थे, यह जान लेने पर मीराँ के जीवन वृतान्त पर गहरा प्रकाश पड सकेगा।

१७

नहि भावै थारो देसड़लो रंग रूडो[1] ।
थारे देसा में राणा साध नहीं छै, लोग बसे सब कूड़ो।
गहना गांठी राणा हम सब त्याग्या, त्याग्या कर रो चूड़ो।
काजल टीकी हम सब त्याग्या, त्याग्या बांधन जूड़ो।
मेवा मिसरी मैं सब त्याग्या, त्याग्या छै सक्कर बूरो।
तन की आस कबहु नहि कीनी, ज्यूँ रण माही सूरो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो मैं पूरो ॥१७॥

पाठान्तर १,

नहि भावै थारो देसड़लो जी रूडो रूडो।
हरि की भगति करै नही कोई, लोग बसे सब कूडो।
पाटी मांग उतारि धरूंगी, न पहिरू कर चूडो।
मीराँ हठीली कहै मनन सो, वर पायो छै पूरो।

पाठान्तर २,

राणा जी थारो देसडलो रंग रूडो।
थारे मुल्क में भक्ति नहि छै, लोग वसे सब कूडो।

१ रंग से भरा सजा हुआ सुन्दर।

पाट पटम्बर सब ही मै त्यागा, तज दियो कर रो चूडो।
मेवा मिसरी मैं सब ही त्यागा, त्यागा छै सक्कर बूरो।
तन की मे आस कबहू नहि कीनी, ज्यूं रण माहि सूरो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छै पूरो।

पाठान्तर ३,

राणा जी थारो देसड़लो छै रग रूडो।
राम नाम की भक्ति न भावे, लोग बसैं सब कूड़ो।
मेवा मिठाई मीरा सब ही त्यागे, त्याग्यो छैं मान और बूरो।
गहणो तो गाठो मीरा सब ही त्याग्यो, त्याग्यो छैं वैया रो चूडो।
साल दुसाला मीरा सब मोई त्याग्या, सिर पर बाध्यो छै जूड़ो ।
मीराँ के प्रभु हरि *अविनासी*, वर पायो छे मीरा रूडो।

पाठान्तर ४,

देसडलो रूडो रूड़ो, राणा जी थारो देसड़लो।
भगत न भावैं म्हारा राम की, लोग बसैं सब छै कूड़ो।
मेवा मिसरी सब ही त्याग्या, त्याग दियो छैं बूरो।
तन की आस कबहू नहि कीनी, ज्यूं रण माहि सूरो।
भाई मात कुटुम्बी त्याग्यो, त्याग दियो छं चूड़ो।
घूंघट को पटि दूर कियो, सरि बाध्यौ छे जूड़ो।
यो ससार भव दु ख को सागर, मैं हाकीयौ दूरो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, वर पायो छैं पूरो।

यह पाठ भटनागर जी द्वारा किसी दादू पथी सत के सग्रह से प्राप्त हुआ।

१८

राणो जी मेवाडो म्हारे दाय न आवे।
गिरधर मो मन भाया भोलि माय।

राणा जी म्हारूं रूस रह्यो है,
कडा वचन सुनाय भोली माय।
गुरू कृपा सूं सत पधार्‌या,
सता श्याम मिलाय भोली माय।
बाधि घूघरा नृत्य करूं म्हे,
हरि गुण गाय रिझावा भोली माय।
मीराँ के प्रभु आस पराई,
गिरिधर सेजाँ आया भोली माय ॥१८॥†

पद की प्रथम पक्ति की अभिव्यक्ति पद स० १७ की अभिव्यक्ति से मिलती है। परन्तु शेष पदाभिव्यक्ति सर्वथा विभिन्न पडती है। पदाभिव्यक्ति मे सगति का भी अभाव है। "भोली माय" जैसा सम्बोधन पद की हर पक्ति मे प्रयुक्त हुआ है जो विशेष विचारणीय है।

१९

अब नहि मानूँ राणा थारी, मै वर पायो गिरधारी।
मनि कपूर की एक गति है, कोऊ कहो हजारी।
ककर कचन एक गति है, गुंज मिरच्च इकसारी।
अनड घणी को सरणो लीनो, हाथ सुमिरनी धारी।
जोग लियो जब क्या दलगीरी, गुरु पाया निज भारा।
साधू संगत मह दिल राजी, भइ कुटुम्ब सूं न्यारी।
क्रोड बार समझाओ मोकूँ, चालूंगी बुद्धि हमारी।
रतन जडित की टोपो सिर पै, हार कठ को भारा।
चरन घूघरू घमस पटत है, म्हे करा स्याम सूं यारी।
लाज सरम सब ही मे हारी, यौ तन चरण अधारी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, झक मारो ससारी॥१९॥†

पाठान्तर १,

अब नहि मानाला म्हे थारी,म्हाने वर मिलि गिरधारी।
मन कपूर की एक ही गति है, कहा कहू वार हजारी।
ककर कचन एक गिणत हैं, गुज मिरच एक सारी।
अनन्त धणी के सरणे आई, हाथ सुमिरिणी धारी।
जोग लियो जब बाद तजी री, गुर पाया निज भारी।
साध सगत मेरो मन राजी, भई कुटुव सू न्यारी।
त्रोड बार समझावो मोकू, चालूगी बुद्धि हमारी।
म्हे राणा के परत' न रहस्या, कई वार कह कह हारी।
सौ बातन की एक बात है, अब तो समझ गवारी।
रतन जडित की टोपी सिर पर, हार कठ को भारी।
चरण घूंघरा घमस पड़त है,"म्हे" करां स्याम सू न्यारी।
लाज सरम तो सभी गुमाई, यो तन चरणा धारी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी।†

उपर्युक्त पद निम्नांकित अन्तर के साथ भी पाया जाता है।
१ अतिभारी। २ जब बाद तजी री। ३. में भई स्याम की प्यारी।

पाठान्तर २,

अब तो नही म्हं थारी म्हाने, वर मिलिया गिरधारी।
मन कपूर की एक ही गति है, कहा कहू वार हजारी।
ककर कचन एक गिणत हं, गुज मिरच इकसारी।
अनन्त धणी के सरणे आई, हाथ सुमिरणी धारी।
जोग लियो जब सब ही त्याग्यो, गुरु पाया निज भारी।
साध सगत मेरो दिल राजी, भई कुटुव सू न्यारी।
कोटि वेर समझाओ मोनूं, चालूगी वुद्धि हमारी।
म्हं राणा के परत न जावा, केई वेर कह हारी।

---

१ कोट वार।

सुवरण राग एक ही गति हैं, अव तो समझ गवारी।
रतन जटित की टोपी सिर पर, हीरा कंठी धारी।
पाय घूघरा घमस पडत हैं, करी स्याम सू यारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल वलिहारी।†

उपर्युक्त पद मे अभिव्यक्त भावनाएँ विशेष महत्वपूर्ण है। पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट होता है कि पद की रचना गृह त्याग के बाद ही हुई है। "जोग लियो ' कह हारी" जैसी अभिव्यक्ति के आधार पर ऐसा सम्भव प्रतीत होता है कि इस पद की रचना शायद मीराँ को लौटा लाने के प्रयास के अवसर पर हुई है। पद की नवी पक्ति मे प्रयुक्त "गवारी" सम्वोधन किसके प्रति हुआ, यह भी कही से स्पष्ट नही होता। पद विशेष विचारणीय है।

२०

अरे राणा पहली क्यो न वरजी, लागी गिरधारिया से प्रीत।
मार चाहे छाँड राणा, नही रहू मैं वरजी।
सगुना साहिब सुमरता रे, मैं थारे कोठे[1] खटकी।
राणा जी भेज्या विष रा प्याला, कर चरणामृत गटकी।
दीनवन्धु सावरिया है रे, जाणत है घट घट की।
म्हारे हिरदा माहि वसी है, लटकन मोर मुकुट की।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मैं छू नागर नटकी॥२०॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सम्वन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

२१

राणा जी म्हाने या वदनामी लागे मीठी।
कोई निन्दो कोई विन्दो, मे चलूगी चाल अनूठी।
साकली गली म सतगुरु मिलिया, क्यूकर फिरू अपूठी।
सदगुरु जी सू वाता करता, दुरजन लोगा ने दीठी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अगीठी॥२१॥

---

१ कहाँ

पाठान्तर १,

याही वदनामी मीठी हो, राणा जी, याही वदनामी मीठी ।
रावली ड्योढया म्हाने सतगुरु मिलिया,किस विध फिरूंगी अपूठी।
सत सगति मे ग्यान सुणे छी, दुरजन लोगा मोहि दीठी ।
यो मन मेरो हरि मे वसियो, जैसे रग मजीठी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो ज्यूं अगीठी ।

पाठान्तपुर २,

राणा जी म्हाने याही वदनामी मीठी ।
साकडली सेरया जन मिलिया, क्यू कर फिरू अपूठी ।
राम जी सू मे तो वात करे छी, दुरजन लोगा ने दीठी ।
वुरा जी कहो नै कोई,भला जी कहो नै,नै आनो किस की वसीठी ।
जन मीराँ के हे निन्दक प्राणी, जल वलि होई अगीठी । †

पाठान्तर ३,

राणा जी मुझे यह वदनामी लगे मीठी ।
कोई निन्दो कोई विन्दो, मे चलूगी चाल अपूठी ।
साकली गली म सतगुरु मिलिया, क्यू कर फिरू अपूठी ।
सतगुरु जी सू वातज करता, दुरजन लोगा ने दीठी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अगीठी ।†

इस पाठ की प्रथम दो पक्तियो पर भाषा की दृष्टि से आधुनिक प्रभाव है ।

पाठान्तर ४,

राणा जी म्हाने या वदनामी लागे मीठी ।
थे तो राणा जी राजकवर छो, म्हे राठोड़ा री वेटी ।
भलाई कहो म्हाने वुराई कहो जी, नहीं माना रे किसी की ।

साकड़ी गली मे म्हारा सतगुरु मिलिया, कैसे फिरूंगी अपूठी।
खंभ फाड मीराँ कने गरज्या, दुरजन जलाये अंगीठी।†

पाठान्तर ५,

राणा जी म्हाने या वदनामी लागे मीठी।
थारो रमैयो मीरा म्हाने बतावो, नाहि तो भक्ति थारी झूठी।
म्हारो रमैयो थारे घट मे विराजे, थारे हिये की क्यू फूटी।
प्रेम सहित मै करूगी रसोई, म्हारे गिरधर के भोग लगाई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रग दियो रग मजीठी[1]।†

पद की तीसरी पक्ति की अभिव्यक्ति व भाषा शेष पद से सर्वथा भिन्न पडती है। अन्य पाठान्तरो मे भी ऐसी अभिव्यक्ति नही मिलती। अत इस पक्ति को तो निश्चित रूपेण प्रक्षिप्त कहा जा सकता ह।

२२

माई[1] म्हारे साधाँ रो इकत्यार[2] है।
साधु ही पीहर, साधु ही सासरो, साँवरिया भरतार ह।
जात पांत कुल कुटुम्ब कबीला, साधू ही परवार है।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रमस्याँ साधा री लार[3] है ॥२२॥

---

१ मजीठी। यह रग राजस्थान म विशेष रूप से बनाया जाता है। कई विभिन्न वनस्पतियों का रस मिला कर उबाल दिया जाता है। इस खौलते हुए रस मे ही कपडा भिगो देते हैं। कपडे का रग कुछ कालिमा लिए हुए लाल हो जाता है। साथ ही, बनस्पतियों के कारण, कपडे मे कुछ हल्की सी सुगन्ध भी हो जाती है। यह रग और सुगन्ध कपडे के चिथडे चिथडे हो जाने के बाद भी नही छूटता। अत 'रग दियो रग मजीठी' एक मुहावरा भी बन गया है। जिस का अर्थ है कि कभी न छूटने वाला रग। २ जोर, दबाव, ३ पीछे।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

राणा जी ! अब न रहूंगी तोरी हटकी ।
साध संग मोहिं प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की।
पीहर मेडता छोडा आपणा, सुरत निरत दोऊ चटकी।
सतगुरु मुकुर दिखाया घट का, नाचूंगी दे दे चुटकी।
हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूडी कर की पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घट की।
महल किला राणा मोहि न चाहिये, सारी रेशम पट की।
हुई दिवानी मीरां डोलै, केस लटा सब छिटकी ॥२३॥

पाठान्तर १,

अब न रहूंगी अटकी, मन लाग्यो गिरधर से।
माणक मोती परत न पहिरू, मैं तो कब की नटकी।
गहणे म्हारे माला कठी, और चनण की कुटकी।
राजपणा की रीत गुमाई, साधा रे सग भटकी।
जेठ भऊ की लाज न राखी, घूंघट परै जो पटकी।
म्हाने गुरु मिलिया अविनासी, दई ज्ञान की गुटकी।
नित प्रति उठि जाऊ गुरु दरसण, नाचूं दै दे चुटकी।
लागी चोट निज नाम धणी की, म्हारे हिवड़े खटकी।
परम गुरु के सरणे जाऊ, करु प्रणाम सिर लटकी।
साधा के सग करम लिखायो, हर सागर में लटकी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण से छुटकी। †

उपर्युक्त पाठ के प्राय सभी क्रिया पद खड़ी बोली में हैं।

पाठान्तर २,

अब ना रहूंगी स्याम अटकी, अजो म्हारो गिरधर से लाग्यो।
माणक मोती परत न पहिनूं, मैं तो नट गई कब की।
गहणो म्हारे माला कठी, और चन्दन की कुटकी।
राजापणा की रीति गुमाई, साधन के संग भटकी।
जेठ भऊ की लाज न राखी , घूंघट परै जो पटकी।
राज रीति मे करम लिखायो, हरि सागर मे लटकी।
चोट लगी निज नाम हरि की, सो म्हारे हिवडे खटकी।
प्रेम गुरा के चरण गहू, परणाम करू सिर लटकी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूं छुटकी।

उपर्युक्त दोनो पाठो मे "जेठ भऊ की लाज न राखी" अभिव्यक्ति विशेष महत्व पूर्ण है। प्रथम पाठ में "राणा" को सम्बोधित किया गया है। यद्यपि अन्य पाठो से यह नही मालूम पडता कि पद किसी विशेष व्यक्ति को सम्बोधित करके कहा गया है। क्या यह "राणा" मीराँ के जेठ है ? जैसा कि उपर्युक्त दोनो पाठान्तरो से प्रतीत होता है। तब मीराँ किस की स्त्री थी ? अद्यावधि मान्य इतिहासानुसार मीराँ के पति भोजराज ही पाटवी के कुमार थे।

पाठान्तर ३,

अब न रहूगी अटकी, म्हारो मन लाग्यो गिरधर से।
म्हाने गुरु मिलिया अविनासी , दई ज्ञान की गुटकी।
लगी चोट निज नाम धणी की, म्हारे हिवड़े खटकी।
माणक मोती मे न पहिनूं, मैं तो कब न नटकी।
गहना म्हारे दोवड़ो, और चनणा की कुटकी।
राजकुल की लाज गमाई, साधा के सग भटकी।
नित प्रति उठि जाऊ गुरू दरसन, नाचूं दै दै चुटकी।
परम गुरा के सरणे जाऊ, करू प्रणाम सिर लटकी।
जेठ बहू की काण न माना, पड़ो घूंघट पर पटकी।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

राणा जी ! अब न रहूंगी तोरी हटकी ।
साध संग मोहि प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की।
पीहर मेडता छोड़ा आपणा, सुरत निरत दोऊ चटकी।
सतगुरु मुकुर दिखाया घट का, नाचूंगी दे दे चुटकी।
हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूडी कर की पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घट की।
महल किला राणा मोहि न चाहिये, सारी रेशम पट की।
हुई दिवानी मीरां डोलै, केस लटा सब छिटकी ।।२३।।

पाठान्तर १,

अब न रहूंगी अटकी, मन लाग्यो गिरधर से।
माणक मोती परत न पहिरूं, मैं तो कब की नटकी।
गहणे म्हारे माला कंठी, और चनण की कुटकी।
राजपणा की रीत गुमाई, साधा रे संग भटकी।
जेठ भऊ की लाज न राखी, घूंघट परै जो पटकी।
म्हाने गुरू मिलिया अविनासी, दई ज्ञान की गुटकी।
नित प्रति उठि जाऊं गुरू दरसण, नाचूं दे दे चुटकी।
लागी चोट निज नाम धणी की, म्हारे हिवड़े खटकी।
परम गुरु के सरणे जाऊं, करू प्रणाम सिर लटकी।
साधा के संग करम लिखायो, हर सागर में लटकी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण से छुटकी। †

उपर्युक्त पाठ के प्रायः सभी क्रिया पद खड़ी बोली में है।

पाठान्तर २,

अब ना रहूंगी स्याम अटकी, अजी म्हारो गिरधर से लाग्यो।
माणक मोती परत न पहिनूँ, मैं तो नट गई कब की।
गहणो म्हारे माला कठी, और चन्दन की कुटकी।
राजपणा की रीति गुमाई, साधन के संग भटकी।
जेठ भऊ की लाज न राखी , घूँघट परै जो पटकी।
राज रीति मे करम लिखायो, हरि सागर मे लटकी।
चोट लगी निज नाम हरि की, सो म्हारे हिवडे खटकी।
प्रेम गुरा के चरण गहू, परणाम करू सिर लटकी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूँ छुटकी।

उपर्युक्त दोनो पाठो में "जेठ भऊ की लाज न राखी" अभिव्यक्ति विशेष महत्व पूर्ण है। प्रथम पाठ मे "राणा" को सम्बोधित किया गया है। यद्यपि अन्य पाठो से यह नही मालूम पडता कि पद किसी विशेष व्यक्ति को सम्बोधित करके कहा गया है। क्या यह "राणा" मीरॉं के जेठ है ? जैसा कि उपर्युक्त दोनो पाठान्तरो से प्रतीत होता है। तब मीराँ किस की स्त्री थी ? अद्यावधि मान्य इतिहासानुसार मीराँ के पति भोजराज ही पाटवी के कुमार थे।

पाठान्तर ३,

अब न रहूंगी अटकी, म्हारो मन लाग्यो गिरधर मे।
म्हाने गुरु मिलिया अविनासी , दई ज्ञान की गुटकी।
लगी चोट निज नाम धणी की, म्हारे हिवड़े खटकी।
माणक मोती मे न पहिनूं, मै तो कब न नटकी।
गहना म्हारे दोवडो, और चनणा की कुटकी।
राजकुल की लाज गमाई, माया के नग नटकी।
नित प्रति उठि जाऊ गुरू दरसन, नाचूं दे दे चुटकी।
परम गुरा के सरणे जाऊ, करू प्रनाम सिर लटकी।
जेठ बहू की काण न माना, पड़ो घूंघट न टटकी।

२

वरजी नाही रहूगी, म्हारो स्याम सुंदर भरतार।
इक बार वरजी, दोय बार वरजी, वरजी सो सो बार।
सासू वरजी ननदी वरजी, राणो जी दावदार।
मीरां के प्रभु अविनासी, पूरण ब्रह्म अपार। ॥२५॥

पद की तीसरी पंक्ति का उत्तरार्द्ध विचारणीय है। "राणो जी दावदारा" संकेत किस ओर है? राणा पद के दावेदार कुंवर पाटवी या दबदबेवार "रोबीले व्यक्तित्व वाले" राणा स्वयं, दोनो ही तरफ इसको घटाया जा सकता है। इतिहास और मान्यताएं भी दुविधा-जनक ही है। अतः उस आधार पर भी निर्णय नही किया जा सकता।

३

काहू की मैं वरजी नाही रहूं।
जो कोई मोकूं एक कहैं, मैं एक की लाख कहूं।
सास की जाइ मेरी ननद हठीली, यह दुख किन से कहूं।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, जग उपहास सहूं ॥२६॥ †

पदाभिव्यक्ति में असंगति है। साथ ही मीरां जैसी भक्तिमती नारी द्वारा ऐसी छोटी वृत्तियों का वर्णन, वह भी गृह त्याग के बाद असम्भव ही प्रतीत होता है। पद की शुद्ध ब्रजभाषा को देखते हुए ऐसा ही प्रतीत होता है कि वृन्दावन पहुंचने पर ही ऐसे पदों की रचना हुई होगी।

पाठान्तर १,

मेरो मन लाग्यो मग्गी सांवलिया सों,
काहू की बरजी नाहिं रहोंगी।
जो कोऊ मोकों एक कहेगो,
एक की लाख कहोंगी।

सासु बुरी है, ननद हठीली,
यह दुख कोह वहोगी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर के कारण,
जग उपाहास सहोगी।†

इस पाठ की भाषा भी अशुद्ध है। "सहोगी, वहोगी" आदि न तो राजस्थानी मे ही होता है और न ब्रजभाषा मे ही। खड़ी बोली मे भी "सहूगी" आदि होगा। अस्तु, ऐसे पद और उसके गेय रूपान्तरो को प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

लगभग एक ही भाव को व्यक्त करने वाले इन पदो पर विभिन्न भाषाओ का प्रभाव विचारणीय है। भाषा के अन्तर के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति म भी अन्तर पड गया है। बहुत सम्भव है कि इसी तरह से मीराँ के अन्य पदो मे भी भाषा परिवर्तन के साथ ही साथ भाव परिवर्तन भी हुआ हो। यह एक अत्यन्त गम्भीर विचारणीय प्रश्न है।

४

नैना लोभी रे बहुरि सके नहि आय।
रोम रोम नख शिख सब निरखत, ललकि रहै ललचाय।
मं ठाढी गृह आपणे री, मोहन निकले आय।
बदन चन्द परकासत हेली, मन्द मन्द मुसकाय।
लोग कुटुम्बी वरजि बरजही, मानत पर हाथ गए विकाय।
भली कहो कोई बुरी कहो, मैं सब लई सीस चढाय।
मीराँ प्रभु गिरिधरन लाल बिनु, पल भर रह्यो न जाय॥ २७॥†

पद की अन्तिम पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर पाया जाता है।

"मीराँ के प्रभु गिरिधर के विनि, पल भर रह्यो न जाय।"

कही कहो पद की तीसरी पक्ति "मैं ठाढी ललचाय" के बाद निम्नाकित एक पक्ति और भी मिलती है।

"सारग ओट तजे कुल अकुस, वदन दिये मुसकाय।"

उपर्युक्त पद मे आए 'गिरिधरन लाल' का प्रयोग विशेष विचारणीय है।

५

नयन लागे तव घूंघट कैसो, लोक लाज तिनका ज्यूं तोर्‌यो।
नेकी बदी हूं सिर पर धारी, मन हाथी आकुस दे मार्‌यो।
प्रगट निसान वजाय चली, राणा राव सकल जग छोर्‌यो।
मीराँ सबल धणी के सरणे, का भयो भूपति मुख मोर्‌यो।।२८।।

पद की तृतीय पक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। मीराँ सिर्फ राणा परिवार "श्वसुर कुल" का ही परित्याग नही कर रही है, अपितु "राव परिवार" "पितृ कुल" का भी त्याग कर रही है। ऐसी ही अभिव्यक्ति सघर्ष द्योतक एक और पद मे भी है, जिसका प्रारम्भ होता है "अव र्नाह विसरू म्हारे हिरदे लिख्यो हरि नाम। " सदेश वाहक द्वारा लौट जाने का आग्रह किए जाने पर मीराँ का उत्तर है, "कर सूरापण' नीसरी, म्हारे कुण राणे कुण राव।" इन दोनो ही पदो मे प्रयुक्त यह "राव" शब्द विशेष विचारणीय है।

इसी पक्ति के पूर्वार्द्ध से व्यक्त होने वाली भावना "प्रगट निसान वजाय चली" भी विरोधाभिव्यक्ति के राजस्थानी पद स० ५ म मिलती है। माता के प्रति मीराँ का कथन "देर नगारो' मीराँ चढ़ गयी, माता हियो मत हारी जी" यद्यपि मीराँ की दृढ भक्ति भावना अन्य पदो से भी व्यक्त होती है, तथापि इस तरह की भावना अन्य पदो म नही मिलती।

भीष्म प्रतिज्ञा   २ नाग ठोस्सर।

वियोगाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज,
मैं अबला बल नाहि गुसाईं, तुम ही मेरे सिरताज।
मैं गुणहीन गुण नाहि गुसाँई, तुम समरथ महाराज।
थाँरी होइ के क्रिणरे[1] जाऊं, तुम ही हिवड़ा[2] री साज[3]
मीराँ के प्रभु और न कोई, राखो अब के लाज। ॥२९॥

२

प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ी लगाय,
छोड गया विस्वास सघाती,[4] प्रेम की बाती[5] बराय[6]।
विरह समद[7] में छोड गया हो, नेह की नाव चलाय।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम बिन रह्यो न जाय। ॥३०॥

पाठान्तर १,

पिया ते कहाँ गयो नेहरा लगाय।
छाँड़ि गयो अब कहाँ बिसोसी, प्रेम की बाती बराय।
बिरह समुद्र में छाडि गयो पिव, नेह की नाव चलाय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम बिनि रह्यो न जाय।

---

१. कहाँ, २ हृदय का, ३ शृंगार ४ विश्वासघात करके, ५ दीप, ६ जलाकर, ७ समुद्र।

३

हो जी हरि कित गये नेह लगाय।
नेह लगाय मेरो मन हर लियो, रस भरि टेर सुनाय।
मेरे मन मे ऐसी आवै, मरुँ जहर विष खाय।
छाँड़ि गयो विश्वासघात करि, नेह केरि नाव चलाय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, रहे मधुपुरी छाय॥३१॥

पाठान्तर १,

कितहूँ गये नेह लगाय।
प्रीति लगाई मेरी मन हर लीनो, रस भरि टेर सुनाई।
हम से बैर प्रीति कुब्जा से, हमें न कहूँ सुहाई।
मेरे तो मन मे ऐसो आवे, मरूँगी जहर विष खाई।
हमकूं छाँडि गये विस्वासी, विरह की नाव चढाई।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रहे मधुपुरी छाई।

उपर्युक्त तीनो पदो का गहरा साम्य विशेष विचारणीय है इस पद व इसके पाठान्तर पर ब्रज भाषा का प्रभाव सुस्पष्ट है। भाषा के इस अन्तर के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति पर भी पौराणिक गाथाओ का प्रभाव विचारणीय है।

उपर्युक्त पद और उसके सभी पाठान्तरो मे विश्वासघात करने की भावना बहुत ही स्पष्ट हो उठती है, यह एक विचारणीय पहलू है।

४

जावो हरि निरमोहिड़ा, जाणी थाँरी प्रीत।
लगन लगी जब प्रीत और ही, अब कुछ अँवली[१] रीत।
अमृत प्याय के विष क्यूं दीजे, कूण गाँव की रीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, आप गरज के मीत॥३२॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

---

१ उलटी।

५

थाँने काँई काँई[1] कह समझावूं, म्हाँरा वाल्हा गिरधारी।
पूरब जनम की प्रीति हमारी, अब नही जात निवारी[2]।
सुन्दर बदन जोवते सजनी, प्रीत भई छै भारी।
म्हाँरे घर पधारो गिरधारी, मगल गावै नारी।
मोती चोक पुराऊँ बाल्हा[3], तन मन तो पर वारी।
म्हाँरा सगपण[4] तोसूं साँवलिया, जुग सो नही विचारी।
मीरा कहै गोपिन को वाल्हो, हम सूं भयो ब्रह्मचारी।
चरन सरन है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी। ॥३३॥

पद में व्यक्त की गयी भावना विशेष ध्यान देने योग्य है। इस भाव को प्रदर्शित करने वाला यह पद अपनी तरह का एक ही है। मीराँ के पदो मे प्राय प्राप्त टेक परम्परा (मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर) भी इसम नही है।

सम्पूर्ण पद की राजस्थानी भाषा को देखत हुए अन्तिम पक्ति मे प्रयुक्त "तुम्हारी" शब्द के बदले "थाँरी" शब्द का होना अधिक युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

६

गिरिधर, दुनियाँ दे छै बोल।
गिरिधर म्हाँरे मैं गिरिधर की, कहो तो वजाऊँ ढोल।
आप तो जाय विदेशाँ छाये, हमको पड़ गयो झोल[5]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम के कोल[6]। ॥३४॥

पाठान्तर १,

गिरिधर, दुनियाँ दे छै बोल[7]।
दुनियाँ क्यो दे बोल, ये करमन के भोग।

---

१ क्या-क्या, २ हटाई, ३ बालम, ४ ब्याह द्वारा हुए सबध ५ अनिश्चित परिस्थिति ६ वचन, ७ ताने।

आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ लिख दिया जोग ।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम का कोल ।

इस पाठ पर व्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट है।

पाठान्तर २,

गिरिधर, दुनियाँ दे छै वोल।
गिरिधर मेरा मैं गिरिधर की, कहो तो वजाऊ ढोल।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूं लिख दियो जोग।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम का कोल।

उपर्युक्त तीनों पदो पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन प्रथम दोनों पाठों का सम्मिश्रण ही इस पाठ विशेष का आधार है।

७

अपने करम को छै दोस, काकूं दीजै ऊधो।
सुणियो मेरी भैंण[1] पड़ोसण, गैले[2] चालत लागी चोट।
पहली मैं ग्यान मान नहीं कीनो, मैं ममता की बाँधी पोट।
मैं जाणूं हरि नाहि तजैंगे, करम लिख्यो भलि पोच।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारोनी सोच ॥३५॥†

पद की द्वितीय पंक्ति में प्रयुक्त "भैंण" शब्द के वदले "बग्गड़' शब्द का ही प्रयोग मिलता है।

पदाभिव्यक्ति मे पश्चाताप ही प्रकट होता है। इस भावना का द्योतक पद यही एक है।

पाठान्तर १,

अपणा करम ही का खोट, दोष कांई दीजै री आली।
सुणजो री मेरी सग की सहेली, वाट चलत लागी चोट।

---

१ बहन, २ रास्ता।

मैं ताँ सूँ बूझूँ कोई न बतावे, सब ही वटाऊँ लोग।
अपणाँ दरद कूँ सब कोई जाणै, पर दु ख को नाहि कोई।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बची चरण की ओट।
पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सवन्ध का निर्वाह नही हुआ है।†

पाठान्तर २,

सखी आपणाँ स्याम पोटा, दोष नही कुवज्या में।
आपन हाथि लिख न भेजे, काँई कागद का टोटा।
खारी वेल के कड़ा फल लागा, कहा छोटा कहा मोटा।
कुवज्या दासी कसराय की, वे नन्दजी का ढोटा।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, हरि चरणाँ का वोटा।†
भाषा पर ब्रज का और भाव पर पौराणिक गाथाओं का प्रभाव है।

पाठान्तर ३,

कछु दोष नही कुवज्या ने, बिरी अपना स्याम खोटा।
आप न आवे, पतिया न भेजे, कागज का काँई टोटा।
नौ लख धेनु नन्द घर दूधे, माखन का नाई टोटा।
आपही जाय द्वारिका छाये, ले समुँदर की ओटा।
कुवज्या दासी कसराय की, वे नन्द जी का ढोटा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कुबज्या बडी हरि छोटा।†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सवध का अभाव है। कुछ पक्तियो, (पक्ति स० २ ओर ४) के आधारपर इस पाठ को पाठ स० २ का ही विस्तृत रूप कहा जा सकता है।

इस पाठ की अन्तिम पक्ति है, "मीरा के प्रभु गिरिधर नागर"। परन्तु प्रथम तीनो पाठ की अन्तिम पक्ति है "मीराँ के प्रभु हरि अविनासी" यह भी एक महत्वपूर्ण विचारणीय पहलू है।

आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ लिख दिया जोग।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम का कोल।

इस पाठ पर व्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट है।

पाठान्तर २,

गिरिधर, दुनियाँ दे छै बोल।
गिरिधर मेरा मैं गिरिधर की, कहो तो बजाऊ ढोल।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ लिख दियो जोग।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम का कोल।

उपर्युक्त तीनों पदों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन प्रथम दोनों पाठों का सम्मिश्रण ही इस पाठ विशेष का आधार है।

७

अपने करम को छै दोस, काकूँ दीजै ऊधो।
सुणियो मेरी भैण[1] पड़ोसण, गेले[2] चालत लागी चोट।
पहली मैं ग्यान मान नहीं कीनो, मैं ममता की बाँधी पोट।
मैं जाणूं हरि नांहि तजैंगे, करम लिख्यो भलि पोच।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारोनी सोच ॥३५॥†

पद की द्वितीय पंक्ति में प्रयुक्त "भैण" शब्द के बदले "बगड़" शब्द का ही प्रयोग मिलता है।

पदाभिव्यक्ति से पश्चाताप ही प्रकट होता है। इस भावना का द्योतक पद यही एक है।

पाठान्तर १,

अपणा करम ही या खोट, दोष काई दीजै री आली।
सुणजो री मेरी सग की सहेली, बाट चलत लागी चोट।

---

१ बहन, २ रास्ता।

मै तां सूं वूझूं कोई न वतावे, सव ही वटाऊँ लोग।
अपणां दरद कूं सव कोई जाणै, पर दु ख को नाहि कोई।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, वची चरण की ओट।
पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सवन्ध का निर्वाह नही हुआ है।†

पाठान्तर २,

मधी आपणां स्याम पोटा, दोष नही कुवज्या में।
आपन हाथि लिख न भेजे, काँई कागद का टोटा।
खारी वेल के कडा फल लागा, कहा छोटा कहा मोटा।
कुवज्या दासी कसराय की, वे नन्दजी का ढोटा।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, हरि चरणां का वोटा।†
भाषा पर व्रज का और भाव पर पौराणिक गाथाओं का प्रभाव है।

पाठान्तर ३,

कछु दोष नहीं कुवज्या ने, विरी अपना स्याम खोटा।
आप न आवें, पतिया न भेजे, कागज का काँई टोटा।
नौ लख धेनु नन्द घर दूधे, माखन का नाई टोटा।
आपही जाय द्वारिका छाये, ले समुंदर की ओटा।
कुवज्या दासी कसराय की, वे नन्द जी का ढोटा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कुवज्या वडी हरि छोटा।†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सवध का अभाव है। कुछ पक्तियों, (पक्ति स० २ और ४) के आधारपर इस पाठ को पाठ स० २ का ही विस्तृत रूप कहा जा सकता है।

इस पाठ की अन्तिम पक्ति है, "मीरा के प्रभु गिरिधर नागर"। परन्तु प्रथम तीनो पाठ की अन्तिम पक्ति है"मीराँ के प्रभु हरि अविनासी" यह भी एक महत्वपूर्ण विचारणीय पहलू है।

आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ लिख दिया जोग।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम का कोल।

इस पाठ पर ब्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट है।

पाठान्तर २,

गिरिधर, दुनियाँ दे छै बोल।
गिरिधर मेरा मै गिरिधर की, कहो तो वजाऊ ढोल।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ लिख दियो जोग।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम का कोल।

उपर्युक्त तीनो पदो पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन प्रथम दोनो पाठो का सम्मिश्रण ही इस पाठ विशेष का आधार है।

७

अपने करम को छै दोस, काकूँ दीजै ऊधो।
सुणियो मेरी भैण[1] पडोसण, गैले[2] चालत लागी चोट।
पहली मै ग्यान मान नही कीनो, मै ममता की बाँधी पोट।
मै जाणूँ हरि नाहि तजैगें, करम लिख्यो भलि पोच।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारोनी सोच ॥३५॥†

पद की द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त "भैण" शब्द के वदले "वगड़" शब्द का ही प्रयोग मिलता है।

पदाभिव्यक्ति से पश्चाताप ही प्रकट होता है। इस भावना का द्योतक पद यही एक है।

पाठान्तर १,

अपणा करम ही का खोट, दोष काई दीजै री आली।
सुणजो री मेरी मग की सहेली, बाट चलत लागी चोट।

---

१ बहन, २ रास्ता।

काढ़ि करेजो मैं धरूं, कागा तू ले जाइ।
जा देसां म्हारो पिव बसै, वे देखै तू खाइ।
छनि आगनि छनि मदिरा, छनि छनि ठाढ़ी होइ।
छाइ ज्यूं घूमत फिरूं, म्हारो मरम न जानै कोइ।
तन सूखि पिंजर भयौ, सूका त्रच्छ की छांहां।
आंगलियारी मूंदड़ी म्हारे आवण लागी बांहां।
रे रे पापी पपीवड़ा, पीव का नाम न लेह।
पिव मिलै तो मैं जीवूं, नातरि त्यागूं (म्हारो) जीव।
कोइक हरजन मामलै[1] रे, पिव कारण जिव देह।
मीरां व्याकुल व्रहनी, पिव बिन कमौ सनेह। ॥३८॥

पाठान्तर १,

नातो नाम को रे मोसूं तनक न तोड्यो जाय।
पाना ज्यूं पीली पडी रे, लोग कहै घट रोग।
छानै लाघण मैं किया रे, राम मिलण के जोग।
बाबल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हाकी बाह।
मूरख बैद मरम नहीं जाणै, करक कलेजा माह।
जा वैदा घरि आपणै रे, मेरो नाव न लेह।
मैं तो दाधी विरह की रे, तू काहे को दारु[2] देइ।
माम गले गल[3] छीजिया[4] रे, करक रह्या गल आहि[5]।
आंगलिया री मूंदड़ी रे, म्हारे, आवण लाग्यो बाहि।
रहो रहो पापी पपीहरा रे, पिव को नाम न लेइ।
जे कोई विरहणी साम्हलै, (सजनी) पिव कारण जिव देह।
खिण मदिर खिण आगणे, खिन खिन ठाढ़ी होइ।
घायल ज्यूं घूमूं सदा री, म्हारी विथा न बूझे कोइ।

---

१ साम्हलै, सुनले, २ दवा, ३ गल-गल कर, ४ क्रमश: नष्ट हो गया, ५ आकर, गले में आकर।

८

निरमोहिड़ा नेह न जोड़े छै।
यो मन कह्यो न माने, अमृत मे विष घोरे छै,
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ विरहा झोरे[1] छै।
कुवज्या दासी कसराई की, सरब[2] सुख लोरे छै।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाग्री प्रीत क्यूँ तोड़े छै। ॥३६॥

९

माई, मेरा पिया बिन अलूणो[3] देस।
राग रग सिणगार[4] न भावै, खुलि रहै सिर के केस।
सावण आयो साहिब दूरे, जाइ रहे परदेस।
सेज[5] अलूणी भवन अकेली, रैण भयकर भेस।
आव सलूणे प्रीतम प्यारे, बीते जोवन बेस[6]।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तन मन करूँ सब पेस[7]। ॥३७॥

१०

नातो हरि नांव को माई, मोसूँ तनक न विसर्यो जाई।
पाना[8] ज्यूँ पीली भई, लोग कहैं पिंड रोग।
छाने[9] लाघण[10] मैं किया जी, राम मिलण के जोग[11]।
बावल[12] वैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई (म्हारी) बाँहि।
मूरखि वैद न जानहि, (म्हारे) करक कलेजा माँहि।
वैद जावो घर आपणे, (म्हारो) नाव न लेई।
मैं तो दाधी[14] हरि नाव की, मोहि काहे को दुख देई।

१ झकझोरना, २ सब ३ नमक बिना, भावार्थ, रसहीन, ४ शृंगार ५ सेज ६ वयस, ७ समर्पण, ८ पत्ते, ९ छिपा कर, १० उपवास ११ हेतु। १२ बावुल, पिता १३ नाम, १४ जली हुई,

काढ़ि करेजो मैं धरू, कागा तू ले जाइ।
जा देसा म्हारो पिव बसै, वे देखे तू खाइ।
छनि आगनि छनि मदिरा, छनि छनि ठाढी होइ।
छाइ ज्यूँ घूमत फिरू, म्हारो मरम न जाने कोइ।
तन सूखि पिंजर भयौ, सूका व्रच्छ की छाहा।
आगलियारी मूँदडी म्हांरे आवण लागी वाहा।
रे रे पापी पपीवड़ा, पीव का नाम न लेह।
पिव मिलै तो मैं जीवूँ, नातरि त्यागूँ (म्हारो) जीव।
कोइक हरजन सामलै[1] रे, पिव कारण जिव देह।
मीराँ व्याकुल व्रहनी, पिव बिन कसौ सनेह। ॥३८॥

पाठान्तर १,

नातो नाम को रे मोसूँ तनक न तोड्यो जाय।
पाना ज्यूँ पीली पडी रे, लोग कहै घट रोग।
छाने लाघण मैं किया रे, राम मिलण के जोग।
बाबल बैद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हाकी बाह।
मूरखि बैद मरम नही जाणै, करक कलेजा माह।
जा बैदा घरि आपणै रे, मेरो नाव न लेइ।
मैं तो दाधी विरह की रे, तू काहे को दारु[2] देइ।
मास गले गल[3] छीजिया[4] रे, करक रह्या गल आहि[5]।
आगलिया रो मूंदडो रे, म्हारे, आवण लाग्यो बाहि।
रहो रहो पापी पपीहरा रे, पिव को नाम न लेइ।
जे कोई विरहणी साम्हले, (सजनी) पिव कारण जिव देइ।
खिण मंदिर खिण आगणे, खिन खिन ठाढी होइ।
घायल ज्यूँ घूमूँ सदा री, म्हारी बिथा न बूझै कोइ।

---

१ साम्हलै, सुनले, २ दवा, ३ गल-गल कर, ४ क्रमश: नष्ट हो गया, ५ आकर, गले में आकर।

८

निरमोहिड़ा नेह न जोडे छै।
यो मन कह्यो न माने, अमृत में विप घोरे छै,
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ विरहा झोरे[1] छै।
कुबज्या दासी कंसराई की, सरब[2] सुख लोरे छै।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाग्री प्रीत क्यूँ तोड़े छै। ॥३६॥

९

माई, मेरा पिया विन अलूणो[3] देस।
राग रंग सिणगार[4] न भावै, खुलि रहे सिर के केस।
सावण आयो साहिव दूरे, जाइ रहे परदेस।
सेज[5] अलूणी भवन अकेली, रैण भयकर भेस।
आव सलूणे प्रीतम प्यारे, बीते जोवन वेस[6]।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तन मन करूँ सब पेस[7]। ॥३७॥

१०

नातो हरि नाँव को माई,मोमूं तनक न बिसर्‌यो जाई।
पाना[8] ज्यूं पीली भई, लोग कहें पिंड रोग।
छाने[9] लाघण[10] में किया जी,राम मिलण के जोग[11]।
बावल[12] वैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई(म्हाँरी) बाँहि।
मूरखि वेद न जानहिं, (म्हाँरे)करक कलेजा माँहि।
वैद जावो घर आपणे, (म्हाँरो) नाव न लेई।
मैं तो दाधी[14] हरि नाव की, मोंहि काहे को दुप देई।

१ प्रज्ज्वाग्ना २ सर्व ३ नमक बिना, भावार्थ, रसहीन, ४ शृंगार ५ सेज ६ वयस, ७ समर्पण, ८ पत्ते, ९ छिपा कर, १० उपवास ११ हेतु। १२ बाबुल, पिता १३ नाम, १४ जली हुई,

काढ़ि करेजो मैं धरूं, कागा तू ले जाइ।
जा देसा म्हारो पिव बसै, वे देखे तू खाइ।
छनि आंगनि छनि मदिरा, छनि छनि ठाढ़ी होइ।
छाइ ज्यूं घूमत फिरू, म्हारो मरम न जानें कोइ।
तन सूखि पिंजर भयौ, सूकां ब्रच्छ की छाहां।
आगलियारी मूंदड़ी म्हारे आवण लागी वाहा।
रे रे पापी पपीवड़ा, पीव का नाम न लेह।
पिव मिलै तो मैं जीवूं, नातरि त्यागूं (म्हारो) जीव।
कोइक हरजन सामलै[1] रे, पिव कारण जिव देह।
मीराँ व्याकुल ब्रहनी, पिव बिन कसौ सनेह। ॥३८॥

पाठान्तर १,

नातो नाम को रे मोसूं तनक न तोड्यो जाय।
पाना ज्यूं पीली पडी रे, लोग कहै षट रोग।
छानें लाघण मैं किया रे, राम मिलण के जोग।
बावल वैद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हाकी बाह।
मूरखि वैद मरम नहीं जाणै, करक कलेजा माह।
जा वैदा घरि आपणें रे, मेरो नाव न लेइ।
मैं तो दाधी विरह की रे, तू काहे को दारू[2] देइ।
मास गले गल[3] छीजिया[4] रे, करक रह्या गल आहि[5]।
आगलिया रो मूंदड़ो रे, म्हारे, आवण लाग्यो वाहि।
रहो रहो पापी पपीहरा रे, पिव को नाम न लेइ।
जे कोई विरहणी साम्हले, (सजनी) पिव कारण जिव देइ।
खिण मंदिर खिण आगणे, खिन खिन ठाढ़ी होइ।
घायल ज्यूं घूमूं सदा री, म्हारी विथा न बूझे कोइ।

---

१ साम्हलै, सुनले, २ दवा, ३ गल-गल कर, ४ क्रमशः नष्ट हो गया, ५ आकर, गले में आकर।

८

निरमोहिड़ा नेह न जोड़े छै।
यो मन कह्यो न माने, अमृत मे विप घोरे छै,
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ विरहा झोरे[1] छै।
कुवज्या दासी कसराई की, सरव[2] सुख लोरे छै।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाग्री प्रीत क्यूँ तोड़े छै। ॥३६॥

९

माई, मेरा पिया बिन अलूणो[3] देस।
राग रग सिणगार[4] न भावै, खुलि रहे सिर के केस।
सावण आयो साहिब दूरे, जाइ रहे परदेस।
सेज[5] अलूणी भवन अकेली, रैण भयकर भेस।
आव सलूणे प्रीतम प्यारे, वीते जोवन वेस[6]।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तन मन करूँ सब पेस[7]। ॥३७॥

१०

नातो हरि नाँव को माई, मोसूं तनक न विसर्‌यो जाई।
पाना[8] ज्यूं पीली भई, लोग कहे पिंड रोग।
छाने[9] लाघण[10] मै किया जी, राम मिलण के जोग[11]।
बावल[12] वैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई (म्हाँरी) बाँहि।
मूरखि वेद न जानहि, (म्हाँरे) करक कलेजा माँहि।
वैद जावो घर आपणे, (म्हाँरो) नाव न लेइं।
मै तो दाधी[14] हरि नाव की, मोहि काहे को दुप देइं।

---

१ झकझोरना, २ सर्व, ३ नमक विना, भावार्थ, रसहीन, ४ शृगार, ५ सेज, ६ वयस, ७ समर्पण, ८ पत्ते, ९ छिपा कर, १०. उपवास, ११. हेतु। १२ बाबुल, पिता १३ नाम, १४ जली हुई,

१३

पिय विन रह्योइ न जाइ।
तन मन मेरो पिया पर वाँरुँ, वार वार वलि जाइ।
निसदिन जोऊँ वाट पिया की, कबरे मिलोगे आइ।
मीराँ के प्रभु आस तुम्हारी, लीजो कठ लगाइ। ॥४१॥

उपर्युक्त दोनो पदो की प्रथम पक्तियो का साम्य विचारणीय है।

१४

रे पपइया प्यारे कव को बैर चितार्‌यो[1] ।
मै सूती छी अपने भवन मे, पिय पिय करत पुकार्‌यो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवडो करवत सार्‌यो।
उठि बैठो वृच्छ की डाली, बोल बोल कठ सार्‌यो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,हरि चरणाँ चित्त धार्‌यो ॥४२॥

१५

तुम देख्या विन कल न पड़त है, भली ए वुरी कोई लाख कहो जी।
नेह को पेडो बोहोत करुण है, च्यारी कही दस और कहो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, प्रीत करो तो बोल सहोजी।
॥४३॥†

पाठान्तर १,

क्रृष्ण मेरे नजर के आगे ठाढो रहो रे।
मै जो वुरी सान और भली है, भली की वुरी मेरे दिल रह्यो रे।
प्रीत को पेणूडो वहुत कठिन है, चार कही दस और कहो रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, प्रीत करो तो मेरा बोल सहो रे।†

---

१ बदला लिया।

काढि कलेजा मैं धरूं रे, कौवा तू ले जाइ।
ज्या देसा म्हारो पिव बसै, (सजनी) वे देखे तू खाइ।
म्हारो नातो नाव को रे, और न नातो कोइ।
मीरां व्याकुल विरहणी रे, पिया दरसण दीजो मोइ।

११

तैं दरद नहि जान्यू, सुनि रैं वैद अनारी।
तू जा वैद घरि आपणैं रे, तुझै खबर मोरी नाही।
मोरे दरद को तू मरम नहि जाणै, करक कलेजा रे माही।
प्राण जाण का सोच नहि मोहि, नाथ दरस द्यो आरी[1]।
तुम दरसन विन जिव यूँ तरसै, ज्यूँ जल विन पनवारी।
कहा कहू कछु कहत न आवै, सुणिज्यो आप मुरारी।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, जनम जनम की मैं थारी ॥३९॥†

भाषा और भाव दोनो ही के आधार पर यह पद पद स० १० की कुछ पंक्तियों का गेय रूपान्तर ही सिद्ध होता है।

पद के इस रूप में पूर्वापर सम्बन्ध का भी अभाव है। इससे उपर्युक्त कथन का समर्थन ही होता है।

१२

रमैया विन मोसूं रह्योइ न जाय।
खान पान मोहि फीको सो लागै, नैणां रहै मुरझाइ।
वार वार मैं अरज करत हूँ, रैण गई दिन जाइ।
मीरां कहै प्रभु तुम मिलिया विन, तरस तरस तन जाइ ॥४०॥

---

१ शीघ्र।

१३

पिय विन रह्योइ न जाइ।
तन मन मेरो पिया पर वारुँ, वार वार वलि जाइ।
निसदिन जोऊँ वाट पिया की, कवरे मिलोगे आइ।
मीराँ के प्रभु आस तुम्हारी, लीजो कंठ लगाइ। ॥४१॥

उपर्युक्त दोनो पदो की प्रथम पक्तियों का साम्य विचारणीय है।

१४

रे पपइया प्यारे कव को वैर चितार्‌यो[1] ।
मैं सूती छी अपने भवन में, पिय पिय करत पुकार्‌यो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवडो करवत सार्‌यो।
उठि वैठो वृच्छ की डाली, वोल वोल कंठ सार्‌यो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,हरि चरणाँ चित्त धार्‌यो ॥४२॥

१५

तुम देख्या विन कल न पडत है, भली ए वुरी कोई लाख कहो जी।
नेह को पेडो वोहोत करुण है, च्यारी कही दस और कहो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, प्रीत करो तो वोल सहोजी।
॥४३॥†

पाठान्तर १,

कृष्ण मेरे नजर के आगे ठाढो रहो रे।
मैं जो वुरी सान और भली है, भली की वुरी मेरे दिल रह्यो रे।
प्रीत को पेणूडो वहुत कठिन है, चार कही दस और कहो रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, प्रीत करो तो मेरा वोल सहो रे।†

---

१ वदला लिया।

१६

म्हारो मनडो लाग्यो हरि सूँ, मैं आज करूँ अतर सूँ।
माधोरी मूरति पलक न बिसरूँ, सो लै हिरदै धरूँ।
आवन कह गये अजहूँ न आये, बिन दरसण मैं तरसूँ।
म्हारो जनम सुफल होय, जादिन हरि के चरण परसूँ।
मीरा के प्रभु दरसण दीज्यो, तन मन अरपण करस्यूँ। ॥४४॥

१७

म्हारो मन मोह्यो छै जी स्याम सुजाण।
माधुरी मूरत सुरत सुन्दरी जाणे कोटिक भान[1]।
कसूमल पाग केमर्‌यो जामो, सोहै कुडल कान।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम बिन तलफत प्राण। ॥४५॥

१८

बाई, म्हारे रावल भेप।
वे स्याम वहो जटाधारी, अब ही अजन रेख।
स्वेत बरण रग के कथा पहर्‌या, भिक्षा मागा देस।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, करहूँ अलख अलेख॥४६॥+

पाठान्तर १,

बाई, थाराँ नैन रावल भेख।
बानी श्याम वोहो जटाधारी, अन्जन रेख।
स्वेत अरुण कथा बिराजत, माँगत देम।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, करत करत अलेख।†

---

१ भानु, सूर्य।

पाठान्तर २,

वाई म्हाँरे नैन रावल भेष।
बिना श्याम सखी में जटाधारी, सेली अंजन रेख।
सुवेद वरण अंग कंथा राजै, भिक्षा मांगूं देश।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, करूँगी अलख अलेख।†

उपर्युक्त तीनों ही पाठों से कोई भी अर्थ स्पष्ट नही होता।

१९

डाल गयो रे गल मोहन फाँसी।
ऊँची सी अटाली पर मेहुँडा बरसत,
बूंद लगी जसी तीर की गाँसी।
अँबुवा की डाली पर कोयल बोलत,
म्हाँरो तो मरनो भयो थाँरी भयी हाँसी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
थे तो मेरा ठाकुर, मैं तो थाँरी दासी।।४७।।†

उपर्युक्त पद मे वसत और वर्षा का वर्णन एक ही साथ हुआ ह, यह असगत प्रतीत होता है।

पाठान्तर १,

डारि गयो मन मोहन फासी।
आँबा की डाली कोयल इक बोले।
मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी।
विरह की मारी मैं वन वन डोलूँ।
प्राण तजूँ, करवत ल्यूँ कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर।
तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।†

१६

म्हारो मनड़ो लाग्यो हरि सूँ, मैं आज करूँ अतर सूँ।
माधोरी मूरति पलक न बिसरूँ, सो ले हिरदै धरूँ।
आवन कह गये अजहूँ न आये, विन दरसण मैं तरसूँ।
म्हारो जनम् सुफल होय, जादिन हरि के चरण परसूँ।
मीरा के प्रभु दरसण दीज्यो, तन मन अरपण करस्यूँ। ॥४४॥

१७

म्हारो मन मोह्यो छै जी स्याम सुजाण।
माधुरी मूरत सुरत सुन्दरी जाणे कोटिक भान[1]।
कसूमल पाग केसर्‍यो जामो, सोहै कुडल कान।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम बिन तलफत प्राण। ॥४५॥

१८

वाई, म्हारे रावल भेष।
वे स्याम बहो जटाधारी, अव ही अजन रेख।
स्वेत वरण रग के कथा पहर्‍या, भिक्षा मागा देस।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, करहूँ अलख अलेख।।४६।।+

पाठान्तर १,

वाई, थाराँ नैन रावल भेख।
वानी स्याम वोहो जटाधारी, अन्जन रेख।
स्वेत अरुण कथा विराजत, माँगत देस।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, करत करत अलेख।†

---

१. भानु, सूर्य।

पाठान्तर २,

वाई म्हाँरे नैन रावल भेप।
विना श्याम सखी मे जटाधारी, सेली अंजन रेख।
सुवेद वरण अंग कंथा राजे, भिक्षा मांगूँ देश।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, करूँगी अलख अलेख।†

उपर्युक्त तीनो ही पाठों से कोई भी अर्थ स्पष्ट नही होता।

१९

डाल गयो रे गल मोहन फाँसी।
ऊँची सी अटाली पर मेहुँडा बरसत,
बूंद लगी जसी तीर की गाँसी।
अँबुवा की डाली पर कोयल बोलत,
म्हाँरो तो मरनो भयो थाँरी भयी हाँसी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
थे तो मेरा ठाकुर, मं तो थाँरी दासी।।४७।।†

उपर्युक्त पद मे वसत और वर्षा का वर्णन एक ही साथ हुआ ह, यह असगत प्रतीत होता है।

पाठान्तर १,

डारि गयो मन मोहन फासी।
आँवा की डाली कोयल इक बोले।
मेरो मरण अर जग केरी हाँसी।
विरह की मारी मं वन वन डोलूँ।
प्राण तजूं, करवत ल्यूं कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर।
तुम मेरे ठाकुर मं तेरी दासी।†

२०

ओलूँड़ी[1] लगाय गयो है ब्रज को वासी, कब मिलि जासी हे।
चपेली री डाल कोयलिया बोले, बोलत वचन उदासी हे।
गोकुल ढूंढ वृन्दावन ढूढ्यो, ढूंढी मथुरा कासी हे।
रैण दिवस मछली ज्यूं तलफ, तलफ तलफ जिवड़ो जासी हे।
जो कोई प्रभु जी नै आण मिलावै, छूटत प्राण बचासी हे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि जी मिल्या दु.ख जासी हे।
॥४८॥

२१

ओलूं थारी आवै हो महाराज अविनासी।
हो म्हाने कब रे दरस दिखासी।
विरह वियोगिन वन वन डोलूं, करवत लूंगी कासी।
निसि दिन उभी पथ निहारु, कब मोहे धीर बधासी।
कृपा करो म्हारे भवन पधारो, नाही ये जिवडो जासी।
मे भेद अभागण काहे को सरजी, पिया मोसूं रहत उदासी।
तुम हो हमारे अतरजामी मे (थारा) चरणा री दासी।
मीरां तो कुछ जाणत नाही, पकडी टेक निभासी। ॥४९॥

इस पद की अतिम पक्ति सर्वथा नूतन शैली मे है,। पद की भाषा राजस्थानी प्रधान है, अत. सातवी पक्ति मे प्रयुक्त 'तुम' और 'हमारे' शब्दो के स्थान पर 'थे' और 'म्हारा' होना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

२२

परम सनेही राम की नित ओलूं री आवै।
राम हमारे हम है राम के, हरि विन कछु न सुहावै।

---

१ याद स्मृति।

आवण कह गए अजहूं न आए, जिवडो अति अकुलावै।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै।
चरण कवल की लगन लगी, नित बिन दरसण दुख पावै।
मीराँ कूं प्रभु दरसण दीज्यो, आनन्द वरणूं न जावै।

॥५०॥

पद की चतुर्थ पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर प्राप्त है।
"तुम दरसण की आस रमैया, निसि दिन चितवत जावै।"

२३

सावरिया, मोरे नैणा आगे रहिज्यो जी।
म्हाने भूल मत जाज्यो जी, मोहन लगन लगी निभाज्यो जी।
राणा जी भेज्यो विष रो प्यालो, सो अमृत कर पीज्यो जी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी।

॥५१॥ †

उपर्युक्त पद की प्रथम दो और अन्तिम दो पक्तियो मे अर्थ समन्वय नही होता। द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त 'पीज्यो' शब्द के स्थान पर 'दीज्यो' शब्द ही अधिक अर्थमय सिद्ध होता है।

२४

सावरिया, म्हारी प्रीतडली न्हिभाज्यो।
प्रीत करो तो स्वामी ऐसी कीज्यो, अधविच मत छिटकाज्यो[1]।
तुम तो स्वामी गुणरा सागर, म्हारा ओगुण चित मति लाज्यो।
काया गढ घेरा ज्यो पड़्या छै, ऊपर आपर खाज्यो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चित्त चरणा रखाज्यो। ॥५२।

पद की तीसरी पक्ति सर्वथा अर्थहीन प्रतीत होती है।

---

१. दूर हटा देना।

२०

ओलूँडी[1] लगाय गयो है ब्रज को वासी, कब मिलि जासी हे।
चपेली री डाल कोयलिया बोले, बोलत वचन उदासी हे।
गोकुल ढूँढ वृन्दावन ढूढ्यो, ढूँढी मथुरा कासी हे।
रैण दिवस मछली ज्यूँ तलफ, तलफ तलफ जिवड़ो जासी हे।
जो कोई प्रभु जी नैं आण मिलावैं, छूटत प्राण बचासी हे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि जी मिल्या दु:ख जासी हे।
॥४८॥

२१

ओलूँ थारी आवै हो महाराज अविनासी।
हो म्हाने कब रे दरस दिखासी।
विरह वियोगिन बन बन डोलूँ, करवत लूँगी कासी।
निसि दिन उभी पथ निहारु, कब मोहे धीर बधासी।
कृपा करो म्हारे भवन पधारो, नाही ये जिवडो जासी।
मै भेद अभागण काहे को मरजी, पिया मोसूँ रहत उदासी।
तुम हो हमारे अतरजामी मै (थारा) चरणा री दासी।
मीराँ तो कुछ जाणत नाही, पकड़ी टेक निभासी। ॥४९॥

इस पद की अतिम पक्ति सर्वथा नूतन शैली मे है,। पद की भाषा राजस्थानी प्रधान है, अत. सातवी पक्ति मे प्रयुक्त 'तुम' और 'हमारे' शब्दो के स्थान पर 'थे' और 'म्हारा' होना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

२२

परम सनेही राम को नित ओलूँ री आवै।
राम हमारे हम है राम के, हरि बिन कछु न सुहावै।

---

१ याद, स्मृति।

आवण कह गए अजहूं न आए, जिवड़ो अति अकुलावे।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै।
चरण कवल की लगन लगी, नित विन दरसण दुख पावै।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, आनन्द वरणूँ न जावै।

॥५०॥

पद की चतुर्थ पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर प्राप्त है।
"तुम दरसण की आस रमैया, निसि दिन चितवत जावै।"

२३

सावरिया, मोरे नैणा आगे रहिज्यो जी।
म्हाने भूल मत जाज्यो जी, मोहन लगन लगी निभाज्यो जी।
राणा जी भेज्यो विष रो प्यालो, सो अमृत कर पीज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल विछुडन मत कीज्यो जी।

॥५१॥ †

उपर्युक्त पद की प्रथम दो और अन्तिम दो पक्तियो मे अर्थ समन्वय नही होता। द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त 'पीज्यो' शब्द के स्थान पर *'दीज्यो' शब्द ही अधिक अर्थमय सिद्ध होता है।*

२४

सावरिया, म्हारी प्रीतड़ली न्हिभाज्यो।
प्रीत करो तो स्वामी ऐसी कीज्यो, अधविच मत छिटकाज्यो[1]।
तुम तो स्वामी गुणरा सागर, म्हारा ओगुण चित मति लाज्यो।
काया गढ घेरा ज्यो पड्या छै, ऊपर आपर खाज्यो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चित्त चरणां रखाज्यो। ॥५२।

पद की तीसरी पक्ति सर्वथा अर्थहीन प्रतीत होती है।

---

१. दूर हटा देना।

२५

घड़ी एक नही आवड़े[1] तुम दरसण बिन मोय।
तुम ही मेरे प्राण जो, कांसू जीवण होय।
धान[2] न भावै, नीद न आवै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरुं रे, मेरो दरद न जाणै कोय।
दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरता[3] रे, नैंण गमाया रोय।
जो मैं ऐसा जाणती, प्रीत किए दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती रे, प्रीत न कीज्यो कोय।
पथ निहारु, डगर[4] बुहारु[5], ऊभी मारग जोई।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलिया सुख होई। ॥५३॥

पद की भाषा प्रधानत. राजस्थानी है सिर्फ कुछ सर्वनाम खडी बोली के है। जैसे 'तुम' अत. इनका भी राजस्थानी के अनुकूल 'थे' हो जाना ही अधिक युक्तियुक्त होगा।

२६

को विरहणि को दु ख जाणै हो।
जा घट विरहा सोई लख[6] है, कै कोई हरिजन मानै[7] हो।
रोगी आतर[8] वेद बसत है, वैद ही ओखद जाणै हो।
विरह करद[9] उरि अतरि माहो, हरि बिनि सुख कानै[10] हो।
दुग्धा आरत फिरै दुखारी, सुरत बसी सुत मानै हो।
चात्रग स्वाति बूंद मन माही, पिव पिव उकलाणै[11] हो।
सब जग कूडो कटक दुनिया दरघ[12] न कोई पिछाणै हो।
मीराँ के पति आप रमइया, दूजो नही कोइ छाणै हो। ॥५४॥

---

१ चैन पड़े २ अन्न, ३ याद करते हुए, ४ रास्ता, ५ झाड दूं, साफ करदूं, ६ अदाज लगा लेना, ७ विश्राम कर ले, ८ अतर, ९ करक, १० काम है छोटा है। ११ व्याकुल होना, १२. दर्द,

२७

रमैया बिन नीद न आवै।
नीद न आवे विरह सतावे, प्रेम की आँच दुलावै।
बिन पिया जोत मदिर अधियारो, दीपक दाय[1] न आवै।
पिया बिन मेरी सेज अलूणी, जागत रैण विहावे।
पिया कब रे घर आवै।
दादुर मोर पपीहरा बोले, कोयल सबद सुणावै।
घुमट घटा ऊलर होई आई, दामिन दमक डरावै।
नैना झर लावे।
कहा करु कित जाऊ मोरी सजनी, वेदण कूण बुतावै[2]।
विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।
जडी घस लावै।
को है सखी सहेली सजनी, पिय कूँ आण मिलावै।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे मन मोहन मोहि भावै।
कबै हस कर बतलावै[3]। ॥५५॥

२८

साजन, म्हारी सेजडली कद आवै हो।
हंसि हसि बात करु हिडदा की, जब जिवडो जक[4] पावै हो।
पाचू इन्द्री वस नही मोरी, घन ज्यूँ धीर धरावै हो।
कठिन विरह की पीड गुँसाई, मिलि करि तपत बुझावै हो।
या अरदास[5] सुणो हरि मोरी, विरहणी पल्लो बिछावै[6] हो।
॥५६॥

---

१ पसन्द, २ बन्द कर देना, मिटा देना, ३ बात करे। ४ चैन, ५ अर्ज, प्रार्थना, ६ "पल्लो बिछावै"—दैन्य स्वीकार करना।

२५

घड़ी एक नही आवडे[1] तुम दरसण बिन मोय।
तुम ही मेरे प्राण जो, कासू जीवण होय।
धान[2] न भावै, नीद न आवै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरुं रे, मेरो दरद न जाणै कोय।
दिवस तो खाय गमायो रे, रैंण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरता[3] रे, नैंण गमाया रोय।
जो मै ऐसा जाणती, प्रीत किए दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती रे, प्रीत न कीज्यो कोय।
पथ निहारु, डगर[4] बुहारु[5], ऊभी मारग जोई।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलिया सुख होई। ॥५३॥

पद की भाषा प्रधानत. राजस्थानी है सिर्फ कुछ सर्वनाम खडी बोली के है। जैसे 'तुम' अत. इनका भी राजस्थानी के अनुकूल 'थे' हो जाना ही अधिक युक्तियुक्त होगा।

२६

को विरहणि को दुःख जाणै हो।
जा घट विरहा सोई लख[6] है, कै कोई हरिजन मानै[7] हो।
रोगी आतर[8] वेद वसत है, वैद ही ओखद जाणै हो।
विरह करद[9] उरि अंतरि माही, हरि विनि सुख कानै[10] हो।
दुग्धा आरत फिरै दुखारी, सुरत वसी सुत मानै हो।
चात्रग स्वाति बूंद मन माही, पिव पिव उकलाणै[11] हो।
सब जग कूड़ो कंटक दुनिया दरध[12] न कोई पिछाणै हो।
मीराँ के पति आप रमइया, दूजो नही कोइ छाणै हो। ॥५४॥

---

१ चैन पड़े, २ अन्न, ३ याद करते हुए, ४ रास्ता, ५ झाड दूं, साफ करदूं, ६ अंदाज लगा लेना, ७ विश्वास कर ले, ८ अंतर, ९ करक, १० काम है, छोटा हूं। ११ व्याकुल होना, १२. दर्द,

२७

रमैया विन नीद न आवै।
नीद न आवे बिरह सतावे, प्रेम की आंच दुलावे।
विन पिया जोत मदिर अधियारो, दीपक दाय[1] न आवै।
पिया विन मेरी सेज अलूणी, जागत रैण बिहावे।
पिया कब रे घर आवै।
दादुर मोर पपीहरा बोले, कोयल सबद सुणावै।
घुमट घटा ऊलर होई आई, दामिन दमक डरावै।
नैना झर लावे।
कहा करु कित जाऊ मोरी सजनी, वेदण कूण बुतावै[2]।
विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।
जडी घस लावै।
को है सखी सहेली सजनी, पिय कूँ आण मिलावै।
मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे मन मोहन मोहि भावै।
कवै हस कर बतलावै।

२८

साजन, म्हारी सेजडली कद आवै हो।
हसि हसि वात करु हिडदा की, जव [illegible] जी।
पाचू इन्द्री वस नही मोरी, घन ज्यूं धी[illegible] गरद।
कठिन विरह की पीड गुंसाई, मिलि [illegible] वांग।
या अरदास[5] सुणो हरि मोरी, विरहणी [illegible] जी।
[illegible]यो जी।
[illegible] जोऊं जी।

ग पाठ

---

१ पसन्द, २ बन्द कर देना, मिटा देना, [illegible]
५ अर्ज, प्रार्थना, ६ "पल्लो विछावै"—[illegible]

२९

म्हारे घर आवो जी, राम रसिया, थारी सावरी सूरत मन वसिया।
घुडला जीव पूरवो मोहन, वखतर खासा कसिया।
चुन चुन कलियां सेज विछाई, ऊपरि राखिया तकिया।
सिरे गाय की पूंछ मगायो, चावल गेया पसिया।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल मन वसिया ॥५७॥†
पदाभिव्यक्ति अर्थ हीन है।

३०

भवन पति, तुम घरि आज्यो हो।
विदा तागी तन माहिने (म्हारी) तपत वुझाज्यो हो।
रोवत रोवत डोलात, सव रैण विहावै हो।
भूख गई, निदरा गई, पापी जीव न जावै हो।
दुखिया को सुखिया करो, मोहि दरसण दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अव विलम न कीजै हो। ॥५८॥
पद की भाषा मुख्यत. राजस्थानी है, अत. भाषा के दृष्टि कोण से 'डोलांत' प्रयोग के वदले 'डोलता' प्रयोग ही विशेष शुद्ध है। 'डोलता' का अर्थ है घूमते हुए।

३१

वेग पधारो सावरा कठिन वनी है, आप विना म्हारो कूण धनी है।
दुखिया कूं देख देर मत कीज्यो, देर की विरिया और घणि है।
दिन नही चेत, रैन नही निद्रा, दुसमन के हिये हरस घणि है।
जमडा की फौजा प्रभु आन पड़ी है, वेग हटावो मोटा आप धनीहैं।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरण नवल विच आन खड़ी है।
॥५९॥†
पद म पूर्वापर सवन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

३२

म्हांरे घर होता जाज्यो राज।
अब के जिन[1] टाला दे जावो, सिर पर राखूँ विराज।
पावणडा[2] म्हाके भले ही पधारो, सब ही सुधारण काज।
म्हें तो जनम जनम की दासी, थे म्हारा सिरताज।
म्हें तो बुरी छा,थाके भली छै घणेरी,तुम हो एक रसराज।
थाने हम सब दिन की चिता,तुम सब के हो गरीब निवाज।
सब के मुगट सिरोमनि, सिर पर मानूं पुण्य की लाज।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बाह गहे की लाज ॥६०। †

पाठान्तर १,

होता जाज्यो राज, महला म्हारे होता जाज्यो राज।
मैं अगुणी मेरा साहब सुगुणा, सत सवारे काज।
मीराँ के प्रभु मन्दिर पधारो, कर केसरिया साज।†

इस द्वितीय पाठान्तर की भाषा अधिक शुद्ध है। प्रथम पाठ को अभिव्यक्ति म पूर्वापर सबध का अभाव है।

३३

साजन, वेगा[3] घर आज्यो जी।
आदि अतर रा यार हमारा, हम को सुख लाज्यो जी।
निसि दिन चित चरणा धरु, हो मनडा ते न विसरु।
नजरि परै तुजि ऊपरि, धन जोबन वारु।
हौं मे पतिवरता रावरी, काहू तन काजै जी।
अपनी ओरि निहारि के, प्रीति निभाज्यो जी।
हरि विन सुरति कहा धरु, नित मारग जोऊ जी।

---

१ नहीं, २ अतिथि, ३ शीघ्र।

साई तेरे कारणे, भरि नीद न सोऊं हो।
बिछरिया दिन वहु भया, वेगा दरस दिखाज्यो जी।
प्रीति पुराणी जाणि कै, वाही कृपा रपाज्यो जी।
मेरे अवगुण देखि कै, तुम नाहि तुलाज्यो जी।
मेरे कारण रावरो, मति विड़द लाज्यो जी।
वा विरिया कब होसी, कोइ कहै सदेशा हो।
मीराँ के उणवात रो, मति परो अनेसा हो ।।६१।।†

†पदाभिव्यक्ति मे असंगति और पुनुरुक्ति है।

३४

आवो मनमोहना जी जोऊ थारी बाट।
खान पान मोहि नेक न भावै, नैण न लागे कपाट।
तुम आया विन सुख नाहि मेरे, दिल मे वहोत उचाट।
मीराँ कहे मै भई रावरी, छाड़ो नही निराट[1]। ।।६२।।

३५

आवो मनमोहना जी मीठा थारा बोल।
बालपना की प्रीत रमइया जी, कदे[2] नहि आयी थारो तोल।
दरसण बिना मोहि जक[3] न पड़त है, चित्त मेरो डावाडोल।
मीराँ कहै मै भई रावरी, कहो तो वजाऊ ढोल। ।।६३।।

पद की द्वितीय पक्ति से व्यक्त होती भावना विशेष विचार-णीय है।

३६

कोई कहियो रे विनती जाइकै, म्हारा प्राण पिया नाथ नै।
जा दिन के बिछुरे मन मोहन, कल न परे दिन रात नै।

---

१ निरावलम्ब २ कभी, ३ चैन ।

देस विदेस संदेश न पूगे[1], विरहिन तलफे साथ नें।
प्यारा महरम दिल की जाणै, और न जाणै कोई बात नें।
मीराँ दरसण कारण झूरै, ज्यूँ बालक झूरै मात नें। ।।६४।।

पद की चतुर्थ पक्ति मे प्रयुक्त 'महरम' शब्द की अर्थ संगति नही बैठती। इस शब्द के बदले 'म्हारा' कर देने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। भाषा के दृष्टिकोण से भी यह गलत नही हो सकेगा क्योंकि पद की भाषा राजस्थानी ही है।

३७

पतिया ने कूण पतीजै,[2] आणि खबरि हरि लीजै।
झूठी पतियाँ लिख लिख भेजे, क्या लीजै क्या दीजै।
ऐसा है कोइ वाच[3] सुणावै, मैं वाचू तो भीजे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चरण कमल चित दीजै। ।।६५।।

प्रथम और तृतीय पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर भी प्राप्त है।
प्रथम पक्ति "पतिया ने कूण पतीजै, म्हारो असुँवा सो अचल भीजै।"
तृतीय पक्ति "ऐसा है कोई बाच सुणावै, मैं बाचू तन छीजै।"

३८

थे छो म्हारा गुण रा सागर, औगुण (म्हारा) मत जाज्यो जी।
लोक न धीजै (म्हारो) मन न पतीजै, मुखडारो सबद सुणाज्यो जी।
मैं तो दासी जनम जनम की, म्हारे आगण रमता आज्यो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बेडो पार लगाज्यो जी। ।।६६।। †

उपर्युक्त पद किसी अन्य पद का अश मात्र प्रतीत होता है।

---

१ पहुँचे, २ विश्वास करे ३ पढ़ कर।

३९

मदरो[1] सो बोल मोरा, मोरा स्याम बिन जिव दोरा।
दादुर मोर पपइया बोले, कोयल कर रही शोरा।
झरमर झरमर मेहा बरसे, गाजत है घन घोरा।
मीरां के प्रभु राधा बोले, स्याम मिल्या जिव सोरा[2] ॥६७॥

४०

ऊधो, भली निभाई रे, त्यागे गोपी गोकुल म्हाने क्यूँ तरसाहि रे।
चन्दन घिस लाई, वा से प्रीत लगाई, वा नै लाज न आई।
खो देस्यो जी, उधो जी, आखिर चेरी की जाई रे।
बोहोत दिन बीत्या, म्हारी सुध न लई, नैणा से नीद गई।
चादणी सी रात, म्हारे बैरण भई रे।
रास तो कियो म्हासे, प्रीतड़ली जोडी अब तुम काहे कूँ तोड़ी।
तीख[3] की मारी, म्हामै हुई छै नेड़ी[4] रे।
मीरां जी तो बिना कल ना पडै, पल बिन नाही सरै।
छतियाँ तपै नैणा नीर झरै रे।		॥६८॥ †

पद की पाचवी और सातवी पक्तियो का शेप पद से पूर्वापर सबध नही बैठता। पद की आठवी पक्ति निरर्थक है।

४१

अहो काई जाणे गुवालियो, बेदरदी पीर तो पराई।
थे जनमत ही कुल त्यागन कीनो, बन बन धेनु चराई।
चोर चोर दधि माखन खायो, अबला नार त ताई।

१ मधुर २ आगम युक्त, ३ इर्षा, ४ निकट,

सोला सैस गोपी तज दीन्ही, कुब्जा संग लगाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कुरग करै (जो) थारी विहाई।
॥६९॥†

पद की तीसरी और पांचवी पक्तियो का उत्तरार्द्ध अर्थ हीन है।

४२

देख्या कोई नन्द के लाला, बताओ बसरी वाला।
मेरो मन ले गयो हेली, लागी तन मे तालाबेली[1]।
लगी कोई कान मे दूती, तजी मोहि सेज मे सूती।
बिरह का वान भर मार्‌या, कलेजा छेद कर डारा।
देख्या बिन जिव अति तरसै, नैना मे नीर अति वरसै।
जऊ कान्ह कारो री, मुजले जाय डारो री।
तज्या सब खान पान री, नही मेरी पीड जाणी री।
मोहन मोहन पुकारुँगी, सोवन सिर केस सँवारु री।
ढूढया वन वाग सारा री, मिल्या नही प्राण पियारा री।
हेली हरजन मिलावै री, मीराँ के प्राण बचावौ री। ॥७०॥ †

उपर्युक्त पद मे वीच बीच की पक्तियो मे अर्थ सगति नही है। भाषा भी ठेठ राजस्थानी नही, अपितु आधुनिक राजस्थानी है। श्री सूर्य नारायण जी चतुर्वेदी के मतानुसार यह पद प्रक्षिप्त ही सिद्ध होता है।

४३

वेद वण आयजो, स्वामी म्हारा व्याकुल भयो है सरीर।
मोर मुकुट काछनी रे वाला, केसर खोर चढायजो।
शख चक्र गदा पद्म विराजे, भुज भर अग लिपटायजो।
ओपद है हरि नाम की रे म्हारे, जो ही म्हारा अग लगाओजी।

---

१ वेचैनी।

ज्या श्री चरणा सो म्हारो दु ख जासी, चरणखोल[1] जल पायजोजी।
दरद दिवानी मीरॉ वैद सावलियो, सूती ने आण जगायजोजी।
मीरॉ तो दासी थारी जनम की, चरण कमल चित लायजोजी। ॥७१॥

४४

थारे रंग रीझी रसिक गोपाल।
निस वासर मे रटूं निरतर, दरसण द्यो नन्दलाल।
सो पतिव्रत टरै जिन टारो, मति विसरो नन्दलाल।
कोऊ कहै नन्दो कोऊ कहै बन्दौ, चला भावती चाल।
सो पथ भलि केरो जिन साधो, म्हारो मणि उरमाल।
प्रेम भरी मीरां जिन गरबै, हरि है गिरधर लाल। ॥७२॥†

पदाभिव्यक्ति असगत है। प्रथम पक्ति मे 'रग' के बदले 'गुण' और अन्तिम पक्ति मे 'गरबै' के बदले 'गरजै' का प्रयोग भी मिलता है। अन्तिम पक्ति पद की प्रामाणिकता का विरोध इगित करती है।

४५

गिरधर रूसणूं जी कोन गुनाह।
कछु इक औगुण काढो म्हा मे, म्हे भी काना सुणा।
मैं दासी थारी जनम जनम की, थे साहिब सुगणा[2]।
कांई बात सूं करवी रूसणूं, क्यो दु ख पावो छो मना।
किरपा करि मोहि दरसण दीज्यो, बीते दिवस घणा[3]।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, थारो ही नाव गणा[4] ॥७३॥†

पद के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध मे पूर्वापर सबध का निर्वाह नही हुआ है।

---

१ चरण धोकर, २ गुणयुक्त, ३ बहुत, ४ गिनना, निरन्तर जपना।

४६

सहेल्या उद्धौ जी आया है।
आया पठाया स्याम का, मेरे मन नही भाया है।
एक निमिष के कारणै, षटमास लगाया है।
पहली प्रीत करी हमसूँ, पीछे पछताया है।
जमुना जल मे नहावतां, सषी चीर चुराया है।
कुबज्या दासी कंस की, जिन स्याम चुराया है।
मुरली तो मोहन लई, जिणि स्याम रिझाया है।
देषो सखी सहलियो, नैणा कर ल्याया है।
सुष दुष अपने करम का, गोविन्द वर पाया है।
दोस कुणी को दीजिये, मीराँ गुण गाया है। ॥७४॥ †

उपर्युक्त पद की क्रियाये सभी आधुनिक हिन्दी मे हैं। अत पद का प्रक्षिप्त होना ही युक्ति सगत है।

४७

निजर भर न्हालो नाथ जी, हू तो थारे चरणा री दासी।
मे अबला तुम सबला स्वामी, नही मिलणा कौ टालो रे।
फूंक फूंक पग धरु धरणी पर, मति लगाज्यौ कोई कालौ रे।
आप तो जाइ द्वारिका छाये, हम सूँ दे गया टालौ रे।
बालपने को बालसनेही, प्रीति बचन प्रतिपालौ रे।
च्यारि महिना आयो सियालो[1], च्यारि महिना उन्हियालो[2] रे।
कृपा करि मोहि दरसण दीज्यौ, अब ऋतु आयो बरसालौ रे।
सब जग म्हारी निन्दा करत हैं, कीन्ही मूढो[3] कालौ रे।
सरण तुम्हारी लई सावरा, तुम भी दियो छै म्हासूँ टालौ रे।
म्हारो घर मे भयो अंधेरो, आण करो उजियालौ रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, विरह अगनि मत जालौ रे। ॥७५॥†

पदाभिव्यक्ति मे अर्थ संगति और पूर्वापर सबध का सर्वथा अभाव है।

---

१ जाडे की ऋतु, २ गर्मी की ऋतु, ३ मुख।

४८

राम मिलणरो घणो[1] उमावो,[2] नित उठ जोवूं बाटड़िया[3]।
दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक न पड़त है आखडिया।
तलफत तलफत बहु दिन बीता, पड़ी बिरह की पांशडिया[4]।
अब तो बेगि दया करि साहिब, मैं तो तुम्हारी दासडिया।
नैण दुखी दरसण कूं तरसैं, नाभि बैठे सासडिया।
राति दिवस यह आरत्ति मेरे, कब हरि राखे पासड़िया।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरो मन की आसडिया। ॥७६॥

४९

बसीवारो आयो म्हारो देस, थांरी सावरी सूरत वाली वैस[5]।
आऊ आऊ कर गया सावरा, कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घिस गई अगली, घिस गई अगली की रेख।
मैं वैरागण आदि की, थारे म्हारे कदकी[6] सनेस[7]।
विन पानी बिन उबहनो, हर गई धुर सपेद[8]।
जोगण होई मैं वन वन हेरुं, तेरा न पाया भेस।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, घूंघरवाला केस।
मीराँ प्रभु गिरधर मिल गये, दूणा बढा सनेस। ॥७७॥†

उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति से विरोधाभास ही लक्षित होता है। प्रथम और अन्तिम पक्तियों से आराध्य की समीपता और शेष पदाभिव्यक्ति से विरह ही लक्षित होता है।

पद की चतुर्थ पक्ति मे "वैरागण...... सनेस" सर्वथा विभिन्न पडती है। प्रथम पक्ति के उत्तरार्द्ध में अर्थ सगति का अभाव है। पद की चतुर्थ और छठी पक्ति की अभिव्यक्ति नाथ पथ से प्रभावित है। नाथ पथ और वैष्णव मत का प्रभाव एक साथ एक ही पद मे विचारणीय है।

---

१ बहुत, २ उमग ३ राह देखना, ४ फदा, ५ वयस, ६ कब की, ७ मित्रता स्नेह, परिचय ८ सफेद।

५०

म्हारी सुध ज्यों जाणो ज्यों लीजो जी।
पल पल भीतर पंथ निहारूं, दरसण म्हांने दीजो जी।
मैं तो हू वहु औगण हारी, औगण[1] चित मत दीजो जी।
मैं तो दासी थारे चरण कवल की, मिल विछुरन मत कीजो जी।
मीराँ तो सतगुरु जी सरणे, हरि चरणां चित दीजो जी। ॥७८॥ †

तृतीय पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है।

"मैं तो दासी थारे चरणा जना की, मिल विछुरन मत कीज्यो जी।"

इस पद के विभिन्न वोलियों से प्रभावित कई पाठ मिलते हैं। उपर्युक्त पाठ की भाषा राजस्थानी है।

पाठान्तर १,

सजन, सुध ज्यूं जानै त्यूं लीजै हो।
तुम विन मोरे और न कोई, किरपा रावरी कीजै हो।
दिन नही भूख रैण नही निद्रा, यूँ तन पल पल छीजै हो।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, मिल विछुडन मत कीजै हो।†

'हो' और 'रावरी' जैसे शब्दो के प्रयोग से इस पाठ पर अवधी का प्रभाव प्रतीत होता है। प्रथम पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है।

"ज्यो जानो त्यो लिये सजन, सुधि ज्यो जानो त्यो लीजै।"

पाठान्तर २,

साजन सुधि ज्यो जाणो, त्यो लीज्यौ जी।
म्है तो दासी जनम जनम की, किरपा रावरी कीज्यौ जी।
उठत बैठत जागत सोवत कवहुक, याद करीज्यौ जी।

---

१ अवगुण।

तुम पतिबरता नारी बिना प्रभु, काहो सों न पतीज्यो जी।
साचो प्रेम प्रीत मो नातो, ताही सों तुम रीझ्यौ जी।
राति दिवस ओहि ध्यान तिहारो, आपही दरसन दीज्यौ जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिलि बिछुरन मत कीज्यौ जी।

इस पाठ की भाषा पर ब्रज भाषा का प्रभाव अति स्पष्ट है। प्रथम दो और अन्तिम पक्तियों के सिवा शेष पद अन्य पाठों से सर्वथा भिन्न पडता है। बीच की चार पक्तियों मे अर्थ और पूर्वापर सबध का अभाव है। इस पाठ विशेष से मिलता जुलता एक और निम्नाकित पाठ भी प्राप्त है।

पाठान्तर ३,

ज्यूं जाणो ज्यूं लीज्यो सजन, सुध ज्यूं जाणे ज्यूं लीज्यो।
हूँ तो दासी जनम जनम की, कृपा रावरी कीज्यो।
उठत बैठत जागत सोवत, कबहूँक याद करीज्यो।
आवत जावत जीमत सोवत, सुपणे दरस मोये दीज्यो।
मैं पतिबरता नारी प्रभु जी, काहूँ ते न पतीजों।
साचो प्रेम प्रीत को नातो, ताही ते तुम हरि रीझौ।
रात दिवस मोहि ध्यान तिहारो, आय दरस मोये दीज्यौ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चित चरणां मे लीज्यो।†

पाठान्तर ४,

थे म्हारी सुध ज्यूं जाणूं ज्यूं लीज्यौ।
आप बिना मोहे कछु न सुहावै, वेगो ही दरसण दीज्यो।
मैं मद भागण करम अभागण, ओगण चित मत दीज्यौ।
विरह लगो पल छिन न लगत है, तो तन यूंही छीज्यौ।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, देस्यां प्राणपती ज्यो।

इस पाठ की अन्तिम पक्ति भी सर्वथा भिन्न पड़ती है।
प्रथम पाठ मे सतमत का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है, परन्तु अन्य पाठो मे विरह वेदना ही विशेष तौर से लक्षित होती है।

५१

पिया जी म्हारे नैणा आगे रहज्यो जी।
नैणा आगे रहज्यो जी, म्हांने भूल मत जाज्यो जी।
भौ सागर मे वही जात हूँ, बेग म्हारी सुध लीज्यो जी।
राणो जी भेज्या विष का प्याला, सो इमरित कर दीज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल विछुड़न मत कीज्यो जी।
॥७९॥ †

उपर्युक्त दोनो पदो मे प्राप्त साम्य के आधार पर यह पद भी पद स० ५० का ही गेय रूपान्तर प्रतीत होता है। अन्तिम पक्ति तो हूबहू वही है। अन्य पक्तिया भी विभिन्न पदो मे मिल जा सकती है। गेय परम्परा से प्राप्त पदो मे ऐसे सम्मिश्रण का होना असम्भव नही।[1]

५२

कहो ने जोशी[2] प्यारा, राम मिलण कद होसी।
जो जोशी मोहे प्रभु मिले, तो हीरा जडावूं थारी पोथी।
जो जोशी मोहे प्रभु ना मिले, तो झूठी पडे तेरी पोथी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, राम मिले सुख होसी। ॥८०॥

५३

इतनूं काई छै मिजाज म्हारे मदिर आवता।
थाने इतनूं काई छै मिजाज।
तन मन धन सब अरपण कीनूं, छाडी छै कुल की लाज।
दो कुल त्याग भई वैरागण, आप मिलन की लाग।
मीराँ के प्रभु कवर मिलोगे, कुवज्या आई काई या है। ॥८१॥†

अन्तिम पक्ति का उत्तरार्द्ध अर्थ हीन है। प्रथम दो पक्तियो की अभिव्यक्ति मे समर्पण की वह गहराई नही, जो मीराँ के पदो की विशेषता है।

---

१ देखें 'मीराँ, एक अध्ययन,' २ कुल पुरोहित।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

थे तो पलक उघाडो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कद की खड़ी।
साजनियाँ दुसमण होय बैठ्या, सब ने लगूं कड़ी।
तुम बिन साजन कोई नही है, डिगी नाव मेरी सपद अडी।
वाण विरह का लाग्या हिये में, भूलूं न एक घड़ी।
पत्थर की तो अहल्या तारी, बन के बीच पडी।
कहा बोझ मीरां के कहिए, सौ पर एक घड़ी। ॥८२॥†

कही कही इसी पद के साथ निम्नांकित दो पंक्तियाँ और भी पायी जाती हैं।

'गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुर से कलम भिड़ी।
सतगुरु सैन दई जब आकै, जोत से जोत रली।

पदाभिव्यक्ति स्पष्ट नही है। पूर्वापर सबंध और अर्थ संगति का भी अभाव है। साथ ही प्रथम पंक्ति और शेष पद की अभिव्यक्तियों मे गहरा विरोध भी है। संतमत का प्रभाव विशेष रूपेण लक्षित हो उठता है।

२

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर में जागी री।
तलफत तलफत कल न परत है, विरह आणि उर लागी री।
निस दिन पंथ निहारूँ पीव को, पलक न पल भरी लागी री।
पिव पिव मैं रटूं रातदिन, दूजी सुध बुध भागी री।
विरह भवग[१] मेरो उस्यो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री।
मेरी आरति मेटि गुंसाईं, आई मिलौं मोहि सागी[२] री।
मीरां व्याकुल उकलाणी[३], पिया की उमंग अति लागी री।
॥८३॥

---

१ भुवग-साँप २ स्वयम्, ३ व्याकुल।

३

पिया मोहि दरसण दीजै हो।
वेर वेर मैं टेर हूँ, अहे किरपा कीजै हो।
जेठ महीने जल विना, पछी दुख दई हो।
मोर असाढो कुरल हे, घन चात्रग सोई हो।
सावण में झड लागीयो, सखी तीजा खेले हो।
भादरवे नहिया वहै, दूरि जिन मेलो हो।
देव काती मे पूज है, मेरे तुम होई हो।
मगसर ठंड वहोती पडै, मोहि वेगि सम्हालो हो।
पोस माही पाला घणा, अब ही तुम न्हालो हो।
माह मही वसत पचमी, फागाँ सब गावे हो।
चैत चित मे ऊपजी, दरसण तुम दीजै हो।
वैसाख वणराइ फूलवे, कोइल कुरलीजै हो।
काग उडावता दिन गयाँ, बुझूँ पिडत जोशी हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, दरसण कद होशी हो। ॥८४॥†

मीराँ के नाम पर प्रचलित पदो मे 'बारह मासे' की शैली पर यही एक पद है। इस पद की विशेष आलोचना देखें, 'मीराँ, एक अध्ययन' मे।

४

नीदडली नही आवै सारी रात, किस विध[१] होई परभात।
चमक उठी सुपने सुध भूली, चन्द्रकला न सोहात।
तलफ तलफ जिय जाय हमारो, कवरे मिले दीनानाथ।
भई हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात।
मीराँ कहै बीती सोइ जानै, मरण जीवन उन हाथ। ॥८५॥

१ किस तरह।

५

सइयाँ, तुम बिन नींद न आवै हो ।
पलक पलक मोहि जुग सो बीते, छिनि छिनि विरह जरावै हो ।
प्रीतम विनि तिम जाइ न सजनी, दीपग भवन न भावै हो ।
फूलन सेझा सूल होइ लागी, जागति रैंणि विहावै हो ।
कासे कहूँ कूण मानै मेरी, कह्याँ न को पतियावै हो ।
प्रीतम पनग डस्यौ कर मेरो, लहरि लहरि जिव जावै हो ।
दादुर मोर पपइया बोलै, कोइल सबद सुणावै हो ।
उमगि घटा घन ऊलरि आई, बिजू चमक डरावै हो ।
है कोई जग मे राम सनेही, जै उरि साल[1] मिटावै हो ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, नैणा देख्याँ भावैं हो । ॥८६॥†

पद की नवीं पंक्ति मे प्रयुक्त 'राम सनेही' प्रयोग विशेष विचारणीय है। और भी दो एक पदों मे ऐसा प्रयोग मिलता है। पद की तीसरी पंक्ति 'तिम' शब्द का प्रयोग अर्थहीन सिद्ध होता है। "फूलनसेझ भावै हो" पंक्तियाँ स्वतंत्र पद के रूप मे भी प्रचलित हैं।

६

थे म्हारे घर आवो जी प्रीतम प्यारा ।
चुन चुन कलियाँ मे सेज बनाऊँ, भोजन करूँ मैं सारा ।
तुम सगुणा मैं अवगुणधारी, तुम छो बगसणहारा[2] ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर, तुम विनि नैण दुखियारा । ॥८७॥†

पदाभिव्यक्ति मे संगति का अभाव है।

पाठान्तर १,

घर आवो जी प्रीतम प्यारा ।
तन मन धन सब भेंट करुंगी, भजन करुंगी तुम्हारा ।

---

१ नश्तार करे २ पुरस्कार देने वाले, क्षमा करने वाले ।

तुम गुणवत साहिव कहिये, मो मे ओगण सारा।
मैं निगुणी गुण जाण्यो नाही, तुम छो वगसणहारा।
मीराँ के प्रभु कव रे मिलोगे तुम, विन नैण दुखियारा।†

इस पाठ पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

पाठान्तर २,

म्हारे घर आज्यो प्रीतम प्यारा, तुम विन सव जग खार।
तन मन धन सव भेट करूँ, औ भजन करूँ मैं थारा।
तुम गुणवन्त वडे सुखसागर, मैं हूँ जी औगुणहारा।
मैं निगुणी गुण एकौ नहीं, तुझ में जी गुणसारा।
मीरॉ कहै प्रभु कवहि मिलोगे, विन दरसण दुखियारा।†

पहले पाठान्तर मे इस पाठ का गहरा साम्य है।

पाठान्तर ३,

म्हॉरे डेरे[1] आज्यो जी महराज।
चुणि चुणि कलियाँ सेज विछाई, नख सिख पहर्यो साज।
जनम जनम की दासी तेरी, तुम मेरे सिरताज।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, दरसण दीज्यो आज।†

इस पाठ की अन्तिम पक्ति मे और शेष सभी पाठो की अन्तिम पक्ति मे स्पष्ट अन्तर है। इस अन्तर के वावजूद भी भावाभिव्यक्ति वही है। यह पाठ प्रथम पाठ से ही अधिक साम्य रखता है

७

आई मिलो हमकूँ प्रीतम प्यारे, हमकूँ छाडि भये क्यूँ न्यारे।
वहुत दिनन की वाट निहारू, तेरे ऊपरि तन मन वारूँ

१ निवास स्थान।

तुम दरसण की भी मन माहिं, आई मिलो करि कृपा गुंसाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आई दरस द्यो सुख के सागर।
॥८८॥

८

कभी म्हारे गली आव रे, जिया की तपन बुझाव रे, म्हारे मोहन प्यारे।
तेरे सांवले वदन पर, कोई कोट काम वारे।
तेरी खूबी के दरस पै, नैन तरसते हमारे।
घायल फिरू तडपती, पीड़ जानै नही कोई।
जिस लागी पीड प्रेम की, जिन लाई जान सोई।
जैसे जल के सोखे मीन क्या जीवें विचारे।
कृपा कीजै, दरस दीजै, मीरां नन्द के दुलारे॥ ८९॥†

उपर्युक्त पद की भाषा विचारणीय है। राजस्थानी, व्रज, उर्दू और खडी बोली चारो का ही इसमे सम्मिश्रण हुआ है, जैसा कि शायद ही किसी अन्य पद मे हुआ हो। साथ ही, 'मीरां नन्द के दुलारे' जैसा प्रयोग भी इस पद की विशेषता है।

'वृहद्राग रत्नाकर' मे एक ऐसा ही पद 'मीर माधो' के नाम पर भी मिलता है।

'कभी गली हमारी आव रे, मोरे जिया की तपन बुझाव रे,
नन्दजू के मोहन प्यारे लाला।
तेरे सावरे बदन पै कई कोटि काम वारे,
तेरिया जुल्फा दिलदिया कुलफा जी, दोऊ नैन है सतारे।
तेरे खूबी के दरस पै लाल, नयन तरसते हमारे।
पिया पिया करै पपीहरा रे, निसि दिन सो याद तेरी।
मेरे सावले सलोने मोहन, आसा दर्शन केरी।
घायल फिरूँ दरसण को, पीर जानै नही कोई।
मोहि लागी चोट प्रेम की, जिन लाई जानै सोई।

जैसे जल के सोखे हुए मीन क्या जीवे विचारे।
कृपा कीजो दरसण दीजो, मीर माधो नन्द दुलारे।
(पद ४६९, पृष्ठ १२०)

मीराँ के पद सभी गेय परम्परा से प्राप्त हैं। अत. परिस्थिति देखते उपर्युक्त पद को 'मीर माधो' के पद का ही गेय रूपान्तर मानना अयुक्तियुक्त न होगा।

९

घर आवो जी साजन मिठबोला[1] ।
तेरे खातर सब कुछ छोडा, काजर तेल तमोला।
जो नहिं आवै रैण विहावै, छिन मासा छिन तोला।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कर धर रही कपोला ॥९०॥

इस पद से गहरा साम्य रखता हुआ एक पद सं० ३३ राजस्थानी में भी पाया जाता है।

१०

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्या सामा।
तुम मिलिया मैं बहुत सुख पाऊ, सरै[2] मनोरथ कामा।
तुम बिच हम बिच अतर नाही, जैसे सूरज घामा।
मीराँ मन के और न मानै, चाहे सुन्दर स्यामा ॥ ९१ ॥

११

उड जा रे कागा बनका, मेरा स्याम गया वोहो दिन कारी।
तेरे उडास्यूं राम मिलेगा, धोखा भागे मन का रे।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, हरि है गाढ़े दिलका रे।

---

१ मधुर भाषी २ पूर्ण हो ।

घर आवो स्याम मोरे, मैं तो लागूं पाय तोरे।
मीराँ को सरण लीजिये, वलि वलि हारिये। ॥९५॥

१५

साँइया, सुण जो अरज हमारो।
मया[1] करो महल्यां पग धारो, मैं खानाजाद तुम्हारी।
तुम बिन प्राण दुखी दुख मोचन, सुधि बुधि सबै बिसारी।
तलफ तलफ उठि उठि मग जोऊ, भई व्याकुलता भारी।
सेज यूँ लागी प्राण कूँ, निस भुजग भई भारी।
दुहूँ दिसि लागी, विरहिन जरत विचारी।
अजहूँ नही आये, विलम्बे कहा मुरारी।
दरसन दीजो, तुम साहेब हम नारी ॥९६॥

१६

री सुणजो अरज म्हाराज।
बल नाहि गुसाई, राखो अबके लाज।
होइ के कणी रे जाऊ, है हरि हिवड़ारो साज।
वपु हरि देत सधार्‍यो, साद्यो देवन के काज।
के प्रभु और न कोई, तुम मेरे सिरताज। ॥९७॥

[1] तृतीय पक्ति अर्थहीन है। इस पंक्ति का शेष पद से भी नही बैठता।

१७

आई मेरी हियो लरजे, है मा।
री कारी, बिजरी चमकै, सेज चढता[1] जिया डरपै,
हे मा।

आप तो जाय विदेसा छाये, हम वासी मधुवन का रे।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, चरण कँवल हरिजन का रे ॥९२॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है।

१२

गोविन्द, कबहूँ मिलै पिया मोरा।
चरण कँवल कूँ हँसि हँसि देखूं, राखूं नैणा नेरा[1]।
निरखण कूँ मोहि चाव घणेरो, कब देखूं मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत न धीरज, मिलि तू नित सवेरा[2]।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, ताप तपन बहुलेरा ॥ ९३ ॥

पदाभिव्यक्ति से 'गोविन्द' और 'पिया' की दो विभिन्न हस्तियाँ स्पष्ट हो उठती है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और विचारणीय प्रश्न है।

१३

भीजै म्हांरो दावण चीर, सावणियो लूम रहियो के।
आप तो जाय विदेसांछाये, जिवणो धरत न धीर।
लिख लिख पतियां सदेशा भेजूं, कब घर आवै म्हांरो पीव।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, दरसन द्यो नै बलवीर ॥९४॥

१४

म्हांरे घर आओ, स्याम, गोठड़ी[3] कराइये।
आनन्द उछाव करूँ, तन मन भेंट धरूँ।
मैं तो हूँ तुम्हारी दासी, तौ कूँ तो चितारियो।
गिगन[4] गरजि आयो, बदरा बरसे भायो।
सारग सबद सुनि बिहल पुकारिये।

१ पास नजदीक २ शीघ्र ३ गोष्ठी, ४ गगन, आकाश।

घर आवो स्याम मोरे, मैं तो लागूं पांय तोरे।
मीराँ को सरण लीजिये, बलि बलि हारिये। ॥९५॥

१५

सांइया, सुण जो अरज हमारो।
मया[1] करो महल्या पग धारो, मैं खानाजाद तुम्हारी।
तुम विन प्राण दुखी दुख मोचन, सुधि बुधि सबै बिसारी।
तलफ तलफ उठि उठि मग जोऊ, भई व्याकुलता भारी।
सेज सिंघ ज्यूं लागी प्राण कूं, निस भुजग भई भारी।
दीपग मनहूं दुहूं दिसि लागी, विरहिन जरत विचारी।
जब के गये अजहूं नही आये, विलम्बे कहा मुरारी।
मीराँ के प्रभु दरसन दीजो, तुम साहेब हम नारी॥९६॥

१६

हरि म्हारी सुणजो अरज म्हाराज।
मैं अवला वल नाहि गुसाईं, राखो अबके लाज।
रावरी होइ के कणी रे जाऊ, है हरि हिवडारो साज।
हम को वपु हरि देत सघार्‌यो, साद्यो देवन के काज।
मीराँ के प्रभु और न कोई, तुम मेरे सिरताज। ॥९७॥

पद की तृतीय पक्ति अर्थहीन है। इस पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबध भी नही वैठता।

१७

कैसी रितु आई मेरी हियो लरजे, है मा।
निस अंधियारी कारी, विजरी चमकै, सेज चढ़ता[2] जिया डरपै,
हे मा।

---

१ दया, २ चढते हुये।

नान्ही बूंदन मेहा बरसै, ऊपर से सुरपति गरजै, हे मा।
सूनी सेज स्याम बिन लागत, कूक उठी पिया पिया करि के, हे मा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मोय[1] विधाता क्यूँ सरजी[2], हे मा।
॥९८॥

९८

एसी ऐसी चादनी मे पिया घर नाई।
चार पहर दिन सोवत बीत्या, तडपत रैन बिहाई।
मै सूती पिया अपने महल मे, खालूडा[3] मे आई सरदाई[4]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरख निरख गुण गाई ॥९९॥†

पद मे पूर्वापर संबध का सर्वथा अभाव है। पद की तीसरी पक्ति सर्वथा अर्थहीन है। अभिव्यक्ति मे भी कोई गम्भीरता नही। ऐसे पदो को प्रक्षिप्त मान लेना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

९९

मोसी दुखियाँ कूँ, लोग सुखिया कहत हैं।
ऐसो री अड़ीलो कंथ, दियो है विधाता मोकूँ।
सेजहूँ न आवे प्यारो, न्यारो ही रहत है।
तारा तो अंगारा भया, सेज भई भापा सी।
पिया को पिलगूं मानो, आगि जूं रहत है।
जारे वारे पाप मे तो, भीतर बेहाल भई।
विरह की करवत, मेरे हिया में बहत है।
द्यौस[5] तो यूँ ही गयो, रैनिहू बिहानी है।
मीराँ तो बेहाल भई, दरस कूँ चहात है। ॥१००॥ †

१ मुझको २ सृजन किया बनाया, ३ समय, ४ ठंड, ५ दिन,

ऐसे पदो को प्रक्षिप्त ही मान लेना युक्ति संगत प्रतीत होता है, क्योकि इसकी अभिव्यक्ति मे वह भाव भाषा का गाम्भीर्य नही, जो मीराँके पदो की विशेषता है। इसम क्रिया-पद विशेष विचारणीय है।

२०

रसभरिया म्हाराज मोकूँ, आप सुनाई वाँसुरी।
सुनत वाँसुरी भइ वावरी, निकसन लग्या साँस री।
रकतर रती भर ना रह्योरी, नही मासा भर माँस री।
तन तिनकासो है गयो री, रही निगोरी साँस री।
मै जमुना जल भरन जात ही, सास नन्द की भास री।
मीराँ कूँ प्रभु गिरिधर मिल गयो,पूजो मनकी आस री॥१०१॥†

अभिव्यक्ति के आधार पर पद की प्रामाणिकता सर्वथा सदिग्ध है।

२१

प्यारी हट माँड्यो[1] माँझल[2] रात।
कब की ठाढी अरज करत हूँ, होई जासी परभात।
तलफत तलफत बोहो दिन बीते, कबहूँ न बूझी बात।
जब के गए म्हारी सुध नाहि लीनी, तुम विन फीको म्हारो गात।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, कर मीडत पछितात॥१०२॥†

उपर्युक्त पद के *विषय मे श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी लिखते* है, "पूर्वापर असवद्ध सा ज्ञात होता है। यदि "प्यारी" के स्थान पर "प्यारा" होता तो असवद्ध नही था।"

मेरे विचार मे पद की पूर्वापर असवद्धता हर हालत मे बनी रहती है, क्योकि प्रथम दो पक्तियो से मिलन और शेष पद से वियोग ही लक्षित होता है। ऐसे पदो को प्रामाणिक सग्रह मे स्थान न मिलना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

---

१ किया, २ बीच।

२२

लाग रही ओसेर[1] कान्हा, तेरी लाग रही ओसेर।
दरसण दीजे, कृपा कीजे, कहाँ लगाई वेर ।
दिन में नही चैन, रैन नही निद्रा, विरह विथा लई घेर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सुण जो म्हारी टेर। ॥१०३॥

२३

माधो बिन बसती उजार मेरे भावे[2]।
एक समै मोतियन के धोके, हसा चुगत जुवार ।
सरवर छाँड़ तलैया बैठे, पख लपट रही गार।
सरवर सूक तरवर कुम्हलाये, हसा चले उड़ार ।
मीराँ के प्रभु मिलोगे, लाम्बी भुजा पसार॥१०४॥†

पदाभिव्यक्ति अर्थहीन और असगत है।

२४

दासी म्हारा मारुड़ा मारु[3] जी से कहना ।
मोय नीद न आवै नैना ।
जे मेरा गोविन्द दूर वसत है, मोय सदेशो देना।
जे मेरा गोविन्द गली देखे, सनक[4] सनक सुन लेना।
जे मेरा गोविन्द वैन[5] बजावे, प्रेम मगन होय कहना।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल चित देना॥१०५॥†

श्री सूर्यनारायण चतुर्वेदी जी इस पद के विषय में लिखते हैं, "मारुडा" के स्थान में स्यात् "भुजरा" होगा। लिपि दोष से अथवा अन्य किसी दोष से अपभ्र श हुआ ज्ञात होता है।"

---

१ हमेर, याद, २ लगती है, ३ पति, ४ पंर्य महित, ५ वेणु।

श्री चतुर्वेदी जी का कहना बहुत यथार्थ प्रतीत होता है, क्योकि "मारु" और "मारुड़ा" दोनो एक ही शब्द है। "मारुड़ा" कोई स्वतंत्र शब्द न होकर "मारु" का ही रूपान्तर मात्र है। अपने बुजुर्गो या अन्य किसी भी विशेष सम्मानित व्यक्ति के प्रति 'मुजरौ'" विनम्रता पूर्वक नमस्कार के अर्थ मे आज भी प्रयुक्त होता है।

२५

तुम हयाँ ही रहो राम रसियाँ, थांरी सॉवरी सूरत में मन वसिया।
क्याने तो राम जी घोड़ा सिणगारो, क्या ने पाथर कसिया।
चुण चुण कलियाँ सेज सँवारु, ओर गादी तकिया।
बोहोत दिना की पंथ निहारूँ, तुम आया रग रन्चिया।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चरण कमल मन वसिया। ॥१०६॥†

पदाभिव्यक्ति असंगत है।

२६

नेहा समद विच नाव लगी है, वाल न लगत वही जात अकेली।
लाज को लगर छूटि गयो है, वही जात बिन दाम की चेरी।
मलहन कर से छाड दई है, आस वडी गोपाल ज्यो तेरी।
अव के नाम लगावो नातर, लोग हँसेगे बजा के हतेरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मेरी सुध लीज्यो प्रभु आन सवेरी ॥१०७॥†

पदाभिव्यक्ति असगत है। प्रथम पक्ति मे 'वाल' के स्थान पर सम्भवत 'पाल' शब्द हो।

२७

माई म्हाने मोहन मित्र मिलाय, मोहन मित्र मिलाय।
रसियो है उर अतर वसियो, या विनु कछु न सुहाय।
पातलियो[1] सावरियो लोभी, राखूं कठ लगाय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तन की तपत वुझाय। ॥१०८॥

---

१ सुगठित शरीरवाला।

२८

मे खड़ी निहारूं बाट, चितवन चोट कलेजे बह गई, सुन्दर स्याम सूँ घाट।
मथुरा में कुबज्या कर राखी, महाजन की सी हाट।
केसर चदन लेपन कीन्हो, मोहन तिलक ललाट।
हमारा पिलग जड़ाऊ छोड्या, बणिया[1] रेशमी पीली पाट।
क्याँ पर राजी भयो साँवरो, चेरी के नही खाट।
अजहूँ न आयो कँवर नन्द को, क्यॉरी लागी चाट।
छाड गयो मरुधार साँवरो, बिन अकल को जाट[2]।
आप बिना गोपी सब ब्रज की, व्याकुल भई निराट।
मीराँ के प्रभु गोपी दरसन दीज्यो, करज्यो आनन्द ठाट। ॥१०९॥†

२९

उधो, म्हारे मन की मन मे रही।
एक समै मोहन घर आये, मैं दधि मथत रही।
या दुनियाँ को झूठो धधो, मैं हरि को बिसर गई।
वा कपटी की का कहूँ, उधो वचन प्रतीत नही।
नैन हमारे ऐसे झूरे, उलटी गग बही।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, बीच में जमुना बही।
आप मोहन जो पार उतर गया, हम सै कछु ना कही।
ब्रज वनिता को सग छाडि कै, कुबज्याँ सग लई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर अविनासी, चरणा लिपट रही। ॥११०॥

अभिव्यक्ति असगत और अर्थहीन है।

३०

तुम आवो हो कृपा निधान बेग ही।
मेरे मदिर आये प्रभु निकसे, कदी[3] महलहूँ न आये मैं दीदार देख री।

१ बना हुआ, २ राजस्थान की स्थानीय जाति विशेष, जो परिश्रम और सत्यता के लिये प्रसिद्ध होते हुए भी सर्वथा बुद्धिहीन मानी जाती है। ३ कभी।

मेरे मदिर आये प्रभु निकसि क्यूँ गये, दीन के दयाली कठोर क्यूँ भये।
दीपक मेरे हाथ लियाँ वाट जोवती, राम हूँ न आये सारी रैण रोवती।
पिया के दरस विन फिरुं डोलती, मीराँ तो तुम्हारी दासी राम वोलती।
॥१११॥†

पदाभिव्यक्ति सर्वथा असंगत है। कही कही द्वितीय पंक्ति मे 'कदी' शब्द के वदले 'देख ही' और अन्तिम पक्ति में "डोलती' शब्द के वदले 'झूरती' का प्रयोग भी मिलता है।

३१

होली पिया विन मोहि न भावै, घर आँगण न सुहावै।
दीपक जोय[1] कहा करुं सजनी, पिय परदेस रहावै।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सुमक सुसक जिय जावै।
नीद नही आवै।
कव की ठाढी मै मग जोऊँ, निस दिन विरह सतावै।
कहा कहूं कुछ कहत न आवै, हिवडा अति अकुलावै।
पिया कव दरस दिखावै।
ऐसा है कोई परम सनेही, तुरन्त सन्देशो ल्यावै।
वा विरियाँ[2] कद[3] होसी, मोकूँ हस करि निकट बुलावै।
मीरा मिल होली गावै। ॥११२॥

प्रथम पति मे प्रयुक्त 'पिया' शब्द के वदले "हरी' शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

३२

किण सग खेलूं होली, पिया तजि गए है अकेली।
माणिक मोती हम सव छोड़े, गले में पहनी सेली।

---

१ जलाकर, २ समय, ३ कव,

मुझे दूर क्यूं मेली[1]।
अब तुम प्रीत और सूं जोड़ी, हम से क्यूं करो पहेली।
बहु दिन बीते अजहूँ न आए, लग रही तालामेली[2]।
किण विलाय[3] हेली।
स्याम बिन जिवड़ो मुरझावै, जैसे जल बिन वेली।
मीराँ कूं प्रभु दरसण दीजो, जनम जनम की चेली।
दरस बिन खडी दुहेली[4]। ॥११३॥

पदाभिव्यक्ति से नाथ पंथ का प्रभाव स्पष्ट होता है। "सेली' नाथ पथी जोगियो के ही मुख्य चिन्हो मे से एक है। अन्तिम पक्ति से व्यक्त होली परित्यक्ता (दुहेली) की भावना अन्य राजस्थानी के पदो मे भी मिलती है। यह विचारणीय है।

३३

इक अरज सुनो मोरी, मैं किन सग खेलूं होरी।
तुम तो जॉय विदेसा छाये, हम से रहे चित चोरी।
तन आभूषण छोड़यो सब ही, तज दियो पाट पटोरी[5]।
मिलन की लग रही डोरी।
आप मिल्या बिन कल न परत है, त्याग दियो तिलक तमोली।
मीराँ के प्रभु मिलज्यो माधव, सुणज्यो अरज मोरी।
दरस विन विरहणी दोरी[6]। ॥११४॥

उपर्युक्त दोनो पद में भाव-साम्य स्पष्ट है, यद्यपि पूर्व पद की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव कुछ विशेष है।

३४

होली पिया बिन, मोहि लागे खारी, सुनो री सखी मोरी प्यारी।
सूनो गाँव देस सब सूनी, सूनी सेज अटारी।

---

१ करदी, २ बेचैनी, ३ भुलाए, ४ परित्यक्ता, ५ साज शृंगार, ६ दुखी।

सूनी विरहन पिव विन डोलै, तज दई पिव प्यारी।
भई हूँ या दु.ख कारी।
देस बिदेस सदेस न पहुँचे, होइ अदेशा भारी।
गिणता घिस गई, रेख आँगलियाँ की सारी।
अजहूँ न आये मुरारी।
बाजत झाँझ मृदंग मुरलिया, बाज रही हकतारी।
आयो वसंत कत घर नाही, तन में जर भया भारी।
स्याम मन कहा विचारी।
अब तो मेहर[१] करो मुझ ऊपर, चित है सुनो हमारी।
मीराँ के प्रभु मिलि गयो माधो, जनम जनम की कुआरी।
लगी दरसण की तारी। ॥११५॥†

इस पद में विरोधाभास है। होली के बाद ही वसत का साथ ही साथ वर्णन है। पद की बारहवी पक्ति मे मिलन की अभिव्यक्ति है जो कि शेष पदाभिव्यक्ति से सर्वथा भिन्न पड़ती है।

होली वर्णन के उपर्युक्त चारो पद मीराँ के शेष सभी पदो से सर्वथा भिन्न पडते हैं। इन की शैली भी सर्वथा भिन्न है। इनकी भाषा प्रमुखत ब्रजभाषा होते हुए भी राजस्थानी से प्रभावित है। इनमे प्रयुक्त जो कुछ राजस्थानी शब्द आये हे, वह ठेठ राजस्थानी के हैं। शुद्ध ब्रजभाषा और ठेठ राजस्थानी का यह सम्मिश्रण विचारणीय है।

पद स० ३३ और ३४ मे टेक मे 'माधो' का प्रयोग एक और विचारणीय प्रश्न है। मीराँ के पदो की परम्परा मे यह सर्वथा नूतन है। बहुत सम्भव है कि ये पद किसी अन्य कवि के हो। 'मीर माधो' नामक कवि के पदो से मीराँ के पदो का सम्मिश्रण हुआ भी है। देखे पद स० ८।

---

१ कृपा।

व्रजभाषा में प्राप्त पद

१

मैं तो चरण लगी गोपाल।
जब लागी तब कोऊ न जाने, अब जानी ससार।
किरपा कीजै, दरसण दीजै, सुध लीजै तत्काल।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहार ॥११६॥

पद की द्वितीय पंक्ति से व्यक्त होती भावना विशेष विचारणीय है।

२

आलीरी मोरे नैनन बान पड़ी।
चित चढी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अडी।
कब की ठाढी पथ निहारूँ, अपने भवन खडी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवन भूल जड़ी।
मीराँ गिरिधर हाथ बिकानी, लोग कहै बिगड़ी ॥ ११७ ॥

इस पाठ मे पहली पक्ति का निम्नांकित पाठान्तर भी मिलता है।
"नैणा मोरे बाण पडी, माई, मोहि दरस दिखाई"।

३

माई, मेरे नैनन बान पड़ी री।
जा दिन नैना श्यामहिं देख्यो, बिसरत नाहिं घरी री।
चित बस गई सांवरी सूरत, उर तें नाहिं टरी री।
मीराँ हरि के हाथ बिकानी, सरबस है निबरी री ॥ ११८ ॥

४

नैन परि गई ऐसी बानि।
नेक निहारत पिया जू के मुख तन धुरि गई कुलकानि।
राणाजी विषरो प्यालो भेज्यो, मैं सिर लीनी मानि।
मीराँ के गिरिधर मिले हो, पुरवली[1] पहिचानि ॥११९॥

५

नैणा री हो पड गई बांण।
बार बार निरखूं मुख सोभा, छूट गई कुलकाण[2]।
कोई भला कहो, कोई बुरा कहो, मैं सिर लीनी ताण[3]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पुरवली पिछाण[4] ॥१२०॥

एक ही भाव के द्योतक उपर्युक्त चारो पद विशेष विचारणीय है। सभी पदो की प्रथम पक्ति मे भाव सर्वथा एक है और भाषा भी लगभग एक ही है। शेष पद मे विभिन्न भावनाओ और घटनाओं का वर्णन है तथापि "लोक लाज" और "कुल कानि" के उल्लघन की अभिव्यक्ति सभी पदों मे प्राप्त है। पहले दो पद (स० ३ और ४) की भाषा शुद्ध राजस्थानी है। इनकी अभिव्यक्ति भावना-द्योतक है। तीसरे पद (स० ५) की अन्तिम पक्तियो पर राजस्थानी का प्रभाव है। इन पक्तियो मे राणा द्वारा विष भेजे जाने की भी अभिव्यक्ति है। इसको देखते बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि विष दिए जाने की कथा का राजस्थान में ही अधिक प्रचार रहा हो। पद स० ५ की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव कुछ विशेष स्पष्ट है। यह पद पद स० ४ का रूपान्तर-सा प्रतीत होता है। वस्तुत ये चारो ही पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर-से प्रतीत होते हैं।

६

जब के तुम बिछुडे प्रभु जी कबहूँ न पायो चैन।
ब्रिह बिथा कासूं कहूँ सजनी, कवन आवै अैन।

१ पूर्व जन्म की, २ कुल की मर्यादा, ३ चढा लिया, ४ परिचय।

एक टगटगी पिया पथ निहारूँ, भई छै मासी रैन।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दुख मेलण सुख देश ॥१२१॥

अन्तिम पक्ति मे 'मेलण' शब्द के स्थान पर 'मेटण' शब्द की अर्थ सगति ठीक बैठती है।

७

मै जाण्यो नही प्रभु को मिलन कैसे होय री।
आए मोरे सजना, फिरी गए अंगना, मै अभागण रही सोय री।
फारुंगी चीर करुँ गलकथा, रहूँगी वैरागण होय री।
चुड़िया फोरुँ माग बिखेरु, कजरा मै डारुँ धोय री।
निसि वासर मोहि विरह सतावै, कल न परत पल मोय री।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुड़ी मत कोई री।
॥१२२॥

इस पद मे ब्रजभाषा और खडी बोली का अजीब सम्मिश्रण हुआ है। पद की तीसरी और चौथी पक्तियो पर खड़ी बोली का प्रभाव विशेष स्पष्ट है। यह भी एक विचारणीय पहलू है कि इन दोनो ही पक्तियो की अभिव्यक्ति नाथ परम्परा के प्रभाव की द्योतक है। अन्तिम पक्ति से व्यक्त होती भावना 'मिलि बिछुडन मत कीज्यो' प्राय. इन्ही शब्दो मे अन्य पदो मे भी मिल जाती है।

'बृहद्राग रत्नाकर' मे 'लच्छीराम' नामक किसी सत का निम्नाकित एक पद मिलता है। इन दोनो पदो मे भाव और भाषा का गहरा साम्य है। बहुत सम्भव है कि निम्नाकित पद ही कुछ घट बढ और हेर फेर के साथ मीराँ के नाम पर चल पड़ा हो।

नीद नोहि बेचूंगी आली, जो कोई गाहक होय।
आए मोहन फिरि गए अगना, मै वैरन रही सोय।
कहा करुँ कछु वश न मेरो, आयो धन दियो खोय।
लछीराम प्रभु अबके मिले तो, राखूंगी नैन समोय।
—पृष्ठ ७९, पद २९२।

८

सखी मोरी नीद नसानी हो।
पिया को पंथ निहारते, सब रैण विहानी हो।
सखियन मिलि कँ सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिन देखे कल ना परे, जिय ऐसी ठानी हो।
अग छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो।
ज्यो चातक घन को रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, सुध सुध बिसरानी हो ॥१२३॥

पदाभिव्यक्ति से पश्चाताप की भावना ही प्रकट होती है। ऐसी अभिव्यक्ति राजस्थानी के कुछ पदो मे भी पायी जाती है।

९

पलक न लागै मेरी स्याम विन।
हरि बिन मथुरा ऐसी लागे, शशि बिन रैन अधेरी।
पात पात वृन्दावन ढूँढ्यो, कुज कुज ब्रज केरी।
ऊँचे खडे मथुरा नगरी, तले बहै जमुना गहरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणन की चेरी ॥१२४॥

पद की तीसरी पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबन्ध नही बैठता ।

१०

नीद नही आवे जी सारी रात।
करवट लेकर सेज टटोलूं, पिया नही मेरे साथ।
सगरी रैन मोहे तरफ्त बीती, सोच सोच जिया जात।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आज भयो परभात ॥१२५॥

११

मैं विरहणी बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली।
विरहणी बैठी रंग महल में, मोतियन की लड़ पोवै।
इक विरहणी हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिन गिन रैण विहानी, सुख की घडी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल के बिछुड़ न जावै।
॥१२६॥

१२

दरस बिन दूखण लागै नैण।
अब के तुम बिछुरे प्रभुजी, कबहूँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे बैन।
विरह् विथा कासूं कहूँ सजनी, वह् गई करवत अैन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण। ॥१२७॥

पद की तीसरी और पाचवी पक्तियो का निम्नांकित पाठान्तर पाया जाता है।

तीसरी पक्ति—"सबद सुणत मेरी छतिया कम्पे, मीठे लागै तुम बैन"

या

"सबद सुणत मेरी छतिया कम्पै, मीठे लागै बैन"।

और

पाचवी पक्ति—"एकटकी पथ निहारुँ, भई छमासी रैन।"

१३

जोहन गोपाल फिरुँ, ऐसी आवत मन मे
अवलोकत बारिज बदन, बिबस भई तन म।
मुरली कर लकुट लेऊँ, पीत बसन धारुँ।
पछी गोप भेप मुकुट, गो धन सग चारुँ।

हम भई गुल काम लता, वृन्दावन रैना।
पसु पछी मरकर मुनी, श्रवण सुणत वैना।
गुरुजन कठिन कानि, कासो री कहिये।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिलि, ऐसे ही रहिये। ॥१२८॥†

पद की छठी और अन्तिम पक्तियो का अर्थ स्पष्ट नही होता। अन्तिम पक्ति की अभिव्यक्ति से मिलन की ही भावना लक्षित होती है जबकि शेष पद से वियोग भावना ही स्पष्ट हो उठती है।

आराध्य के अनुकूल वैष्णव परम्परा प्रभावित वेश भूषा को स्वीकार कर लेने की अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है।

१४

हो गए श्याम दूइज के चन्दा।
मधुबन जाइ भये मधुबनिया, हम पर डारो प्रेम का फदा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, अब तो नेह परो मदा। ॥१२९॥

इस पद से व्यक्त होती भावना 'अब तो नेह परो मदा' अन्य वियोग द्योतक और नाथ परम्परा प्रभावित पदो मे भी मिलती है। नाथ परम्परा प्रभावित पदो मे यह भावना बहुत ही स्पष्ट है।

१५

कान्हा तेरी रे जोवत रह गई बाट।
जोवत जोवत इक पग ठारी, कालिन्दी के घाट।
कपटी प्रीत करी मनमोहन, या कपटी की बात।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, दे गयो व्रज चाट। ॥१३०॥

१६

अखिया कृष्ण मिलन की प्यासी।
आप तो जाय द्वारिका छाये, लोक करत मेरी हाँसी।

आम की डार कोयलिया बोलैं, बोलत सब्द उदासी।
मेरे तो मन ऐसी आवे, करवत लेहो कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर लाल, चरण कँवल की उदासी ॥१३१॥†

पद की प्रथम पक्ति सूरदास के पद से हू बहू मिलती है। अन्तिम पक्ति में प्रयुक्त 'उदासी' प्रयोग विचारणीय है।

१७

मन हमारा बांध्यो भाई, कँवल नैन अपनें गुन।
तीषण तीर बेध शरीर, दूरि गयो भाई, लाग्यो तब।
जाण्यो नाही, अब न सह्यो जाई री भाई।
तत मंत औषद कर तक परि न जाई, है कोऊ।
उपकार करै, कठिन दर्द री भाई।
निकटि हों तुम दूरि नाहि, बेगि मिलो आई, मीराँ।
गिरधर स्वामी दयाल, तनकी तपति बुझाई रे भाई।
कमल नैन अपने गुन बाध्यो भाई ॥१३२॥†

श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी से मिला यह पद "ग्रथ साहिब, भाई बन्द की बीड" से उद्धृत है।

पद की दूसरी, चौथी और छठी पक्तियों का अन्तिम हिस्सा क्रमशः तीसरी पाँचवी और सातवी के प्रारम्भ में लगा कर पढने से अर्थ संगति ठीक से बैठ जाती है, अन्यथा नही।

१८

बिरहनी बावरी सी भई।
ऊँची चढ चढ अपने भवन में टेरत हाय दई।
ले अंचरा मुख अंसुवन पोछत उघरे गात सही।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बिछुरत कछु ना कही ॥१३३॥

'बिछुरत कछु ना कही' जैसी अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है।

१९

हरि तुम काय कूं प्रीति लगाई।
प्रीति लगाई परम दुख दीयो, कैसी लाज न आई।
गोकुल छाँड़ि मथुरा के जयुँवा में कोण वड़ाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम कूं नन्द दुहाई॥१३४॥

२०

पिया इतनी विनती सुनो मोरी, कोई कहियो रे जाय।
और न सूं रस वतियाँ करत हो, हम से रहे चित चोरी।
तुम विन मेरे और न कोई, मैं सरनागत तोरी।
आवन कह गए अजहूँ न आये, दिवस रहे अव थोरी।
मीराँ के प्रभु कव रे मिलोगे, अरज करुँ करजोरी॥१३५॥

'दिवस रहे अव थोरी' जैसी अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है। "आवन कह गए अजहूं न आए" पदाभिव्यक्ति कई अन्य पदों में भी मिलती है। ऐसे कुछ पदों मे अवधि सूचक 'पेडर पलटिया काला केस" जैसी अभिव्यक्ति भी मिलती है, परन्तु उपर्युक्त भावना किसी भी अन्य पद मे प्राप्त नही।

२१

देखो साइंया, हरि मन काठ कियो।
आवन कहि गयो, अजहू न आयो, करि करि वचन गयो।
खान पान सुध वुध सव विसरी, कैसि करि मैं जियो
वचन तुम्हारे तुम्ही विसरे, मन मेरो हर लियो।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, तुम विन फाटत हियो॥१३६॥

२२

पिया कूं वता दे मेरे, तेरा गुण मानूंगी।
खान पान मोहि फीको सो लागै, नैन रहे दोय छाय।

वार वार मैं अरज करत हूँ, रैण दिन जाय।
मीराँ के प्रभु वेग मिलोगे, तरस तरस जिय जाय ॥१३७॥†

२३

पिया जी थे तो कटारी मारी।
जिन को पिव परदेस बसत है, सो क्यूँ सोवै न्यासी।
.... नही भावत, आकूँ सदा देहारी।
जैसे भवगत जत काँचरी, सो गत भई है हमारी।
विन दरसण कल न परत है, तुम हम दिये बिसारी।
मीराँ के प्रभु तुम्हरे मिलन कूँ, चरण कमल पर वारी ॥१३८॥†

पदाभिव्यक्ति में सगति का अभाव है।

२४

सोवत ही पलको मे मैं तो,पलक लागी पल मे पिऊ आये।
मै जु उठी प्रभु आदर देण कूँ,जाग परी पिव ढूँढ न पाये। '
और सखी पिव सूत गमाये,मैं जु सखी पिव जागी गमाये।
आज की बात कहा कहूँ सजनी,सुपना मे हरि लेत बुलाये।
वस्तु एक जब प्रेम की पकरी,अजि भये सखि मन से भाये।
वो म्हारो सुने अरु गुनि है, बाजे अधिक बजाये।
मीराँ कहै सत्त कर मानो, भक्ति मुक्ति फल पाये ॥१३९॥†

स्वप्नानुभूति का ऐसा वर्णन इस पद की विशेषता है। पद की छठी पंक्ति का अर्थ अस्पष्ट है।

२५

स्याम को सदेसो आयो, पतियाँ लिखाय माय।
पतियाँ अनूप आई, छतियाँ लगाय लीनी।
अचल की दे दे ओट, ऊधो पै बधाई है।

वाल की जटा वनाऊँ, अंग तो भभूत लाऊँ।
फाड़ूँ चीर करुँ गलकंथा, जोगिन बन जावूंगी।
इन्द्र के नगारे वाजे, वदल की फौज आई।
तोपखाना पैसखाना उतरा आया वाग में।
मथुरा उजार कीन्ही गोकुल वसाय लीन्ही।
कुब्जा सो वाध्यो हेत, मीराँ गाय सुनाई है॥१४०॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध का सर्वथा अभाव है तथा प्राय. त्रिया पद सभी आधुनिक हिन्दी मे है।

२६

मेरे प्रीतम रामकूँ लिख भेजूँ री पाती।
स्याम सदेशो कवहूं न दीन्हो, जानि वूझि गुझवाती।
डगर बुहारुँ पथ निहारुँ, रोय रोय अँखियाँ राती।
तुम देख्याँ विन कल न परत है, हियो फाटत मेरी छाती।
मीराँ के प्रभु कवर मिलोगे, पूरव जनम का साथी॥१४१॥

२७

मतवारो वादर आए रे, हरि को सदेशो कछु नही लाए रे।
दादुर मोर पपइया बोले, कोयल सवद सुनाए रे।
कारी अंधियारी बिजरी चमकै, विरहिन अति डरपाये रे।
गाजै वाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड लाए रे।
कारी नाग बिरह अति जारे, मीराँ मन हरि भाए रे॥१४२॥

२८

वादल देखि झरी हो स्याम, वादल देखि झरी।
काली पीली घटा उमगी, वरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी ही पाणी, हुई सब भोम हरी।
जाकाँ पिया परदेस वसत है, भीजूँ वाहर खरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कीज्यो प्रीत खरी॥१४३॥

प्रथम पक्ति मे "झरी" प्रयोग के वदले "डरी' प्रयोग भी मिलता है।

२९

सावण दे रह्यो जोरा रे, घर आओ जो स्याम मोरा रे।
उमड़ घुमड़ चहुं दिसि से आया, गरजत है घनघोरा रे।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही सोरा रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, ज्यो वारु सो हो थोरा रे ॥१४४॥

३०

बरसे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन मे उमड्यो मेरो मनवां, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड घुमड़ चहुं दिसि से आयो, दामिनी दमक झर लावन की।
नन्ही नन्ही बूंदन मेहा बरसे, सीतल पवन सोहावन की।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आनन्द मगल गावन की ॥१४५॥

पदाभिव्यक्ति में विरोधाभास है। पहले की पक्तियों से विरोध और अन्तिम पक्तियों से आनन्द ही लक्षित होता है।

३१

सुनी हो मै हरि आवन की आवाज।
म्हैल चढि चढि जोऊं सजनी, कव आवै महाराज।
दादुर मोर पपीहा वोले, कोयल मधुरं साज।
उमग्यो इन्द्र चहु दिसि वरसे, दामिणी छोड़ी लाज।
धरती रुप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण के काज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, वेग मिलो महाराज ॥१४६॥

३२

कोई कहियो रे प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की, कोई।
आप नही आवै, लिख नही भेजै बाण पड़ी ललचावन की।
एक दोइ नैना कह्यो नही मानै, नदिया वहै जस सावन की।
कहा करुं कछु वस नही मेरो, पांख नही उड़ जावन की।
मीराँ कहै प्रभु कवर मिलोगे, चेरी भई हू तेरे दावन की॥१४७॥†

उपर्युक्त तीनो पदो में कुछ ऐसा भाव साम्य है कि तीनो ही पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर प्रतीत होतें है। "भनक सुनी हरि आवन की" भावना की ही पुनरुक्ति हुई है। "सुनिहौं मैं हरि आवन की आवाज" (पद स० ३१) और "कोई कहियो प्रभु आवन की" (पद स० ३२) मे प्रथम दो पदो मे वर्षा और श्रावण का वर्णन है। तीसरे पद की अभिव्यक्ति के अनुसार मीराँ की आँखो पर ही श्रावण छाया हुआ है। अन्तिम पद (स० ३२) चन्द्र सखी के निम्नाकित पद के कुछ विशेष निकट पडता है।

'चन्द्रसखी' के नाम पर भी एक ऐसा ही निम्नाकित पद पाया जाता है। निश्चित रूपेण यह कहना कि पद मौलिक रूपेण किसका है, अति दुरुह है। फिर भी, मीराँ के पदो के साथ हुए भाव और भाषा के अन्तर पर विचार करते हुए यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि पद मौलिक रूपेण 'चन्द्रसखी' का ही हो।

कोई कहियो रे मोहन आवन की।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम को जोग पठावन की।
आप न आवें, पतियाँ न भेजें, वात करें ललचावन की।
ए दोऊ नैण कहियो न मानै, घटा उमड़ रही सावन की।
दिल चाहत उड जाय मिलूँ, पर पाख नही उड़ जावन की।
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छवि, पर कमल लपटावन की।

पद स० ३२ से इस पद का वहुत अधिक साम्य है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

क्यारे[1] आवसे घेर कान रे, जोसिडा जोस[2] जुवो[3] ने .
दहीयो अमारो वाला दुर्बल थई केरे, थई गई थाकेली[4] पान रे .
वृन्दा ते वनमा वाले रास रच्यो छे, सहस्त्र गोपी मा एक कानरे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भावे भरिया भगवान रे।
॥१४८॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर संबध का निर्वाह नही हुआ है।

२

कागद कोण लई जाय रे, मथुरामा लखीए, प्रीत थोडी थोडी थाय[5] रे।
प्रीत तमीने मलवा ने तलखे, ने जोशोमति अन्न न खाय रे।
वृन्दावन की कुज गलियन मे, रोता रजनी जाय रे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल चित चोर रे ॥१४९॥†
अन्तिम पक्ति का शेष पद से समन्वय नही होता।

३

कही जइ[6] करू रे पोकार, कारी मुनी धावे लागे थे,
मै कही जई करू पोकार रे।
पिऊ जी हमारो पारधि भयो थे, मै तो भइ हरिणी शिकार रे।
दूर से थी आइ गोली लग गई,शीरू थे,नीकर गयी पारम पार रे।
प्रेम नी कटारी पुने[7] खेच कर मारी था, थई गई हाल बेहाल रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधरना गुण, हो गई पारम पार रे ॥१५०॥†

---

१ कब २ पचाग ३ देखी, ४ सूखा हुआ, ५ होती है, ६ जाकर, ७ मुझको।

४

शामले मल्या त विसारी, ओधव ने वाले शामले मेल्यां ते विसारी।
प्रीत करी ते पालव[1] पकडो वाला, प्रेम नी कटारी मुने मारी।
गोकुल थी मथुरा मैं गयो छो वा'ला, कुब्जा सोलागी छै ताली[2]।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल बलिहारी ।।१५१।।†

५

व्रजमा कयम रेवाशे[3] ओधव ना वा'ला, व्रज मा कयम रेवाशे।
आठ दाहडानी[4] अवध करी ने गया छो, वा'ला खटमास थय छेहरिने।
वृन्दावन की कुजगलिगाँ वाला, बैठा छे मुख मोरली धरी ने।
मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, वा'ला अमोरह्या छे आसडा भरी ने।
।।१५२।।†

पदाभिव्यक्ति मे विरोधाभास स्पष्ट है।

६

आव जो म्हाँरे नेडे[5], ओधव न वा'ला, आव जो म्हारे नेडे।
म्हाँरे आगणिये आवो मेर्यो, वा'ला कानुडो आवीने सार्यो वैडे।
अमो जल जमुना भरवा गया ता, वाला कानुडो पड्यो छे म्हारी केंड़े।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, वा'ला हरि मलवा मन हेरे ।।१५३।।†

पद की तीसरी पंक्ति शेष पद से सर्वथा भिन्न पडती है। पद में पूर्वापर सम्बन्धका भी सर्वथा अभाव है।

७

कांनी भावे देखन जाऊं, श्यामलो वेरागी भयो रे।
कोरी मटकी मां नही जमाऊ, गुवालेन हो कर जावूँरे।

---

१ आँचल, २ नेह, ३ रहा जायगा, ४ दिनकी, ५ नजदीक, पास।

गोरे गोरे अग पर भभूत लगावूं, जोगण होकर जाऊ रे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर नागर, श्याम सुदर पार पावूं रे ॥ १५४॥†
इस तरह की अभिव्यक्ति का यह एक ही पद प्राप्त है।

८

गोविन्दा ने देश ओध मुने लेई, जारे गोविन्दा ने देश।
मने रे मोहन जी ए मेली,[1] रे बिसारी, करडूं[2] मोरी करम की रेख।
हार तजुगी, शणगार तजुगी, तजुगी काजल की रेख।
चीर ने फाडी वा'ला कफनी पेरुगी, लेऊगी जोगन का वेश।
गोकुल तजुगी मे मथुरा तजुगी, तजुगी मे ब्रज केरी देश।
मीराँबाई के प्रभु गिरधरना गुण, चरण कमल चित्त सग रहेश।
॥१५५॥†

पदाभिव्यक्ति पर नाथ पथ का और भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

९

आवो ने सलुणा म्हारा मीठड़ा मोहन, आँख लड़ी माँ तमने राखूं रे।
हरि जेरे जोइये ते तमने आणी,आणी आपुं' मीठाई मेवा तमने खावा रे।
ऊची ऊची मेडी साहेवा अजव झरुखा, झरुखे चढी चढ़ी फारवे रे।
चुन चुन कलिया वा'ली सेज विछावुं,भमर पलग पर सुख नारुं वारी रे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, तारा चरण कमल मा चित राखूं रे।
॥१५६॥†

१०

मारा प्राण पातलिया वाहेला आवो रे, तमरे विनाहूं तो जनम जोगण छूं।
नाभी कमल की सुरता रे चाली, जईं ने तखत पर रास रसीला रे।

---

१ रखी, २ हूँ।

सुखमणा नाड़ी अेनी सेज विछावे, ते दी रंग मीना छे रासधारी।
तुमारे विनानुं मारे अन्तर अंधारूं रे,मारा जगना जीवन वाहेला आवो रे।
साचु धरेनुं मारे तुं छेरे शामलियारे,अवर धरेणुं म्हारे हाथ नही आवे रे।
कुअरवाई ना जदी मामेरा पूर्या, तेरी छाख भरी ने वहेला आवो रे।
सावरे सोनाना हरिना वाधा शीव्हड़ावूं रे, प्रीतमजी ने प्रणाम करीने।
विट्ठराय जेदी वखाने आव्या, ते दिन विटाणा छे वरमाले रेवल आवो।
कागलियानो जेदी कटको नहो तो रे,मसरे मोधी रे जेदी लेखन न होती रे।
वाह ला विदुर ते जइने अेटलु कहेजो रे,तमे अेकवर मलवा ने वहेला आवो रे।
मधुरी नादनी मोरली रे वागे रे, सुरतियामा राधाजी जागे रे।
मीराँ नो स्वामी जेदी गिरधर मलशे, तेरी दासीना दु.खड़ा भागे रे।
॥१५७॥†

पदाभिव्यक्ति के एक अर्द्धांश पर संतमत का और दूसरे पर पौराणिक गाथाओ का प्रभाव स्पष्ट है।

११

नारे आव्या व्रज मां फरी ने,ओधव जी वा'लो,नारे आव्या व्रज में फरी ने।
आठ दिवसनी अवध करीने, नारे जोयुं व्रज मा फरी ने।
कुब्जा ने साथे स्नेहे करी ने, वा'ला रहिया त्या ठरी ने।
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चित म्हारा लीन्हा हरी ने ॥१५८॥

१२

हां रे माया शीद ने लगाडी, धुतारे वाले, माया शीद लगाड़ी।
माया लगाडी वाला मेलीना जास्यो, एवा नाथा वो नाथ अनाड़ी।
वृन्दा ते वनमां गोधन चारता, हरे मधुर सी मुरली वगाडी।
वृन्दावन ने मारग जाता वा'ला, फूलनी तें वाडियो मेलाडी।
हाथ मा दिऊडो में वाल कुआरी वा'ला ह्वारे देवल पूजवा ने चाली।
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल वलिहारी ॥१५९॥†
पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध नही है।

१३

व्रजमा केम रेवाशे, ओधवना वा'ला, ब्रज मा केम रेवाशे।
जेरे दाड़ा जीवन गया छो वा'ला, दु खडा काने कहेवाशे।
बलवात थई ने वादी शूँ मूको, वा'ला, वरद तमारु जाशे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, वा'ला, गोपिका अरज काशे।
॥१६०॥†

पद सं० ५ तथा उपर्युक्त पद की पंचम पक्तियों में साम्य है, परन्तु शेष पद सर्वथा भिन्न पड़ता है।

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

पंजाबी

१

सावरे दी भालन भाये, सानू प्रेम दी कटारिया।
सखी पूछे दोऊ चारे, व्याकुल क्यों मैया नारे।
रग के रगीले मोसे दृग भर मारिया।
व्याकुल वेहाल भैयो, सुध बुध भूल गैया।
अजहूँ न आये श्याम, कुज विहारिया।
यमुना को घाटी वाटी, अमो तेरी चाल पछाती।
बसिया बजावी कान्हा, मैया मत वारिया।
मीराँ बाई प्रेम पाया, गिरधर लाल ध्याया।
तू तो मेरो प्रभु जी प्यारा, दासी हो तिहारिया ॥१६१॥ †

पद की आठवीं पक्ति से अन्योक्ति ही स्पष्ट होती है। भाषा क आधार पर भी पद की प्रामाणिकता सदिग्ध ही है।

खड़ी बोली

१

आली सावरे की दृष्टि मानो प्रेम कटारी है।
लगत वेहाल भई, तन की सुधि वुधि गई।
तन मन व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है।
मखियाँ मिलि दुइ चारी, वावरी सो भई न्यारी।
हो तो वाको नीके जानो, कुज की विहारी है।
चन्द्र को चकोर चाहे, दीपक पतग दाहै।
जल बिन मीन जैसे, तैसे प्रीत प्यारी है।
विनती करो है श्याम, लागो मैं तुम्हारे पाम।
मीराँ प्रभु ऐसे जानो दासी तुम्हारी है ॥१६२॥ †

भाव और भाषा दोनो के ही आधार पर पद की प्रामाणिकता सदिग्ध है।

२

जल्दी खवर लेना मेहरम मेरी।
जल बिना मीन मरे एक छन मे, एनै अमृत पाऊ तो झेरी झेरी।
वहुत दिनो का विछोह घड़ा है, अव तो राखो नेडी नेडी।
चकोर को ध्यान लगो चन्दवा सो, नटवा को ध्यान लगी डोरी डोरी।
सन्त को ध्यान लगे राम प्यारे, भूख को ध्यान मेरी मेरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम पर सूरत मेरी ठहरी ठहरी ॥१६३॥†

संघर्षाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

अब नहि बिसरूँ म्हारे हिरदै लिख्यो हरिनाम।
म्हारे सतगुरु दियो बताय अब नहि बिसरू रे।
मीरां बैठी महल मे, उठत बैठत राम।
सेवा करस्या साध की म्हारे और न दूजो काम।
राणा जी बतलाया[1] कह देणो जवाब।
पण लागो हरिनाम सूँ म्हारे दिन दिन दूनो लाभ।
सीप भर्‌यो पाणी पिवे रे, टाक[2] भर्‌यो अन्न खाय।
बतलाया बोली नही रे राणो जी गया रिसाय[3]।
विषरा प्याला राणा जी भेज्या, दीजो मीरां हाथ।
कर चरणामृत पी गई म्हारा सबल धणी[4] के साथ।
विष का प्याला पी गई भजन करे उस ठौर।
थारी मारी ना मरू म्हारा राखनहार और।
राणाजी मोपर कोप्यो रे, मारू एकज[5] सेल।[6]
मार्‌या पिराछित लागसी दीजो म्हाने पीहर भेल।
राणा मोपर कोप्यो रे रती न राख्यो मोद।
ले जाती वैकुन्ठ में, यो तो समझ्यो नही सिसोद।
छापा तिलक बनाइया तजिया सब सिंगार।
म्ह तो सरणे राम के भल निन्दो संसार।

---

१ बात करने का प्रयास किया २ छटांक भर, बहुत थोड़ा, ३ क्रुद्ध, ४ स्वामी, पति अर्थ में रूढ़िवाचक हो गया है, ५ एक ही, ६ कटारी।

माला म्हांरे दोवड़ी[1], सील वरत सिंगार।
अब के किरपा कीजियो, हूं तो फिर बांधू तलवार ॥१६४॥

कही कही इस पद के आगे निम्नांकित कुछ पंक्तियां और भी मिलती हैं :—

रथां बैल जुताय के ऊंटां कसिया भार।
कैसे तोड़ूं राम सूं, म्हारो भो भो[2] रो भरतार।
राणो साड्यो मोकल्यो जाज्यो एके दौड़।
कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड चली राठौर।
साडिया पाछो फेरिया रे परत[3] न देस्यां पांव।
कर सूरापण नीसरी म्हांरे कुछ राणे कुण राव।
ससारी निन्दा करै दुखियो सब ससार।
कुल सारो ही लाजसी मीरां जो भया ख्वार।
राती माती प्रेम की विष भगत को मोड़।
राम अमल माती रहै धन मीरा राठौड़।

२

म्हारे हिरदे लिख्यो जी हरिनाम, अब नहिं बिसरूं।
मैं तो हिरदे लिखियो जी गोपाल, अब नहिं बिसरूं।
हाथी घोडा बहो घणा माया केर न पार।
राज तजूं चितौड को गामड़ी हैं असी हजार।
साध हमारी आतमा मे साधन की देह।
रोम रोम मे राम रह्या ज्यो बादर में मेह।
राती माती हरिनाम की बांध भक्त को मोर।
राम अमल साखी फिरै धन मीरा राठोर।
एक आड़ी गुरु गोविन्द खड़ा, एक आडी सब ससार।

---

१ दुलडो, २ जन्मजन्मान्तर, ३ लौटकर।

कैसे तोड़ूं राम सों म्हारो भो भो रो भरतार।
ससारी निन्दा करै, रूठो सब परवार[1]।
कुल मारोइ लजाइयौ, मीरा बाई बहे अकरार[2]।
भक्त हीन पापी घणा राणा के दरबार।
के तो विषरा प्याला प्याय द्यो, के डाली कंठहार।
राणो जी विषण प्याला मोकल्या[3], दीज्यो मीरा रे हाथ।
मैं तो चरणामृत कर पी गइ अब थे जाणो म्हारा नाथ।
मीराँ विष का प्याला पी गई सोती खूंटी तान[4]।
म्हारो दरद दिवाणो सांवरो, म्हाने दौड़ि जगावेलो आन ॥
॥१६५॥

इस पद के साथ निम्नांकित पक्तियां और भी पाई जाती हैं।
राम नाम मेरे मन बसियो, रसियो राम रिझाऊं ए माय।
मैं मद भागिन करम अभागिन कीरत कैसे गाऊं ए माय।
विरह पिंजड की वाड़ सखी री, उठकर जी हुलसाऊं ए माय।

उपर्युक्त तीन पक्तियां सत मत से प्रभावित एक अन्य पद का प्रथमांश है। अत इनको तो इस पद से निश्चित रूपेण हटाया जा सकता है।

३

म्हारे हिरदे लिखयो हरिनाव, अब मैना बिसरू।
मीराँ गढ सूं उतरी जी छापा तिलक बणाय।
पगा बजावता घूंघरू जा हाथ बजावता ताल।
माला कंठी दो लड़ी सोल बरत सिणगार।
जो कोई हिरदै बस जी, जो कोइ आवणहार।

१ परिवार २ बेकरार सम्पूर्ण सीमाओं को तोडकर, ३ भेजा, ४ खूंटी तानकर सोना सर्वथा निश्चिन्त होकर सोना।

राणो मन में कोपियो जी मारो याके सेल।[1]
म्हारो तो पिराछित लागै जी, पीहर दो याको मेल।
रथडा वैल जुपाइया[2] जी, ऊटा कसियो भार।
डावो[3] छोडो मेडतो जी पेला[4] पोपर[5] जाय।
राणा साडया मोकल्या जी, पाछा ल्यावो मोड।
कुल की माडण[6] हस्तरी[7] जी, मुरड चली[8] राठौड।
मीराँ वचन उचेरिया[9] जी गिरधर म्हारो मोड[10]।
थे पाछा जावो साडिया जी काने[11] मोडो जोड[12] ॥१६६॥ †

इस पद की अन्तिम कुछ पक्तियाँ विशेष विचारणीय है।

उपर्युक्त तीनो ही पदो मे स्वानुभूति और अन्योक्ति का विचित्र सम्मिश्रण हुआ है। बहुधा पुनरुक्ति भी हुई है। एक पद से व्यक्त होती किसी घटना का दूसरे पद मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही तथापि ऐसी कुछ पक्तिया सभी पदो मे मिल जाती हैं, जिनसे कि उस घटना विशेष का आभास मिल जाता है।

भाव और भाषा के साम्य के आधार पर तीनो ही पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर प्रतीत होते हैं।

४

मै तो सुमर्या छै मदन गोपाल, राणा जी म्हारो काई करसी।
मीराँ बैठ्या महल मे जी, छापा तिलक लगाय।
आया राणा जी महल म जी, कोप कर्यो छै मन भाय[13]।
मीराँ महला से उतर्या जी, ऊटा भार कसाय।

---

१ कटार, २ जुतवाये, ३ बाँए, ४ सर्व प्रथम, ५ तालाब, ६ बनानेवाली, ७ स्त्री, ८ नाराज होकर चली, ९ उच्चारण किया, १० मोड़ शब्द के तीन अर्थ होते हैं – लौटाना, सन्यासी का अवहेलनात्मक पर्यायवाची, तोडना, ११ किसलिए, १२ जोडी या साथ, विशेषत दम्पति के अर्थ में ही 'जोडी' शब्द व्यवहृत होता है। १३ मन में।

डावो छोड़्यो मेड़तो कोई सूधा[1] द्वारका जाय।
राणा जी साड़्यो भेजिया जी, पाछा लावो घेर।
घर की नार इस्तरी चाली, चाली छे मुड़ राठोर।
लाजै पीहर सासरो जी, लाजै भाय र बाप।
लाजै दूदा जी रो मेड़तो जी, कोई चोथी गढ चितौड़।
राणा जी विष का प्याला भेजिया जी द्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत पी गयाँ जी, आप जानो दीनानाथ।
पेयाँ[2] नाग छोड़िया जी, छाड़ो मीरा के महल।
हिवड़े[3] हार हिडोलिया,[4] कोइ तुम जाणो रघुनाथ॥१६७॥

"दूदा जी रो मेड़तो" अभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। राणा द्वारा साप भेजे जाने का कथानक यहाँ दूसरे ही रूप में दिया गया है। आराध्य के प्रति "मदन गोपाल" सम्बोधन भी इस पद की विशेषता है। इस पद का भी पहले तीनों पदों से गहरा साम्य है।

पाठान्तर १

मैं तो सुमर्‍या छै मदन गोपाल, राणो जी म्हारो काई करसी।
मीराँ बैठी महल मे जी छापा तिलक लगाय।
आया राणा जी महल मे जी,कोप करियो छै मन माय।
मीराँ महैलाँ मे उतर्‍या जी ऊटा कसिया भार।
डावो छोडयो मेड़तो कोई सूधा द्वारका जाय।
राणा जी साड्‌यो भेजियो जी पाछा ल्यावो दौड़।
घर की नार इस्तरी चाली, चाली मुड़ राठौड।
लाजै पीहर सासरो जी, लाजै भाय र बाप।
लाजै दूदा जी रो मेड़तो जी लाजै गढ़ चितौड़।
विष का प्याला भेजिया जी, द्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत पी गया जी, आप जाणो दीनानाथ।

---

१ सीधे, २ पिटारी, ३ हृदय पर, ४ भुना लिया।

पेया नाग छोड़ियो जी, छोड़ो मीराँ महैल ;
हिवड़े हार हिडोलिया जी, थे जाणो रघुनाथ।
दोनो पाठान्तरो में कुछ शब्दो का ही अन्तर है।

इन पदो मे एक विचारणीय अभिव्यक्ति यह है कि मीराँ चित्तौड़ का त्याग करती है मेडता जाने के उद्देश्य से ही तथापि चली जाती है तीर्थ-यात्रा हेतु। "मुरड चली राठोड" जैसी राणा की धारणा से भी आभासित होता है कि मीराँ नाराज होकर गृह-त्याग कर अपने पीहर "राठोड" जा रही है।

"डाँवो तो मैल्यो मेड़तो पेलाँ पोखर जाय" या "सूधा.द्वारका जाय।" जैसी अभिव्यक्तियो का विश्लेषण अद्यावधि प्राप्त वृतान्त क आधार पर करना सम्भव नही। (देखें, "मीराँ, एक अध्ययन")।

५

गढ से तो मीराँ बाई उतरी, करवा[1] लीना जी साथ।
डाँवो तो छोड़चो मीराँ मेडतो, पुस्कर न्हावा जाय।
मेरो मन लाग्यो हर के नाम, रहस्या साधा के साथ।
राणा जी ओठी[2] भेज्याँ, दीजो मीराँ बाई रे हाथ।
घर की मानन[3] अस्तरी, मुरड[4] चली राठोड।
लाजै पीहर सासरो, लाजै तेरो सो परवार.
लाजै मीराँ जी थारा मायड बाप, चोथो वंश राठोड।
मीराँ बाई कागद[5] भेज्याँ, दीजो राणा जी रे हाथ।
राणा जी समझ्यो नही, ले लाती वैकुन्ठा।
सिसोदियो समझ्यो नही, ले जाती वैकुन्ठा।
बागाँ में बोली कोयलियाँ, वन मे दादुर मोर।

---

१ मिट्टी का बना हुआ एक छोटा सा पात्र जो (पानी से भर कर) पूजा करने, सती होने या ऐसे किसी शुभ अवसर पर व्यवहृत होता है। २ पत्र, ३ बनाने वाली, ४ नाराज होकर, ५ पत्र।

मीराँरा ने गिरधर मलिया, नागर नन्द किसोर ॥१६८॥†

अन्तिम दोनो पक्तियो का शेष पद से समन्वय नही होता।

६

राणी जी महला से ऊतरी, ऊटा कसियो भार ।
डांवो तो राणी छोड़यो मेड़तो, पूठ[1] दयी चित्तौड़ ।
म्हारा रे भाई ओठियाँ[2], मीराँ ने लाओ ए समझाय ।
घर को मानन राणी रूस गयाँ राठोड़ ।
म्हारा रे भाई साड़िया[3] रे वीर, जाजै सौ सौ कोस ।
म्हारा रे भाई साड़िया, रे तेरो ऊट पाछो[4] ले जाय ।
इण राणा जी रे राज मा, जल पिवा रो दोस ।
म्हारी एक न मानी बात, राणा रे, ले जाती वैंकुठ माँहि ।
बागाँ मे बोली कोयल जी, बन मे दादुर मोर।
मीराँ ने गिरधर मिलिया, नागर नन्द किसोर ॥१६९॥†

भाव और भाषा के आधार पर इस पद को पूर्व पद (स० ५) का गेय रूपान्तर कहा जा सकता है।

७

काई थारो लागै छै गोपाल।
गढ से तो मीराँ बाई उतर्याँ जी, हाथ मगद[5] को थाल।
औरा[6] के तन अन धन लछमी, आप फिरो कंगाल।
ऊचा राणा जी रा गोखड़ा[7] जी, नीची मीराँ बाई री साल[8]।
रमता तो पायो मीरां कांकरो, कोई सेवा सालिगराम।
जहर पियालो राणा जी भेज्या, जी, द्यो मीराँ ने जाय।

---

१ पीठ, २ पत्रवाहक, ३ ऊँट चलाने वाला, ४ लौटा कर। ५ मेदे मे बना हुआ एक तरह का लड्डू विशेष जो पूजा के काम आता है, या लड़की के विवाह म बनमारें मे दिया जाता हैं। ६ दूसरा के लिये, ७ अटारी, ८ कमरा।

कर चरणामृत मीराँ पी गई, कोई आप जाणो रघुनाथ।
साँप पेटारा राणा जी भेज्या, द्यो मीरा ने जाय।
कर खग वालो मीराँ वाई पहरियो, कोइ हो गयो नोसर हार[1]।
काढ कटारो राणाजी वैठिया, ल्यो मीरा ने मार।
इन माराँ इन दोष लगे, कोई छत्री धरम धर जाय।
साँडया[2] साडिया पलाण[3] जो, म्है चालाँ सो सो कोस।
राणा जी का देस में, कोई जल पिवा रो दोस।
मीराँ गिरधर रो रंग राची, रच न रक कलेस।
अन्तिम पक्ति का निम्नांकित पाठान्तर भी पाया जाता है —
"मुख से वजावै मीराँ वाँसरी, कोई नाच रह्याँ-मधुरेस।"॥१७०॥

राजस्थान के ऊँटों की तीव्र चाल किसी समय विशेष प्रसिद्ध थी। मीराँ ने ऊँट जोत लाने के लिये कहा और ऊँट ले आया गया। इतने मे ऊँट चलाने वाले ने मुडकर जो देखा तो "मीराँ बाई री देस" ही दीखने लगा। ऊँट की तीव्र गति का चमत्कार पूर्ण वर्णन है।

८

ए मीराँ थारो काई लागै गोपाल।
राणो जी वूझै वात, काई थारो लागै गोपाल।
सरप पिटारो राणो जी भेज्यां, द्यो मीराँ के हाथ।
ए मीराँ थारो भायलो गोपाल।
मीराँ वैठी महल मे जी, छापा तिलक लगाय।
वतलायां वोली नही रे, राणो जी रह्यो वल खाय।
काड कटारो खडयो हुयो जी, अव वताय तेरो गोपाल।

---

१ नोसर हार—एक तरह का वहुमूल्य हार जो अपनी वहुमूल्यता के कारण सिर्फ राजघरानो के ही उपयुक्त समझा जाता है, २ ऊँट, ३ ऊँट पर जोते जाने वाली काठी "पलाण" कहलाती है। इसका क्रिया रूप है "पलाण ज्यो" जिसका अर्थ है, जोत लो।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जोत मे जोत मिलाय ॥१७१॥†

"ऐ मीराँ थारो भायलो गोपाल" पक्ति विशेप ध्यान देने योग्य है। प्रथम पक्ति के आधार पर यह पद, पद स० ४ का पाठान्तर ही ही प्रतीत होता है. परन्तु शेप पदाभिव्यक्ति सर्वथा भिन्न पड़ती है।

९

राणा जी महल पधारिया जी, कर केस दिया साज ।
राणी जी पाछा फिर गया जी, राणो जी जान्या म्हासूं लाज।
राणो जी बूझे काई ओ लागे गोपाल।
राणी जी मुजरा करो सनमुख उवास्या ।
म्हे छाँ राणी चितोड का, और वरब्साँगाँ थाने राज।
मीराँ ने बुझो काई ओ लागे गोपाल।
साध सत हिरदे वसे, हथलेवो को लाग्यो पाप।
राणा जी बूझे काई ओ लागे गोपाल।
द्योढया मे बझो काई ओ लागे गोपाल।
राणा जी खड्ग सवाँरिया ले खाडो तरवार।
खिसडी मीराँ ने राणो जी मारसी, हो गई एक हजार।
मीराँ ने बूझो काई ओ लागे गोपाल।
राणा जी वतलावै काई ओ लागे गोपाल ॥ १७२॥

पदाभिव्यक्ति विशेप महत्वपूर्ण है। राणा जी के "महल" मे पधारने पर 'राणी जी' के लौट जाने के कारण राणा को भ्रम होता है। नववधू की लज्जा का यह भ्रम शीघ्र ही शका में परिणत हो जाता है और राणा यह जानने को उत्सुक हो उठते है कि "गोपाल" और "राणी जी" के बीच क्या सबध है। मीराँ का उत्तर भी स्पष्ट है 'साध सत हिरदै वसै, हथलेवो को लाग्यो पाप"। अस्तु, राणा मीराँ को मार डालने का एक बार फिर निष्फल प्रयास करते है।

इस पद म और पद स० ५ मे गहरा साम्य है। दोनो ही पदो से व्यक्त भावनाएँ और घटनाएँ एक सी है। अस्तु, बहुत सम्भव है कि दोनो ही पद स्वतन्त्र पद न होकर एक ही पद के रूपान्तर मात्र हो।

१०

म्हाने बोल्याँ मति मारो जी राणा यो लेइ थारो देस।
मीराँ महलाँ से ऊतरी कोई सात सहेल्या माय।
खेलत पायो काँकरो कोइ सेवा सालगराम ।
साध जी आया पावणा[1] कोईं मीराँ के दरबार।
जाजम[2] दीनो बैसणो[3] कोई ढाल्यो[4] दीनो ढाल[5]।
जैर पियालो राणा जी भेज्यो द्यो मीराँ ने प्याय।
कर चरणामृत पी गई मीराँ, थे जाणो दीनानाथ।
साँप पिटारो राणा जी भेज्यो, दीज्यो मीराँ ने जाय।
कर खगवालो[6] पहिरियो कोई हो गयो नोसर हार।
राणा जी कागद भेजियो कोई द्यो मीराँ ने जाय।
साधाँ की सगत छोड द्यो मीराँ वैठो राण्या रे भाय।
काढ कटारो राणा जी भेज्यो, दूजी भेजी तरवार।
एक मीराँ की दोय करा, दो की हो गई च्यार।
राणो मीराँ से यो कहे जी, किस्यो[7] थाँरो भगवान।
राज पाट सब छोडस्याँ कोई म्हे भी भजा भगवान।
कच्चो रग उड जाय जै छी, पक्को रग नही जाय।
मीराँ कै रग गोपाल को जी, अब छुटना को नाय।
म्हाँने नाना मत मारो हो, राणा यो लेइ थारो देस।
॥१७३॥†

प्राप्त इतिहास के अनुसार मेडता और उसके आसपास की भूमि "मीराँ बाई रो देस" कहलाता है। अत उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति और पदो से सर्वथा भिन्न पडती है। अन्य पदाभिव्यक्तियो के आधार पर यही स्पष्ट होता है कि मेडता जाने के हेतु ही मीराँ चित्तौड त्याग करती है। परन्तु मेडता न जाकर सीधे द्वारका चली जाती है। ज्यो

---

१ अतिथि, २ दरी, ३ आसन, ४ मूंज के बनाये हुए छोटे पलग, मचिया, ५ बिछा दिया, ६ नर्र, ७ कौन सा।

ही राणा को यह मालूम होता है त्यों ही वे संदेशवाहक को भेजकर मीरां को लौटाने का निष्फल प्रयास करते हैं। उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति से मीरां का मेड़ता जाना ही सिद्ध होता है। इस तरह का विरोधाभास उपस्थित करने वाला यही एक पद प्राप्त है। मीरां द्वारा किया गया गृह-त्याग मेडते से ही हुआ ऐसा वर्णन अन्य कुछ पदो मे भी मिलता है। प्राप्त इतिहास मे यही एक ऐसा पहलू है जिस पर सभी विद्वान् एक स्वर से सहमत हैं। साथ ही, यही एक ऐसा पहलू है जहाँ के प्राप्त वृत्तान्त और प्राप्त पदो की अभिव्यक्ति मे समन्वय होता है। अस्तु पूर्वापर सबध पर दृष्टि रखते हुए यही पदाभिव्यक्ति विशेष प्रामाणिक प्रतीत होती है।

११

गरुड चढ हरि आए मीरां के पास।
आनन्द तूर बजाय के, पूरी मन की आस।
राणा मोपर कोपियो, म्हांरी तक तक सेज।
लाज लागे छे म्हांको, दीजो पीहर भेज।
मीरां महल से ऊतरी, राणे पकरियो हाथ।
हथलेवा रो नात रो, परत न मानूं बात।
मीरां रथ सिणगार के, ऊँटा कसिया थात।
डावो मेल्यां मेड़तो, पेलां पोखर जात।
कुल की तारण अस्तरी, मुरड़ चली राठौड।
राणा मो पर कोपिया, रती न राख्यो मोद।
ले जाती वैंकुन्ठ मे, समझ्यो नही सिसोद।
मीरां मुक्त दुहेलडी राम की, जैसे खांड़े की धार।
कोई सन्त जन बिरला, उतरे भव के पार।
मीरां ने प्रभु गिरिधर मिलियो, नागर नन्दकिसोर।
तन मन धन सब अरपिया चरण कमल की ओर॥१७४॥†

पद में पूर्वापर सगति का अभाव है। प्रथम दो पक्तियो की भाषा खडी बोली से प्रभावित है। राजमहलो म अप्रिय स्थिति के कारण

ही मीराँ चित्तौड़ त्याग कर अपने पीहर, मेड़ते जाने का आग्रह करती है। तत्पश्चात सहसा ही मीराँ द्वारा मेड़ता त्याग का भी वर्णन है। मीराँ की मानसिक स्थिति के चित्रण से पद का अन्त हो जाता है। एक इसी पद मे नही अपितु गृह-त्याग की स्थिति का चित्रण करनेवाले प्राय. सभी पदो मे ऐसा ही वर्णन मिलता है। "डावो तो मेल्यो मेड़तो" जैसी अभिव्यक्ति सभी पदो मे मिलती है। किस और पद से इस 'डावो' दिशा का ज्ञान हो यह जानना सरल नही प्रतीत होता। "सूधा द्वारका जाय" "पुष्कर न्हावा जाय" "पेला पोखर जात" "पूठ दयी चित्तोड" या "राणा जी पडया जूनागढ रे मारग ओ" जैसी अभिव्यक्तियाँ मीराँ द्वारा की गयी यात्रा के मार्ग को इगित करती है। प्राप्त सामग्री के आधार पर मीराँ द्वारा की गई वृन्दावन की यात्रा प्रामाणिक नही सिद्ध होती। इतना ही नही, यह भी लक्षित होता है कि मीराँ चित्तौड त्याग कर मेड़ता जाती है और फिर एक दिन मेड़ता भी त्याग कर द्वारिका की ओर पैर बढ़ाती है।

मीराँ का प्रामाणिक वृत्तान्त जानने के लिए इन विशेष पहलुओं पर खोज होना विशेष आवश्यक है।

१२

ओ ल्यो राणा जी देस थाँरो,वन मे कुटिया बनस्यां।
राणा जी म्हे तो गोविन्द का गुण गास्यां।
राणा जी म्हे तो साधां कं सग रहस्यां।
राणा जी रूसे म्हारो कुछए न बिगडै, हर रूस्यां मरजास्या।
विष को प्यालो राणा जी भेज्यो, कर चरणामृत भी जास्या।
सिसोदिया म्हे तो साधा के सग रहस्या।
ओल्यो राणा जी म्हं तो गोविन्द का गुण गास्या।
सिसोदिया म्हे तो साधा ये संग रहस्यां ॥१७५॥

यह पद भी प्रथम पक्ति के आधार पर "राणाजी बोल्याँ मति मारो" (पद स० ३) का ही रूपान्तर प्रतीत होता है, परन्तु शेष पद में कोई साम्य नही है। मीराँ के साधु-सग का गहरा विरोध और तज्जन्य

सघर्ष दोनो ही पदो से लक्षित होता है, तथापि दोनो ही पदो से विभिन्न घटनाओ का आभास मिलता है।

उपर्युक्त पद मे 'चुनरी' लौटा देने की अभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है क्योकि उससे मीरा का सधवा होना ही सिद्ध होता है।

१३

सुत्यो राणा जी निस भर नीद ओ,
कोई सुत्याँ ने सुपोणराणा जी ने आयो।
साथियो रे भाई करो ए विचार ओ,
माथिडा हो काई म्हाँरी मेडतणी भगवाँ पहर लियाँ।
सपणो राणा जी आल जजाल ओ,
राणा जी पड्योरे जूनागढ रो मारग रे।
राणा जी कोई दीप उगायो[1] मीराँ वाई के देस।
बूझ्या राणा जी गायाँ रो ग्वाल ओ
कोई देम वताओ मीराँवाई रो,।
ओई राणा जी मेडतणी रो देस,
कोई साल[2] थोडा सख्व भोगना[3] ओ।
बूझ्यो राणा जी मालीडारो पूत,
कोई वाग वताओ मीराँ वाई रो,
ओई राणा जी मीराँ वाई रो वाग।
कोई आम्बू तो पाक्याँ नीबूं रस भऱ्या,
सामी मिल गई साधुडा री जमात।
वीच मे तो मीराँ वाई घूमती ओ राम।
मीराँ वाई थाँरो विडद वतलायाँ,
मेडतणी विडद' वतलायाँ म्हें थाने पूजस्या।

---

१ दीप उगायो—दीप प्रज्ज्वलित किया, भावार्थ—दिन भर चलने के पश्चात् सायकाल पहुँचे २ वजर भूमि, ३ भोगने योग्य।

मोड़ो' लख्यो असल गवाँर ओ राणा,
पहेली तो लखतो वैकुँठा ले जाती ओ राणा।
॥१७६॥ †

१४

सुत्या राणा जी नीस भरी नीद, सुत्यो राणा ने सुपणो भी आयो।
थाँरी मीराँ मेडतणी भगवाँ लियो, मीराँ मेडतणी ए भगवाँ लियो।
सुपणो तो है आल जजाल, मीराँ तो मेडतणी वैठी बाप के।
उठो रे साथीडा कसलो घोडा जी, दिनडो उगास्याँ मीराँ जी के देस में।
चाल्यो राणा जी ढलती सी रात, दिनडो उगायो मीराँ जी के देसमें।
खूँट्याँ टागो ए घुडला जी, तम्बूडा तना दो चम्पा बाग में।
आयो आयो साधूडारो साथ, माय² तो मीराँ आवे घूमती ओ राम।
छोडो ए मीराँ साधुडा रो साथ, लाजै पीहर और थाँरो सासरो।
नही छोडाँ साधुडा रो साथ, भल लाजो पीहर और सासरो।
ओढो ए मीराँ दिक्खनी रा चीर*, भगवा तो वसतर ए छोड द्यो।
वालूं ए जालूं थारा दिक्खनी रा चीर, प्यारे लागे धोला वसतर।
चुडलो तो पहरो ए हाँथी दाँत को, पहरो ए नोसर हार।
चुडलो तो मोलूं³ गढ के काँगरे, तोडूं ए नोसर हार।
आयी आयी राणा जी ने रीस,⁴ काढ कटारो मीराँ जी पर वायो⁵।
आयी आयी राणी जी ने रीस, एक मीराँ की सहस होय गयी ॥१७७॥†

पदाभिव्यक्ति की महत्ता स्पष्ट ही है। मेड़ते से ही मीराँ ससार त्याग करती हैं। इस भावना की पुष्टि उपर्युक्त दोनों ही पाठों से होती है। प्रथम पाठ मे राणा द्वारा मीराँ को "मेडतणी" सम्बोधित किया गया है, यह इस पद की विशेषता है।

---

१ बहुत देर में, २बीच में, ३ फोडूं, ४ क्रोध, ५ फेंका।

* दिक्खनीराचीर—दक्षिण मे बना हुआ वस्त्र जो अपनी बहुमूल्यता और सौन्दर्य के कारण राजस्थान में विशेष प्रसिद्ध था अस्तु यह मुहावरा विशेष बढ़िया और बहुमूल्य वस्तु के लिये रूढिवाचक हो गया है।

पद की शैली पूर्णतया वर्णनात्मक है। राजस्थानी लोकगीत की शैली इन पदो से मिलती जुलती है। पहले पाठ मे राणा द्वारा 'मीराँ बाई के देस' और राजस्थान का पता पूछा जाना भी विशेष रुपेण विचारणीय है।

"ओढो ए मीराँ दिक्खनी रा चीर . . . . प्यारा लागे धोला वसतर" पक्तियाँ भी विचारणीय है। कुछ पदो मे "धोला" वस्त्र का और अन्य पदो मे "भगवा" वस्त्र का ही वर्णन मिलता है। नाथ परम्परा प्रभावित अधिकाश पदो मे भगवा वस्त्र की चरचा है, तो सत मत प्रभावित अधिकाश पदो मे "धोला" सफेद वस्त्र की ही चरचा है। मतभेद और सघर्ष द्योतक कुछ पदो मे कही "धोला" वस्त्र का और कही 'भगवा' वस्त्र का दोनों का ही वर्णन समान रूप से है। एक ही पद मे दोनों का वर्णन इस पद विशेष मे ही है। 'भगवा' और 'धोला' शब्दो के बीच कौन प्रामाणिक और कौन प्रक्षिप्त है, यह कहना अद्यावधि सम्भव नही।

१५

राणा जी क्याने राखो म्हासूं वैर।
थे तो राणा जी म्हॉने इसड़ा[1] लागो, ज्यूं ब्रच्छन के केर।
महल अटारी हम सब त्याग्यो, त्याग्यो थारो बसनो सहर।
काजल टीको राणा हम सब त्याग्या, भगवी चादर पहर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, इमरत कर दियो जहर ॥१७८॥

पाठान्तर १,

> राणा जी थें क्याने राखो मोसूं वेर।
> राणा जी म्हाँने अमा लगत हो, ज्यो विरछन मे केर।
> माम घर मेवाड मेडतो त्याग दियो थाँरो सहेर।
> मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हठ कर पी गई जहेर।

उपर्युक्त पाठकी तीसरी पंक्तिमें निम्नाकित पाठान्तर मिलता है :—

"थारे रूस्याँ राणा कुछ नही विगड़े, अब हरि कीनी महेर।

---

[1] ऐसे।

पाठान्तर २,

> राणा म्हासूँ क्यो ने जी राखो वैर।
> मारू घर मेवाड मेडत्याँ, सारा छोड़या सहैर।
> आप राणा जी म्हाँने इसका लागो, जैसा जगल मे कैर।
> मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, राम भरोसे पियो जहैर।

दूसरा पाठ प्रथम पाठ का ही गेय रूपान्तर प्रतीत होता है। प्रथम पाठ की ठेठ राजस्थानी भाषा द्वितीय पाठ में ब्रजभाषा की ओर झुकती प्रतीत होती है। जैसे 'म्हांसू', 'मोसूँ', 'इसडा लागो', 'असा लगत हो।'

द्वितीय पाठ की "मारू घर मेवाड मेडतो" अभिव्यक्ति प्रथम पाठ से सर्वथा भिन्न पडती है। पूर्वापर सबध देखते भी "मारू" शब्द का प्रयोग अशुद्ध ही ठहरता है। शुद्ध रूपेण 'म्हॉरो' होना चाहिए। म्हॉरो का अर्थ है "मेरा"।

इन सभी पाठो से समान रूपेण व्यक्त होनेवाली एक अभिव्यक्ति "म्हाने इसडा लागो ज्यो बिरछन मे केर'।" विशेष विचारणीय हैं।

---

१ केर एक कटीला पेड जो राजस्थान के जगलो में बहुतायत से पाया जाता है। इसमे गोल गोल, छोटे हरे फल लगते हैं जो बहुत खारे होते हैं। इन फलों में छोटे छोटे बीज भी होते हैं। इनको नमक के पानी मे एक लम्बे अरसे तक के लिए भिगो दिया जाता है, जिसमें इसका खारापन निकल जाता है तब इसको कूट कर बीज अलग कर दिया जाता है और इसकी तरकारी या अचार बनाया जाता है। इस पेड के काटे बहुत तीखे होते हैं। इसकी टहनियाँ काटकर खेत आदि के किनारे दो तीन तीन फिट ऊची दीवार के रूप मे खडी कर दी जाती है, जिससे जानवर आदि खेत खराब न कर सके। सुरक्षा के ख्याल से मकान के चारों तरफ भी प्रात लोग इसको लगा देते हैं। इन झाडो को केर की झाडी कहते हैं। झाडी शब्द ही इसके लिये रूढ्यार्थ हो गया है। इन झाडियो पर भूत-प्रेत का निवास माना जाता है। अत सूर्यास्त के समय से कोई इनके पास से गुजरता भी नही है। "इसडा लागो ज्यो व्रच्छन मे कैर" जैसी अभिव्यक्ति मे राणा के प्रति मीरॉ की कटु और हीनतम भावनाए स्पष्ट हो उठती हैं।

पद की शैली पूर्णतया वर्णनात्मक है। राजस्थानी लोकगीत की शैली इन पदों से मिलती जुलती है। पहले पाठ में राणा द्वारा 'मीरां बाई के देस' और राजस्थान का पता पूछा जाना भी विशेष रूपेण विचारणीय है।

"ओढ़ो ए मीरां दिक्खनी रा चीर ..... प्यारा लागे धोला वसतर" पक्तियाँ भी विचारणीय हैं। कुछ पदों में "धोला" वस्त्र का और अन्य पदों में "भगवा" वस्त्र का ही वर्णन मिलता है। नाथ परम्परा प्रभावित अधिकाश पदों मे भगवा वस्त्र की चरचा है, तो संत मत प्रभावित अधिकाश पदो मे "धोला" सफेद वस्त्र की ही चरचा है। मतभेद और संघर्ष द्योतक कुछ पदों में कहीं "धोला" वस्त्र का और कहीं 'भगवा' वस्त्र का दोनो का ही वर्णन समान रूप से है। एक ही पद में दोनों का वर्णन इस पद विशेष मे ही है। 'भगवा' और 'धोला' शब्दों के बीच कौन प्रामाणिक और कौन प्रक्षिप्त है, यह कहना अद्यावधि सम्भव नहीं।

१५

राणा जी क्याने राखो म्हासूं वैर।
थे तो राणा जी म्हाने इसड़ा[1] लागो, ज्यूं व्रच्छन के केर।
महल अटारी हम सब त्याग्यो, त्याग्यो थारो वसनो सहर।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या, भगवीं चादर पहर।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, इमरत कर दियो जहर ॥१७८॥

पाठान्तर १,

राणा जी थे क्याने राखो मोसूं वेर।
राणा जी म्हाने असा लगत हो, ज्यो विरछन में केर।
माम घर मेवाड मेडतो त्याग दियो थाँरो सहेर।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, हठ कर पी गई जहेर।

उपर्युक्त पाठकी तीसरी पक्तिमें निम्नांवित पाठान्तर मिलता है :—
"थारे म्स्याँ राणा कुछ नही विगड़े, अब हरि कीनी महेर।

[1] ऐस।

पाठान्तर २,

> राणा म्हासूं क्यो ने जी राखो वैर।
> मारू घर मेवाड मेड़त्या, सारा छोड़्या सहैर।
> आप राणा जी म्हॉंने इसका लागो, जैसा जगल मे कैर।
> मीरॉं के प्रभु गिरिधर नागर, राम भरोसे पियो जहैर।

दूसरा पाठ प्रथम पाठ का ही गेय रूपान्तर प्रतीत होता है। प्रथम पाठ की ठेठ राजस्थानी भाषा द्वितीय पाठ मे व्रजभाषा की ओर झुकती प्रतीत होती है। जैसे 'म्हॉंसू', 'मोसूं', 'इसडा लागो', 'असा लगत हो।'

द्वितीय पाठ की "मारू घर मेवाड मेडतो" अभिव्यक्ति प्रथम पाठ से सर्वथा भिन्न पडती है। पूर्वापर सबध देखते भी "मारू" शब्द का प्रयोग अशुद्ध ही ठहरता है। शुद्ध रूपेण 'म्हॉंरो' होना चाहिए। म्हॉंरो का अर्थ है "मेरा"।

इन सभी पाठो से समान रूपेण व्यक्त होनेवाली एक अभिव्यक्ति "म्हाने इसडा लागो ज्यो बिरछन मे केर'।" विशेष विचारणीय है।

---

१ केर एक कटीला पेड जो राजस्थान के जगलो में बहुतायत से पाया जाता है। इसमे गोल गोल, छोटे हरे फल लगते है जो बहुत खारे होते है। इन फलो मे छोटे छोटे बीज भी होते है। इनको नमक के पानी में एक लम्बे अरसे तक के लिए भिगो दिया जाता है, जिससे इसका खारापन निकल जाता है तब इसको कूट कर बीज अलग कर दिया जाता है और इसकी तरकारी या अचार बनाया जाता है। इस पेड के काटे बहुत तीखे होते है। इसकी टहनियाँ काटकर खेत आदि के किनारे दो तीन तीन फिट ऊची दीवार के रूप में खडी कर दी जाती है, जिससे जानवर आदि खेत खराब न कर सके। सुरक्षा के ख्याल से मकान के चारो तरफ भी प्राय लोग इसको लगा देते है। इन झाडो को केर की झाडी कहते है। झाडी शब्द ही इसके लिये रूढ्यार्थ हो गया है। इन झाडियो पर भूत-प्रेत का निवास माना जाता है। अत सूर्यास्त के समय मे कोई इनके पास से गुजरता भी नही है। "इसडा लागो ज्यो ब्रच्छन में कैर" जैसी अभिव्यक्ति से राणा के प्रति मीरॉं की कटु और हीनतम भावनाए स्पष्ट हो उठती है।

इस पद का एक और भी पहलू विशेष विचारणीय है। पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट है कि मीराँ ने गृह-त्याग कर दिया है किन्तु अब भी राणा को मीराँ के प्रति उपालंभ है। अब भी राणा का मन मीराँ के प्रति कठोर भावनाओं से पूर्ण है। मीराँ कराह उठती है कि जहर पीने पर और घर छोड़ देने पर भी राणा का व्यवहार उनके प्रति कठोर है। गृह-त्याग के बाद भी मीराँ के समक्ष राणा के वैर का प्रश्न ही क्योंकर उठ सका, प्राप्त वृतान्त यहाँ सर्वथा मौन है। अस्तु, स्पष्ट ही है कि पद को प्रामाणिक मान लेने पर पदाभिव्यक्ति से व्यक्त होती घटनाओं पर खोज होना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

१६

सिसोद्या राणो, प्यालो म्हाने क्यूँ रे पठायो।
भली बुरी तो मैं नहिं कीन्ही राणा क्यूँ है रिसायो।
थाने म्होने देह दिवी है ज्याँ रो हरि गुण गायो।
कनक कटोरे लै विष घाल्यो दयाराम पंडो लायो।
उठी उठी¹ तो मैं देख्यो कर चरणामृत पायो।
आज कल की मैं नाहीं राणा जद यह ब्राह्माण्ड छायो।
मेडतिया घर जन्म लियो है मीराँ नाम कहायो।
प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी खंभ फाड़ वेगो धायो।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर, जन को बिडद बढायो॥१७९॥†

पदाभिव्यक्ति में संगति का अभाव है। "आज काल की मैं नहीं" जैसी अभिव्यक्ति के तुरन्त बाद ही "मेड़तिया घर जन्म लियो है" जैसी अभिव्यक्ति असामान्य ही हो उठती है। पद का प्रारम्भ होता है राणा के प्रति सम्बोधन से और अन्त होता है कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में, यहाँ भी पूर्वापर संबंध की असंबद्धता स्पष्ट हो उठती है।

पदाभिव्यक्ति से व्यक्त होती बातें विशेष विचारणीय हैं। पदाभिव्यक्ति के अनुसार राणा की आज्ञा से मीराँ तक विष का प्याला ले जाने वाला व्यक्ति का नाम दयाराम पांडे था। परन्तु मुंशी

¹ यहाँ वहाँ—चारों तरफ।

देवीप्रसाद तथा अधिकाश आधुनिक विद्वानो के मतानुसार अपने मुँह लगे "मुसाहिब जो बीजावर्गी जात का महाजन था" की सलाह से ही (इसीके द्वारा) राणा ने मीराँ तक विष पहुँचाया था। कहा जाता है कि मरते मरते मीराँ ने श्राप दिया था जिसके कारण आज तक इनके कुटुम्ब मे धन और सन्तान दोनो की एक साथ वृद्धि नही होती। यदि इस विषपान द्वारा मीराँ की मृत्यु मान ली जाती है तो तथाकथित मीराँ के पदो की रचयित्री यह कौन देवी है? इस घटना पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से खोज करने पर बहुत सम्भव है कि मीराँ के जीवन पर गहरा प्रकाश पड सके।

पद की सातवी पक्ति "मेडतिया कहायो" दूसरी विचारणीय पदाभिव्यक्ति है। स्पष्ट ही इस पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबध नही मिलता। भाषा की दृष्टि से भी यह पक्ति विचारणीय है। सम्पूर्ण पद की भाषा ठेठ राजस्थानी है, परन्तु इस पक्ति पर ब्रजभाषा की छाप है।

पद की अतिम पक्ति मे प्रयुक्त "जन" शब्द विचारणीय है। पूर्वापर सबध को देखते हुए यह शब्द "भक्त" के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। सत-मत से प्रभावित तथाकथित मीराँ के कुछ पदो मे 'जन' शब्द का प्रयोग मिलता है। अन्तिम तीनों पक्तियों की भाषा शेष पद से भिन्न पडती है। सम्पूर्ण पद की भाषा पुरानी राजस्थानी है जब कि इन तीन पक्तियो की भाषा आधुनिक राजस्थानी ही कही जा सकती है। क्या यह सभव नही है कि यह तीन पक्तिया ही पीछे से जुडा ली गयी हों। यो भी, पदको प्रामाणिक मान लेने पर अद्यावधि मान्य वृत्तान्त को बहुत कुछ बदल देना होगा।

१७

इण सरवरिया री पाल मीराँ बाई सापडे[१]।
सापड किया असनान सूरज सामी[२] जप करे।
होय बिरगी[३] नार डगरा[४] बीच क्यूँ खडी?
काई थारो पीहर दूर घराँ सासू लडी?

१ तैर रही है, २ सम्मुख, ३ उत्साहहीन, उदास, ४ रास्ते।

चल्यो जा रे असल गुवार[1] तन्ने[2] मेरी के पड़ी ।
गुरु म्हारा दीनदयाल हीरा रा पारखी।
दियो म्होने ज्ञान वताय, संगत कर साध री।
खोई कुल की लाज, मुकुन्द थारे कारणे।
वेग ही लीज्यो सम्हाल मीराँ पडी बारणे[3] ॥१८०॥†

यह पद कुछ हेरफेर से निम्नांकित रूप मे भी मिलता है

"गाई थाँरो पीहर ··· सासू लड़ी ।" पंक्ति के बाद निम्नांकित पंक्ति है :—

"नहिं म्हारो पीहर दूर घरा सासू लड़ी" जो पूर्वापर सगति को दखते अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

"दियो म्हाने ·· साध री" पंक्ति के बाद निम्नांकित चार पंक्तियाँ है

इण सरवरिया रा हस, सुरग थाँरी पाखड़ी।
राम मिलण कब होय फड़ुके म्हाँरी आँखड़ी।
राम गये वनवास को सब रंग ले गये।
ले गये म्हाँरी काया को सिंगार, तुलसी की माला दे गये।"

पूर्वापर सबध देखते उपर्युक्त पंक्तियाँ उपयुक्त नही प्रतीत होती। इस पदके अन्य पाठान्तरो मे भी इसकी प्रथम दो पंक्तियां हू-बहू आयी है। अन्तिम दोनो पंक्तियो की अभिव्यक्ति विचारणीय है।

पाठान्तर १,

ऊभी मीराँ सरवरिया री पाल, मन में आमण दूमणी[4]।
भर भर धोबा धोये नैंन साधा रे सग जोवती[5]।

---

१ मर्ख, २ तुमको, ३ शरण, ४ आमणदूमणी . आशकाजनित व्याकुलता, व्याकुलतायुक्त ५ प्रतीक्षा करती।

तू छे ए भले घर री नार[1] गेले बीच क्यूँ खड़ी।
के थारो पियो परदेस के थाँरी सासू लड़ी।
चल्यो जा रे असल गवार तन्ने मीराँ की के पड़ी।
चल्यो जा रे असल गवार तन्ने मेरी के पड़ी।
म्हारे हर गया वनवास ने सदेशा ओ हर ने ज्यूँ खडी।
पोवे मोतीड़ारो हार हीरा री राखड़ी[2]।
राधा रुक्मण को नोसर हार किसन जी की राखडी।
उड जा उड जा सरवरियाँ हस जो सुरग थारी पाखडी।
कद आसी गोपिया वालो कान्ह फरुखे बाई आखड़ी।
सतगुरु मिलिया चतुर सुजान हीरा रा कहिए पारखी।

पाठान्तर २,

ऊभी मीरा, सरवरिया री पाल,
ऊदासी मीराँ क्यूँ खडी, थे छो भले घर की नार।
के थारो पियो दूर, काई थाने सासु लडी।
ना म्हारो पियो दूर, ना सासु लडी।
जा न जा असल गँवार, मीराँ की तन्ने के पड़ी।
आज म्हाँरा हर गया वनवास ने, सदेशा ल्यूँ खड़ी।
गया है तो मीराँ जान भी द्यो, थारो काई ओ ले गया गोपाल।
ले गया ले गया म्हारा हर जी सोलह सिणगार।
ढक गया प्रभुजी सजन किवाड़।
ताला ढँक कूँची[3] ले गया।
कद म्हाँरा प्रभुजी आवे वनवास सदेशा ल्यूँ खड़ी।
उड जा उड जा सरवरिया रा हस सोने मे गढा द्यूँ तेरी चाँच
रूपे मे गढा दूँ तेरी पाखड़ी।

---

१ स्त्री। नारी राजस्थानी में शब्द की मात्राओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। प्राय अकार और इकार लय की सुविधानुसार परिवर्तित हो जाते हैं।
२ राखी, शुभ समझा जाने वाला एक प्रकार का जेवर, ३ ताली।

मीराँ पोवैं मोतीडारो हार, भल गूँथे राखडी।
फड़ूके म्हाँरी आखँडी।
आज म्हाँरा प्रभु जी आया वनवास, फरूखै म्हारी आखँडी।
यूँ कहै मीराँ वाई।

इस पाठान्तर की एक पक्ति "ना म्हाँरो पियो दूर ना सासु लडी" विशेष विचारणीय है, क्योंकि इससे मीराँ का सधवा होना सिद्ध होना है।

पाठान्तर ३,

(तू तो) साँवड़ली गोरी नार, मारग बिच क्यो खड़ी।
(मीराँ) काँई थाँरी दूपै छै आख कै घराँ सास लड़ी।
(मीरा) काइ थाँरो पिया परदेस सदेसै यो पड़ी।
(तू तो) चल्यो जा रे असल गँवार, तुझे तो मेरी क्या रे पड़ी।
(तू तो) उड़ रे हरिया वनका सूवटा[1] तू तो उड़ रे द्वारिका मे जाय
साँवरिया ने, कहियो ओल्मा[2]।
मीराँ क्याँ पर लिखोला[3] सलाम[4], क्याँ पर तो करड़ा[5] ओल्मा।
सूआ चूंचा पै लिखूंली सलाम परँवा[6] पै करडा ओलमा।
मीराँ ग्यारसने करो जी निहार[7] बारम ने खोलो पारनों[8]।
मीराँ तेरस ने चालै दीनानाथ, चौदस ने हरि आ मिले।
राणा थे छो म्हाँरा झूठा भरतार, साचा छै श्री हरि साँवरा।

यह पाठान्तर अन्य पदो से कुछ अलग पड़ता है। इसकी कुछ पक्तियाँ खडी बोली से प्रभावित है और शैली राजस्थानी लोक गीतो से। "सलाम" लिखने की जैसी अभिव्यक्ति राजस्थान के अन्य लोकगीतो म भी मिलती है। मुगलो के विरुद्ध अपने कठिन विरोध के होते हुए भी

१ तोता, २ शिकायत, ३ लिखोगी, ४ नमस्कार, ५ कठिन, ६ पख ७ निराहार ८ व्रत।

राजपूतो की भाषा पर, वेशभूषा पर, रहन सहन पर मुगल दरबार का प्रभाव पडा था। कुछ ऐसे लोकगीतो में जिनकी अभिव्यक्ति के आधार पर परवर्त्ती काल का कहा जा सकता है, "सलाम" लिखने की अभिव्यक्ति मिलती है। इस पाठान्तर की भाषा और शैली के आधार पर इसको भी गेय रूपान्तर मात्र ही समझना संगत होगा।

पद की अन्तिम पक्ति से व्यक्त होती भावना भी विचारणीय है। मीराँ के पदो की अभिव्यक्तियो व परम्परागत मान्यताओ दोनो के ही आधार पर मीराँ का विधवा होना प्रमाणित नही होता।

१८

सिसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो काई कर लेसी।
म्हे तो गुण गोविन्द का गास्या हो माई।
राणो जी रुठ्यो वारो देस रखासी।
हरि रूठ्या कुम्हलास्या हो माई।
लोक लाज की काण न मानूं।
निरमै निसाण घूरास्या हो माई।
राम नाम का झाझ[1] चलास्यां भव सागर तिरजास्या हो माई।
मीराँ सरण सावल गिरधर की, चरण कवल लपटास्या हो माई।
॥१८१॥

कही पद की चतुर्थ पक्ति मे प्रयुक्त "कुम्हलास्या" के बदले "कठे जास्या" "किये जास्या" या "कोठे जास्या" का प्रयोग भी मिलता है। "किये" राजस्थानी भाषा का शब्द नही है और 'झेठे' अर्थहीन प्रतीत होता है। "कठे जास्या" पाठ असगत भी नही ठहरता तथापि यह कहना कि "कुम्हलास्या" या "कठे जास्या" दोनो मे से कौन पाट प्रामाणिक है, सम्भव नही।

---

१ जहाज।

१९

राणो जी मेवाड़ो, म्हारो काई करसी।
म्हे तो गोविन्दरा गुण गास्या हो माय।
राणा जी रूससी गांव रखासी।
हरि रूस्या कुम्लास्या हो माय।
म्हारो तो पण चरणामत रो,
नित उठि मदिर जास्या हे माय।
मदिरया मे माधुरी मूरति निरख निरख गुण गास्या हे माय।
राणो जी भेज्या विषरा प्याला, कर चरणामृत पीस्या हे माय।
राणो जी भेज्या साप पिटारा, तुलसी की माला कर पैरा हे माय।
हाथा से करताल वजावा घूघरिया धमकास्या[1] हे माय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणा चित ध्यास्या[2] हे माय।
॥१८२॥

२०

राणा जी मेवाड़ो म्हारो काई करसी।
मैं रूसियो राम रिझाया ये माय।
राणो जी रूठ्या गाव रखासी,
हरि रूस्या कुम्हलास्या ये माय।
तन करताल, मना कर मोहचिग,[3]
घूघरिया धमकास्या ये माय।
राणो जी भेज्या विष को प्यालो,
कर चरणामृत पीस्या ये माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि चरणा चित लास्या ये माय॥१८३॥

---

१ वजाऊँगी, २ ध्यान करूँगी, ३ डफली।

२१

रसियो राम रिझास्यां हे माय
राणो जी मेवाड़ो म्हांरो काईं करसो।
राणो रूससी गाव रखासी,
हरि रूस्या कुम्हलास्या हे माय।
गोपी चन्दन गगारी माटी,
घसि घसि अग लगास्या हे माय।
श्री तिलक तुलसी की माल,
नित उठि मदिर जास्या हे माय।
बाध घूघरा निरत करा म्हे,
कर सूं ताल बजास्या हे माय।
राणो भेज्यो विषरो प्यालो,
चरणामृत करि पीम्या हे माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
हरि चरणा चित लास्या हे माय॥१८८॥

पद स० २० की द्वितीय पक्ति के पूर्वार्द्ध में निम्नाकित पाठ भेद मिलता है, 'हरि रूठ्या मर जास्या'। इस पाठ में भी सर्प भेज जाने की कथा का वर्णन नहीं मिलता। साथ ही, वैष्णव प्रभाव का विशेष स्पष्ट हो उठना इस पाठ की विशेषता है।

२२

मेरे राणा जी मैं गोविन्द गुण गाना।
राजा रूठे नगरी राखै, हरि रूठ्या कहा जाना।
राणा भेज्यो जहर पियाला अमृत करि पी जाना।
डबिया में काला नाग भेजिया, सालगराम कर जाना।
मीराँ बाई प्रेम दिवानी ·सावलिया वर पाना॥१८५॥

पद की भाषा पर आधुनिक प्रभाव विचारणीय है। सर्प भेजे जाने की कथा का भी वर्णन इस पाठ मे हुआ है। परन्तु यहाँ "नाग" का "सालिगराम" हो जाना ही सिद्ध होता है, जब कि पद सं० १९ के अनुसार वही "नाग", "तुलसी की माला' मे परिवर्तित हो जाता है। "नाग" भज जाने की कथा ही प्रक्षिप्त सिद्ध होती है।

२३

राणा जी मैं तो गोविन्द का गुण गास्या।
चरणामृत को नेम हमारे, नित उठि दरसन जास्या।
हरि मदिर मे निरत करास्या, घूघरिया धमकास्या।
शनम नाम का जहाज चलास्या, भवसागर तर जास्या।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर,निरख परख गुण गास्या ॥१८६॥

२४

राणो म्हारो कहाई कर लेसी राज, म्हे तो छोड़ी कुल की लाज।
पगा तो बाध्या घूघरा जी, हाथा बनाबा ताल।
भो सागर महा रो माहिरो[1] जी, हरि चरणा सूं प्यार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जास्या द्वारिकानाथ ॥१८७॥†

उपर्युक्त पद की अन्तिम दो पक्तियो मे निम्नाकित पाठान्तर मिलता है —

'भो सागर तुमरो जी ससुराल हरि चरणा पीहर छै जी।
मीराँ कहै जास्या द्वारिका जी वैकुठरा बास।"

उपर्युक्त पद की अन्तिम दोनो पक्तियो के दोनो पाठ विशेष विचारणीय हे। अन्य पदो से दोनो की तुलना करने पर उनकी प्रक्षिप्तता ही इगित होती है।

१ पीहर।

२५

म्हारो मनडो राजी राजा जी।
काइ करैसा म्हारो दुरजन पुरजन।
काईं करैला झूठा पाजी जी।
काई करैला म्हारो राजा राणी।
कांई करैलां मुल्ला काजी जी।
राम प्रीतम सुं हिलमिल खेलू।
परत न छोड़ू वाजी जी।
मारॉं के प्रभु प्रात पुरवली।
तुम मत जाणो आजी[1] जी ॥ १८८ ॥

सम्पूर्ण पद विशेष विचारणीय है। "मुल्ला काजी" आदि वर्णन स पद की प्रामाणिकता विशेष संदिग्ध है। पद मे प्रथम पक्ति को छोडकर हर जगह "करैला" क्रिया का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है, करेंगे। केवल प्रथम पक्ति में यह 'करैला' 'करैसा' में परिवर्तित हो गया है। सम्पूर्ण पद की सगति देखते हुए "करैला" होना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

२६

गिरधर म्हारा साचा पति छै, मैं गिरधर री दासी हे माय
राणो जी म्हासू रुस रह्यो छै, कडा वचन निकासै हे माय।
राणो कहै सोरा कन माना म्हें, साध दुबारैं नित आसी हूँ माय।
मीराँ के प्रभु सेज चढै जब, ठाढी करै खवासी हे माय ॥१८९॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

२७

गिरधर म्हारे मन भाया मोरो माय, राणो जी म्हारे दाय न आवै।
राणा जी म्हासे रूस रह्यां छै, कुडा वचन सुनाया।

१ सम्भवत इसका भावार्थ "इस समय" हो सकता है।

गुरु कृपा से सत पधार्‌या, सता स्याम मिलाया ।
मीराँ की प्रभु आस पुजोई[1], गिरिधर सगा आया ॥१९०॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। अन्तिम पक्ति से आनन्द ही लक्षित होता है।

२८

राणो जी हट माड्यो[2] म्हासू,गिरधर प्रीतम प्यारा जी।
वो तो मद माया रो आधो, थे मत हो ज्यो न्यारा जी।
साची प्रीत लगी है तुम सूं झक मारो ससारा जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर थाने,भक्त पियारा जी।
॥१९१॥†

२९

राणा जी म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारो हो,
राणा जी म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारे।
व्यापक होय रह्यो घट घट में, है सब ही से न्यारे।
सबको सरजण हारो, अन्तर घट की सबही जाणे।
आप तो भेज्या विषरो प्याला दे मीराँ ने मारो।
कर चरणामृत पी गई जी, गिरधर संकट टारो।
जनम जनम रो पति परमेश्वर राणी जी कोन विचारो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साचो बंसरी वारो॥१९२॥†

३०

निन्दा म्हारी भलाई करो नै सोने काट न लागै
जोग लियो जग जातो देख्यो हरि भजवा के काजै।

१ परिपूर्ण की, २ बनाया, यहाँ होगा जिद्द की ।

जो कोई करणी मे चूक पड़ै तो सतगुरु म्हांरा लाजै।
धन रे लोक थारी करणी कीड़ी रो कुंजर वरगायो।
अण दीठी अण सामलेरे, वद वद वाद उठायौ।
कुल कूं छाडि कड़वो छाड्यो छाँड़ी ममता भाई।
और दुनिया को दावो छोड़चो मन मरवै ज्यूं कहियौ।
यो जस मीरांवाई गावै ज्यूं कहीयौ ज्यौं सहीयौ॥१९३॥†

३१

तुलसा की माला हिवड़ लागी जी "मेवाड़ राणा" राम ताण गुण गास्या।
लिख पत्तर राणूं मीराँ नै भेज्या सग साध पिस्तास्यो जी।
लिख रे पत्तर मीरा राणा जी नै भेज्या साधूड़ा संग सुख पास्या जी।
विसरा पियाला राणा जी भेज्या पिवता पिवता म्हानै आवै हासो जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणा मे चितल्यास्या जी॥१९४॥†

पदाभिव्यक्ति का प्रथम अर्द्धांश अन्य पुरुष में है, जब कि द्वितीय अर्द्धांश प्रथम पुरुष में है। अत. पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है। मीराँ और राणा द्वारा एक दूसरे को पत्र भेजे जाने की अभिव्यक्ति और भी पदो मे मिलती है।

३२

मेड़तिया रा कागद आया, बाई मीराँ ने जा खीज्यो[1] जी।
मोहत[2] भात से लिख्या ओलमा, कुल कै दाग[3] मति दीज्यो जी।
साधा को सग परो निवारो, वेद साख[4] सुण लीज्यो जी।
मीराँ प्रभु को संग छाड़्यो, पति आज्ञा मे रीज्यो जी॥१९५॥†

---

१ नाराज होना, २ बहुत, ३ कलंक, ४ साक्षी।

पद विशेष महत्वपूर्ण है। यह एक ही पद ऐसा है जिसमें "मेड़तिया रा कागद" (मेड़तिया के यहाँ से आया हुआ पत्र) का वर्णन है। इस पद के आधार पर मीराँ का सधवा होना ही प्रामाणित हो जाता है। पद का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कहा जाना भी अभिव्यक्ति से ही सुस्पष्ट हो उठता है। अत: ऐसे पदों की प्रामाणिकता की विशेष विवेचना आवश्यक है।

३३

हो जी हो सिसोद्या राजा मनड़ो वैरागी धन[1] रो क्या करूं।
जहर का प्याला राणा जी भेज्या कोई द्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत मीराँ पी गई कोई आप जाणो रघुनाथ।
साप पिटारा राणा जी ने भेज्या कोई द्योने मीराँ ने जाय।
कर खग वालो पहिरयो कोई आप जानो दीनानाथ।
राणा जी दासी भेज्या कोई जावो ने मीराँ पास।
मर गया होय तो जला दीज्यो नातर नदी में बहाय।
हो जी हो सिसोद्या राजा मनड़ो, वैरागी धन रो क्या करूं।

॥१९६॥

राणा जी द्वारा मीराँ के पास दासी भेजे जाने की सर्वथा नवीन कथा ही इस पद की विशेषता है। कथानक की प्रामाणिकता सर्वथा संदिग्ध होते हुए भी राणा और मीराँ के पारस्परिक संबध के प्रति चली आती परम्परागत भावना सुस्पष्ट हो जाती है। पद की शैली वर्णनात्मक है। अस्तु, यह पद तत्कालीन भावनाओं का प्रतिबिम्ब ही कहा जा सकता है।

३४

राणो म्हाने ऐसी कही महाराज।
भक्तन[2] होय मीराँ जगत लजायो,कीन्हों सारो साज।

---

१ स्त्री। २ विशेष उत्सव के अवसरों पर नाचने गाने वाली एक निम्नजाति विशेष की स्त्री जो 'भगतन' के अर्थ में रूढ़ि वाचक हो गया है।

जावो ने मीराँ म्हानें मुख न दिखावो, म्हाने आवै थारी लाज।
लाजै मीराँ पीहर सासरो, और लाजै म्हारो साज[१]।
गोपी चन्दन तुलसी की माला, भीख मागत्यारो[२] साज।
धन मीराँ धनि मेड़तो, धनि राठोड़ारो राज।
मीराँ के प्रभु अविनासी, चलि आयो व्रजराज ॥१९७॥†

३५

राणा जी हों जाति रो कारण म्हारे को नही
लागो म्हारो हरि भगतां सूं हेत।
विदुर कुला घरि जनमिया ज्या कै पावणा हुवा गोपाल
वदि छुडाई वसुदेव की कंस कियो खो काल।
पाचू पाडू छटी द्रोपदी ज्या की न्यारी न्यारी जात,
सहस अठ्यासी मुनि आविया जाकी पण राखी रघुनाथ।
वन में होती स्योंरी भीलणी ज्यांहका ओरग्य[३] ठाकुर बोर।
ऊच नीच हरि ना गिणै ऐसी म्हारा हरि भगता की कोर।
येक वेल दोय तूंबडा ज्याहूं की छै न्यारी न्यारी जात,
एक तूंबो जंतर[४] चढ़ै, दूजो हरि भगतां कै हाथ।
सख समदा[५] नीपजै ज्याहू की न्यारी न्यारी जात,
एक सख सेवा[६] चढै दूजौ भो पड़ता के हाथ।
एक माटी दोय कलस है ज्याहूं की न्यारी न्यारी जात,
एक कलस सेवा चढै दूजो कलाला रै हाथ।
कलक कटोरे विष घोलियो दियो मीराँ के हाथ,
हरि चरणोदक करि पी लियो हरि जी भयो सुनाथ।
सब मिलि मत उपाइयो मीराँ नै विष द्योहा कहियौ,
सुण्यो मानै नाहि नीच लग्यो हठ योह।

---

१ वभव, ठाठ, २ माँगने वालों का, ३ खाया, ४ वाद्य-यंत्र
५ समुद्र, ६ पूजा।

नगर बसै बामण बाणिया भीतर शुद्र पवार,
मुहुँ मोड़े मुलवया हसे समझे नही गवार।
गढ चितौडा न रहा नही रहणा को जोग,
बसस्या सुड़ी द्वारिका जहाँ हरि भगता का भोग।
परख लेत परचो भयो मन उपज्यो विस्वास,
सिर पर सिरजन हार रहै पूगी म्हां मन की आस।
कुम्भ श्याम के देवरे मिली है राणौ राणूँ,
मीराँ ने गिरधर मिलिया कोई पूरवली पहिचाण।
॥१९८॥†

पदाभिव्यक्ति के प्रथम और द्वितीय अर्द्धांशो मे कोई सगति नही बैठती प्रतीत होती। मीराँ द्वारा किए गए गृहत्याग का कारण भी अति स्पष्ट हो उठता है। कुम्भश्याम के मदिर के साथ मीराँ के जीवन की किसी घटना का सम्पर्क भी उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट हो उठता है। ऐसी अभिव्यक्ति इस पद की नवीनता है। इस पद की शैली भी वर्णनात्मक ही है।

३६

प्रभु जी अरज बन्दी री सुण हो।
मो निगुणी ए सुगुण साहब अवगुण धारी ए गुण हो।
राणा जी विप को प्यालो भेज्यो मो चरणामृत को पण हो।
म्हारी पत परमेश्वर राखत, मारण वालो कुण हो।
प्रभु जी उचलें[1] मदिर (सीतारामजी) विराजे दरसण रोयण हो
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मैं जाणु प्रभु जी कुण हो।
॥१९९॥

पदाभिव्यक्ति में सगति नही है।

---

१ ऊँचे।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

म्हारे सिर पर सालिगराम, राणाजी म्हारे काई करसी।
मीराँ सूँ राणा ने कही थे, सुण मीराँ मोरी वात।
साधो की सगत छोड़ हो रे, सखिया सव सकुचात।
मीराँ ने सुन यों कही रे, सुण राणाजी बात।
साध तो भाई वाप हमारे, सखियाँ क्यूँ घवरात।
जहर का प्याला भेजिया रे, दीजो मीराँ हाथ।
अमृत कर के पी गई रे, भली करे दीनानाथ।
मीरा प्याला पी लिया रे, वोली दोऊ कर जोड।
तैं तो मारण की करी रे, मेरी राखणहारो और।
आधे जोहड कीच है रे, आधे जोहड हौज।
आधे मीराँ एकली रे, आधे राणा की फौज।
काम क्रोध को डाल करे सील लिए हथियार।
जीती मीराँ एकली रे, हारी राणा की धार।
काचागेरी का चौतरा रे, वैठे साध पचास।
जिनमे मीराँ ऐसी दमके रे, लख तारो मे परकास।
टाडा जब वे लादिया रे, वेगी दीन्हा जाण।
कुल की तारण अस्तरी रे, चली हे पुष्कर न्हाण ॥२००॥†

अधिकाश सघर्ष द्योतक पदो की तरह यह पद भी वर्णन और कथनोपकथन दोनो ही शैलियो मे है। "काचगिरी का चोनरा" का वर्णन इस पद के महत्व को विशेष रुपसे वढा देता है। "पुष्कर न्हाण" की अभिव्यक्ति प्रायः अन्य पदो में भी मिलती है।

२

राणा जी थे जहर दियो म्हें जाणी।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत वारह वाणी।

नगर वसै बामण बाणिया भीतर शुद्र पवार,
मुहुँ मोड़े मुलवया हसे समझे नही गवार।
गढ चितौडा न रहा नही रहणा को जोग,
बसस्या सुडी द्वारिका जहाँ हरि भगता का भोग।
परख लेत परचो भयो मन उपज्यो विश्वास,
सिर पर सिरजन हार रहै पूगी म्हा मन की आस।
कुम्भ श्याम के देवरे मिली है राणौ राणूँ,
मीराँ ने गिरधर मिलिया कोई पूरबली पहिचाण।
॥१९८॥†

पदाभिव्यक्ति के प्रथम और द्वितीय अर्द्धांशो मे कोई संगति नही बैठती प्रतीत होती। मीराँ द्वारा किए गए गृहत्याग का कारण भी अति स्पष्ट हो उठता है। कुम्भश्याम के मदिर के साथ मीराँ के जीवन की किसी घटना का सम्पर्क भी उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट हो उठता है। ऐसी अभिव्यक्ति इस पद की नवीनता है। इस पद की शैली भी वर्णनात्मक ही है।

३६

प्रभु जी अरज बन्दी री सुण हो।
मो निगुणी ए सुगुण साहव अवगुण धारी ए गुण हो।
राणा जी विप को प्यालो भेज्यो मो चरणामृत को पण हो।
म्हारी पत परमेश्वर राखत, मारण वालो कुण हो।
प्रभु जी उचले[1] मदिर (सीतारामजी) विराजे दरसण रोयण हो
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मै जाणु प्रभु जी कुण हो।
॥१९९॥

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है।

---

[1] ऊँचे।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

म्हारे सिर पर सालिगराम, राणाजी म्हारे काई करसी।
मीराँ सूँ राणा ने कही थे, सुण मीराँ मोरी बात।
साधो की संगत छोड़ हो रे, सखिया सब सकुचात।
मीराँ ने सुन यो कही रे, सुण राणाजी बात।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यूँ घबरात।
जहर का प्याला भेजिया रे, दीजो मीराँ हाथ।
अमृत कर के पी गई रे, भली करे दीनानाथ।
मीराँ प्याला पी लिया रे, बोली दोऊ कर जोड।
तैं तो मारण की करी रे, मेरी राखणहारो और।
आधे जोहड कीच है रे, आधे जोहड़ हौज।
आधे मीराँ एकली रे, आधे राणा की फौज।
काम क्रोध को डाल केरे सील लिए हथियार।
जीती मीराँ एकली रे, हारी राणा की धार।
काचागेरी का चौतरा रे, बैठे साध पचास।
जिनमे मीराँ ऐसी दमके रे, लख तारों में परकास।
टाडा जब वे लादिया रे, बेगी दीन्हा जाण।
कुल की तारण अस्तरी रे, चली हे पुष्कर न्हाण ॥२००॥†

अधिकाश सघर्ष द्योतक पदो की तरह यह पद भी वर्णन और कथनोपकथन दोनो ही शैलियो मे है। "काचगिरी का चोनरा" का वर्णन इस पद के महत्व को विशेष रूपसे बढा देता है। "पुष्कर न्हाण" की अभिव्यक्ति प्राय. अन्य पदों में भी मिलती है।

२

राणा जी थे जहर दियो म्हें जाणी।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बारह वाणी।

लोक लाज कुल काण[1] जगत की, दइ वदाय जस पाणी।
अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लाग्यो मेरे हिय रे, गरक गयो सनकाणी।
सब संतन पर तन मन वारो, चरण कवल लपटाणी।
मीरां के प्रभु राखि लई है, दासी अपनी जाणी ॥२०१॥

पाठान्तर १,

राणा जी जहर दियो हम जानी।
जानबूझ चरणामृत सुन के पियो, नही बौराणी।
जिन हरी मेरी नाव निवेरियो, छान्यो दूध अरु पानी।
कचन असत कसौटी जैसे, तन रह्यो बारह् बानी।
राणा कोट करु न्योछावर, मै हरि हाथ बिकानी।
मीरां प्रभु गिरिधर नागर, के चरण कवल लिपटानी।

पाठान्तर २,

राणा जी जहर दियो हम जानी।
अपने कुल को परदा कर ले, मैं अबला बौराणी।
राणा जी परधान पठायो, सुन जो जी थे राणी।
जो साधन को सग निवरो, करा तुमे पटराणी।
हथलेवी राणा सग जुड़ियो, गिरधर घर पटराणी।
क्रोड भूप साधन पर वारुं, जिन की सरण रहाणी।
मीरां को पति एक रमैया, चरण कंवल लपटानी।

पाठान्तर ३,

जहर दियो म्हे जाणी।
राणा जी थे तो अपने कुल को परदो कर ले मैं अबला बौराणी।

---

१ मर्यादा।

मेरी तेरी न्याव प्रभु के आगे, छाण दूध र पानी।
जैसे कंचन कसत कसोटी, होत है वारावानी।
कटि नृपति वारुं संतन पर, जिनके हाथ विकानी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल लिपटानी।

पाठान्तर ४,

जहर दियो म्हे जानी, राणा जी म्हाने।
हरप सोग मेरे मन नाही, नही लाभ नही हाणो।
कचन लेर अगिन मे राख्यो, निकस्यो वारावाणी।
अब तो प्रभु तुम ही पत राखो, छाणो दूध र पाणी।
राणो वचन उचारिया जी, सुणजो म्हारी वाणी।
साधारो सग परो निवोरो, थाने करा पटराणी।
कोट भूप वारो सता पर, सता हाथ विकाणी।
हथलेवा म्हें या सूँ जोड्यो, गिरधारी पटराणी।
पीहर म्हारो मेड़तो जी, छाडि कुल की काणी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कवल लिपटानी।

इस पद का द्वितीय अर्द्धांश कथनोपकथन की शैली मे है जो अन्य पाठान्तरो स भिन्न पडता है। जो सदेश प्रथम पाठान्तर मे राणा के भेज हुए 'परधान' ने दिया है, वही सदेश इस पाठान्तर के अनुसार स्वय राणा द्वारा दिया गया है। 'पीहर म्हारो मेडतो जी' इस पाठ की नूतन अभिव्यक्ति है।

पाठान्तर ५,

जहर दियो सो जाणी राणाजी म्हाने जहर दियो सो जाणी।
हरक और सोक म्हारे मन नाही, नाही लाभ नाही हानी।
कचन लेर अगिन मे राख्यो निकास्यो वारावानी।
अब तो प्रभु तुम ही पत राखो छानो दूध र पानी।
राणाजी सो वचन उचार्‌यो, सुणज्यो म्हारी वानी।

साधां रो सग परो निवररो, थाने करा पटराणी।
कोट भूप वारा सतन पर, जिनके हाथ विकाणी।
हथलेवा मैं थास्यूं जोडयो, गिरधररी पटराणी।
पीहर म्हारो देस मेड़तो, छाडी कुल की काणी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कवल लिपटानी।

उपर्युक्त दोनो पाठान्तर एक दूसरे के गेय रुपान्तर मात्र प्रतीत होते है।

सभी पाठो से व्यक्त होती भावना "अपने घर का परदा कर ले, मैं अवला वौराणी" भाव और भाषा दोनो ही दृष्टिकोण से विशेष विचारणीय है। दूसरी विचारणीय अभिव्यक्ति है "हथलेवी राणा सग जुड़ियो, मैं गिरधर पटराणी" जो सभी पाठो मे मिलती है। यह पद और उसके सभी पाठान्तर भाव और भाषा दोनो ही दृष्टिकोण से विशेष रूप से विचारणीय है।

३

म्हारा नटनागर गोपाल लाल विन, कारज कौन सुधारे।
घूम रह्यो दुरयोधन राजा, जैसे गज मतवारो।
सिह होय केर हस्ती[1] मारे, वड़ो भरोसो थारो।
मीरा ने राणा जी वरजै, मतना जनम विडारे[2]।
थे सगत साध की सीख्या, मत आयो महल हमारे।
म्हे सगत साध की सीख्या, थारे कछुय[3] न सारे[4]।
तन मे रीस भई राणा के, उठ खडग ले मारे।
प्याला मे विष घोल राणा जी, मन मे कपट विचारे।
अमृत कर क मीरां पी गई, जहर सावरो झारे।
जव जव पीड परी भक्तन पर, आप ही कृष्ण पधारे।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, हरि भक्ताने न्यारे ॥२०२॥†

१ हाथी २ जय पाना ३ जरा भी ४ महारे।

"मीराँ ने·····न सारे" जैसी तीन पंक्तियाँ कथोपकथन शैली में लिखी गयी हैं। शेष सम्पूर्ण पद वर्णनात्मक शैली मे है। अन्तिम पक्ति अर्थ हीन है।

४

राणो म्हांरो काई करिहै, मीराँ छोड़ दई कुल लाज।
विष को प्यालो राणाजी ने भेज्यो, मीराँ मारन काज।
हँस के मीरा पाय गई है, प्रभु परसाद पर राग।
डब्बो खोल मीराँ जब देख्यो, है गये सालिगराम।
जै जै धुनि सब सत सभा भई, कृपा करि , घनश्याम।
सजि सिंगार पग बाँध घूंघरू, दोऊ पर देती ताल।
ठाकुर आगे नृत्य करत ही, गावत श्री गोपाल।
साध हमारे हम साधन के, साध हमारे जीवन।
साधुन मीराँ मिलि जा रही है, जिमि माखन मे घीव॥२०३॥†

प्रथम पक्ति के अतिरिक्त जो कथनोपकथन की शैली में है, सम्पूर्ण पद वर्णनात्मक शैली मे है।

५

मेरो मन हरिसूँ जोर्‌यो, हरि सूँ जोर्‌यो सकल सूँ तोर्‌यो।
मेरी प्रीति निरन्तर हरि सूँ, ज्यूँ खेलत वाजीगर गोर्‌यो।
जब मैं चली साध के दरसण कूँ, तब राणा मारण को दोर्‌यो।
जहर देन की घात विचारी, निरमल जल मे ले विष घोर्‌यो।
जब चरणोदक सुण्यो सखणा[1], राम भरोसे मुखमें ढोर्‌यो।
नाचन लागी तब घूंघट कैसो, लोक लाज तिणका ज्यूँ तोर्‌यो।
नेक वदी हूँ सिर पर धारी, मन हस्ती अकुस दे मार्‌यो।
प्रकट निसान वजाय चली मैं, राणा राव सकल जग जोर्‌यो।
॥२०४॥†

---

१ कानों से।

सम्पूर्ण पद में मीराँ का नाम या ऐसी कोई अभिव्यक्ति, जिसके आधार पर पद मीराँ रचित होना स्पष्ट हो सके, नही है।

६

यो तो रग धत्ता लाग्यो ए माय।
पिया पियाला अमर रस का, चढ गई धूप घुमाय।
या तो अमल म्हारे कबहूँ न ऊतरे, कोटि करो उपाय।
साप पिटारो राणा जी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार।
हँस हँस मीराँ कठ लगायो, यो तो म्हारे नौसर हार।
विष को प्यालो राणा जी भेज्यो,द्यो मेड़तणी प्याय।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविन्दरा गाय।
पिया पियाला नाम का रे, और न रग सुहाय।
मीराँ कहँ प्रभु गिरिधर नागर, काची रग उड़ जाय।
॥२०५॥†

प्रथम पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है :—
"यो तो रग म्हारे श्यामसुन्दर को जनम जनम नहि जाय।"

पाठान्तर १,

किण विध कहूँ, कहण नही आवै, रह्यो घुमाय घुमाय।
गुरु प्रताप साध री सगत, हरिजन मिलिया आय।
किरपा करो तो प्रभु जी ऐसी कीज्यो, दूजी नाही सुहाय।
राणा जी विषरा प्याला भेज्यो, म्हे सिर ल्यो चढ़ाय।
चरणामृत को जब लीनो पीगी प्रेम अघाय।
पीवत ही अति चढी खुमारी, रह गई कहत सुमाय।
जिन मीराँ को पनवारी कीन्ही, पूरव जनम के भाय।

पाठान्तर २,

किण विध कहूँ कहण नही आवै, चढ्यो घुमाय।
गुरु प्रताप साध री सगत, हरिजन मिलिया आय।

किरपा करि मोहिं अपनाई, सब दुख दियो मिटाय।
राणा जी विषरा प्याला भेज्यो, म्हे सिर लियो चढ़ाय।
चरणामृत को नामज लीनों पीगी प्रेम वहाय।
पीवत ही अति चढ़ि खुमारी अब थिर रह्यो न जाय।
जिन मीराँ मनवारी कीन्ही, पूरव जनम के भाय।

पद के तीनों ही पाठो पर सत मत का प्रभाव दृष्टिगत होता है। यह प्रभाव पहले और दूसरे पाठान्तरो पर कुछ विशेष स्पष्ट हो जाता है। पहले और दूसरे पाठान्तरो में 'जिन मीराँ' का प्रयोग भी विचारणीय है। राजस्थानी गेय परम्परा के अनुसार लय सगति के हेतु जिण शब्द का जिन हो जाना स्वाभाविक है।

७

गिरधर के मन भाई हो राणा जी।
लोकलाज कुल की मरजादा, मैं तो छोड़ी है सकल बड़ाई।
पूरव जनम की मैं तो गोपिका चूक पड़ी मुझ माही।
जगत लहर व्यापी घट भीतर दीनी हरि छिटकाई।
जैमल के घर जनम लियो है राणा ने परणाई।
भोग रोग होय लागा मोरी सजनी गति प्रगट होय आई।
मात पिता सुत बाधव भाई, या सब झूठी सगाई।
परम सनेही प्रीतम प्यारो, जासूं मैं प्रीत लगाई।
जो थे पकड़ोरा हाथ हमारो तो खबरदार मनमाही।
देवगी सराप मैं साचां मन सूँ, कल जल भसम होय जाई।
जनम जनम की दासी राम की थारी नही लुगाई।
थारे मारे[1] फीरो सो[2] सगपण[3] गावै मीरांबाई ॥२०६॥ †

अभिव्यक्ति के आधार पर ही पद की प्रमाणिकता विशेष रूपेण संदिग्ध है। "जैमल घर जन्म लियो है" जैसी अभिव्यक्ति का कोई

---

१ म्हारे राजस्थानी के अनुसार शुद्ध है, २ फीरोसो (फिरोसो) हलका सा, ३ सम्बन्ध।

ऐतिहासिक आधार अद्यावधि प्राप्त नहीं। कुछ विद्वानों के मतानुसार मीराँ जैमलकी ही पुत्री ठहरती है, परन्तु इस पहलू के समर्थन में पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते हैं। पद की छठी पंक्ति में अर्थ संगति का अभाव है।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

माई री मे सांवलिया जान्यो नाथ।
लेन परचो अकबर आयो, तानसेन ले साथ।
राग तान इतिहास श्रवन करि, नाय नाय सिर माथ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कीन्ह्यो मोहि सनाथ ॥२०७॥

तानसेन को साथ लेकर मीराँ के पास अकबर के आने की जन-श्रुति है। परन्तु सामग्री के आधार पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ऐसा होना सम्भव नहीं। अस्तु, जब तक ऐसे पदो के समर्थन मे कोई विशेष प्रमाण न मिले इनको प्रक्षिप्त मान लेना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

२

मीराँ मगन भई हरि के गुण गाय।
साप पेटारा राणा भेज्या, मीराँ हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह् बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अंचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
मीराँ के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव मे मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय ॥२०८॥†

"सूल सेज ... सुलाय" के बाद निम्नांकित एक और पंक्ति भी कहीं कहीं मिल जाती है।

"सांझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।"

"सूल सेज" भेजे जाने की कथा का वर्णन इस पद की विशेषता है।

सम्पूर्ण पद की शैली वर्णनात्मक है। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी अन्य व्यक्ति ने मीराँ की प्रशंसा में यह पद लिखा है।

खड़ी बोली में प्राप्त पद

१

तेरा मेरा जिवड़ा यक कैसे होय राम।
हमने कहा सुरझावन राणा, तुम जाने मुरझाय राम।
हमने कहा निर्मोहित रहना, तुमतो जान मोहाय राम।
तेल जले तो जलती है बाती, दिवरा झलमल सोय राम।
जल गया तेल रे बुझ गई बाती, लच्चर लच्चर होय राम।
हमने कहा आंखिन का देखा, तुम कानों सुनि सोय राम।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, होनहार सो होय राम। ॥२०९॥†

पदाभिव्यक्ति में संगति का अभाव है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

आदि वैरागण छुं राणा जी मैं आदि वैरागिण छुं।
मीराँ वाध घूघरा रे, हाथ लिये करतार।
अमोरे गिरधर आगे नाची सुंरे, गुनगाई सुं रे गोपाल।
विपना प्याला राना मोकलियो रे, दीज्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत पी गया रे, अमोरे वासी श्री रघुनाथ ॥२१०॥†

२

आज मोरे साधु जन नो सगेरे, राणा, मारा भाग्य भला रे।
साधु जननो सग जो करिये, पिया जो चढ़े ते चौगुणो रग रे।
साकट जन नो सग न करिये, पिया जी पाडे भजन मे भग रे।

अड़सठ तिरथ सतो ने चरणे, पिया जी, कोटि काशी ने कोटि गंगरे।
निन्दा करसे तो नरक कुंड मा जशे, पिया जी, थशे आधला अपंगरे।
मीराँ कहे गिरधर ना गुण गायो, पिया जी, संतोनी रजमा शीरसंगे रे।
॥२११॥

३

मै तो छाड़ी छाड़ी कुल की लाज, रंगीलो राणा काई करसे माणा राज।
पाव मे बाधूगी घुंघरा, हाथ मे लेऊगी सितार।
हरि के चरणो आगे नाचती रे, काई रीझेगो करतार।
जहेर को प्यालो राणा जी भेज्यो, धरियो मीराँबाई हाथ।
करि चरणामृत पी गई रे श्री ठाकुर को परसाद।
राणा जी ये रीस करी भेज्यो, झेरी नाग असार।
पकड़ गले बिच डालियो, काई हो गयो चन्दन हार।
मीराँ को गिरधारी मिलिया, जनम जनम भरतार।
मै तो दासी जनम जनम की, कृष्ण कंत सरदार ॥२१२॥†

४

गोविन्दो प्राणो अमारो रे, मने जग लाग्यो खारो रे। गोविन्द।
मने मारो राम जी भावे रे, बीजो मारे नजरो न आवे रे। „
मीराँ बाई नां महल मा रे, हरि सतन नो वास। „
कपटी थी हरि दूर वसे, मारा सतन केरी पास। „
राणा जी कागज मोकले रे, दो राणी मीराँ ने हाथ। „
साधुनी सगत छोड़ि दो, तमो वसो नी अमारे साथ। „
मीराँ बाई कागज मोकले रे, दीजो राणा जी ने हाथ। „
राज पाट तमे छोड़ी राणा जी, वसो साधु ने साथ। „
विष नो प्यालो राणो मोकलिया रे, पीजो मीराँ ने हाथ। „
अमृत जानी मीरा पी, जे ने सहाय श्री विश्वनाथ। „
माढवाला साढ दानगारजे रे, जावुं सो सो रे कोश। „

राणा जी ना देशमा मारे जलरे पीवा नो दोश। ,,
डावो मैल्यो मेवाड़ रे, मीराँ गई पश्चिम माय। ,,
सरव छोड़ी ने मीराँ नीसयो, जेयुं भायामां मनहुं न काय। ,,
सासु अमारी सुषमणा रे, ससरो प्रेम सन्तोष। ,,
जेठ जगजीवन जगत मा, भारो नावलियो निर्दोष। ,,
चूँदड़ी ओढूँ त्यारों रंग चुवे रे, रंग बेरंगी होय। ,,
ओढूँ छुं कालो कामलो, दूजो दाग न लागे कोय। ,,
मीराँ हरिणी लाडली रे, रेहती संत हजूर। ,,
साधु संघाते स्नेह घणो, पेला कपटी थी दिल दूर।।२१३।।†

उपर्युक्त पद राजस्थानी में प्राप्त संघर्ष द्योतक विभिन्न पदों के विभिन्न अशो का सम्मिश्रण ही प्रतीत होता है। पद के उत्तरार्द्ध से सत मत का प्रभाव स्पष्ट है। इसी तरह की अभिव्यक्ति अन्य संत मत प्रभावद्योतक पदो में भी मिलती है।

५

म्हारे सिर पर सालिगराम, राणाजी म्हारे काई करसी।
मीराँ सूँ राणा ने कही रे, सुण मीराँ मोरी वात।
साधो की सगत छोड दे रे, सखिया सब सकुचात।
मीराँ ने सुन यो कही रे, सुन राणा जी वात।
साध तो माई वाप हमारे, सखिया क्यूँ धबरात।
जहर का प्याला भेजियारे, दीजो मीराँ हाय।
अमृत कर के पी गई रे, भली करैं दीनानाय।
मीराँ प्याला पी लियारे, वोली दोउ कर जोर।
तै तो मारण की करी रे, मेरो राखणहारो और।
आधे जोहड़ कीच हैं रे, आध जोहड़ हौज।
आध मीराँ एकली रे, आधे राणा की फौज।
काम क्रोध को डालकेर, सील लिए हथियार।

जीती मीराँ एकली रे, हारी राणा की धार।
काचगिरी का चौतरा रे, बैठे साध पचास।
जिन मे मीराँ ऐसी दमके, लख तारों मे परकास।
टाडा जब वे लादिया रे, वेगी दीन्हा जाण।
कुल की तारण अस्तरी रे, चली है पुष्कर न्हाण ॥२१४॥

पद की शैली और अभिव्यक्ति ही पद को प्रक्षिप्त सिद्ध करती है। पद का प्रारम्भ होता है दृढ विश्वास की अभिव्यक्ति से, परन्तु दूसरी ही पक्ति मे भावना वदल जाती है। चार पक्तियो में राणा और मीराँ के बीच सवाद है। संवाद की अभिव्यक्ति विरोधमय है। शेष पदांश से मीराँ का गहरा सघर्ष और दृढ़ भक्ति भावना की ही प्रशस्त अभिव्यक्ति होती है। अन्तिम दोनो पक्तियाँ घटनाद्योतक हैं जिनसे मालूम होता है कि "कुल की तारण अस्तरी" मीराँ पुष्कर नहाने के लिए जा रही हैं।

—:o:—

मिलन और बधाई

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

म्हारा ओलगिया[1] घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणंद आया जी।
मगन भई मिलि प्रभु आपणा सूँ, मैं कर दरध मिटाया जी।
चद को देखि कमोदणि फूले, हरखि भया मेरी काया जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल[2] सिधाया जी।
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीराँ विरहणी सीतल होई, दुख द्वन्द दूरी नसाया जी ॥२१५॥

२

सहेलिया साजन घर आया हो।
बहोत दिना की जोवती[3], विरहिन पिव पाया हो।
रतन करु नेछावरी, ले आरति साजू हो।
पिया का दिया सनेसडा[4], ताहि बहोत निवाजू हो।
पाच सखी इक्ट्ठी भई, मिलि मंगल गावै हो।
पिय की रली[5] बधावणा आणन्द अगि न मावै[6] हो।

---

१ परदेश रहना प्रियतम, २ अभिसार के लिये नियुक्त कक्ष विशेष के लिये रुढ़िगत मुहावरा, ३ प्रतीक्षा करती, ४ सदेश, ५ मनगमय, ६ समाये।

हरि सागर सू नेहरो[1], नैणा बाध्यो सनेह हो।
मीरॉ सखी के आगणै, दूधा वूठा[2] मेह हो ॥२१६॥

पद पर सतमत का प्रभाव स्पष्ट है। "मीराँ सखी' का प्रयोग सर्वथा नूतन है। अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि यही एक पद ऐसा है जिसमे इस तरह का प्रयोग मिलता है। पद की चतुर्थ पक्ति की अभिव्यक्ति शेष पदाभिव्यक्ति के विरुद्ध पड़ती है क्योकि उपर्युक्त पंक्ति से वियोग ही लक्षित होता है। छठी पक्ति मे "प्रिय की लीनी 'बधावणा' प्रयोग है। राजस्थानी की परम्परा पर दृष्टि रखते "प्रिय का रली बधावणा" पाठ ही शुद्ध ठहरता है।

३

रामजी पधारे धनि आज री घरी।
आज री घरी वो भाव री भरा।
गुरु रामानद अर माधवाचारन, नीमानन्द विसर स्याम हरी।
आजि मेरो आंगण सुहावणूं, रसण लागे पी पेम हरी
अरसि परसि मिलि हरिगुण गास्या,धनि मेरी इर्या इन भाव भरी
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, पकड़ि पावो विधाता पेम हरी
॥२१७॥

अभिव्यक्ति के आधार पर पद की प्रामाणिकता सदिग्ध है। पाँचवी और अन्तिम पक्तियो के उत्तरार्द्ध अर्थहीन प्रतीत होते है। 'गुरु रामानन्द माधवा चारेन और नीमानन्द के आगण में आने की अभिव्यक्ति प्राप्त सामग्री के आधार पर सगत सिद्ध नही होती।

४

राम सनेही सावरियो, म्हारी नगरी में उतर्यो आई।
प्राण जाय पणि[3] प्रीत न छाडूं, रहौं चरण लपटाय।

---

१ प्रेम, २ वूठा-मेह—दूध की वर्षा से भर गया, उत्साह और आनन्द से परिपूर्ण हो गया, ३ तथापि।

सपत[1] दीप की दे परकरमा, हरि हरी मे रहौ समाय।
तीन लोक झोली मे डारें, धरही तो कियो निपान[2]।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रहौ चरण लपटाय ॥२१८॥

प्रथम पक्ति में प्रयुक्त 'राम सनेही' प्रयोग विचारणीय है। पद की तृतीय पक्ति से संतमत की भावना ही स्पष्ट हो उठती है जब कि शेष पद में वैष्णव प्रभाव ही लक्षित होता है। यह भी विचारणीय प्रश्न है।

५

गिरधर आवणा है ऊदाँवाई लेजडली संवार।
आवण री विरियाँ[3] भई जी, अव महलां ढोल्यो[4] ढार।
अँतर[5] सुगंध मिलाय के जी, घी भर दिवला वार।
जाई जुही केतकी जी, चंपा कली सुधार।
पलका सू करां पावडाजी, अचला सू मग झार।
गिरधर म्हारो परम सनेही गिरधर उनकी नार ॥ २१९ ॥

निम्नाकित दो पक्तियाँ और भी मिलती है:

पुष्पन सो झोली भरी, रुचि रुचि सेज सवारि।
चारुं दिस फिरती फिरे, ऊदाँ चमेली लार[6]।

अद्यावधि प्राप्त पदों से मीराँ के प्रति ऊदाँ का विरोध भाव ही लक्षित होता रहा है। यही एक पद भक्ति के क्षेत्र म मीराँ और ऊदाँ की निकटता का द्योतक है।

६

म्हांरे आज रंगीली रात, मनडरा म्हरम आइया।
या छिव निरखण सुगन[7] मनावण, अतर सुगध लगावण।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मन अछ्या[8] वर पावण। ॥२२०॥

---

१ सप्त, २ नाप दिया, ३ समय, ४ अतिथि अभ्यागत के लिये बनाए गए छोटे पलग, ५ इत्र, ६ पीछे, ७ सगुण, ८ इच्छित।

७

रे सावलिया म्हारे आज रंगीली गणगोर छै जी।
काली पीली वादली में बिजली चमके, मेघ घटा घनघोर छै जी।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही शोर छै जी।
आप रंगीली, सेज रंगीली, और रंगीली सारो साथ छै जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरना मैं म्हांरो जोर छै जी।
॥२२१॥†

गणगोर (शिवपार्वती) का उत्सव मनाने की अभिव्यक्ति के कारण पद की प्रामाणिकता विशेष संदिग्ध है। विस्तृत विवेचना के लिये देखें, 'मीरा, एक अध्ययन' आलोचना खंड।

८

म्हांके जी गिरधारी, थांसूं म्हे बोले।
थें तो म्हौरा जनम जनम रा सगी, थारे लारे लारे[1] संग में डोले हो।
आदि तन मन धन मेरे, आनन्द करा कलोले[2]।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आन मिल्यो अनमोले ॥२२२॥†

पदाभिव्यक्ति अर्थहीन है।

---

१ पीछे-पीछे २ किल्लोल।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद ।

१

तनक हरि चितवौ जी मेरी ओर।
हम चितवत तुम चितवत नही, दिल के वड़े कठोर।
मेरो आसा चितवनि तुमरी, और न दूजी दोर।
तुम से हमकू कवर मिलोगे, हमसी लाख करोर।
उभी ठाढी अरज करत हू, अरज करत भयो भोर।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, देस्यूँ प्राण अकोर॥२२३॥†

आराध्य के निकट रहते हुए भी न बोलने की अभिव्यक्ति एक और पद मे भी मिलती है, यद्यपि इस पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है।

'वृहदाग रत्नाकार' मे निम्नाकित पद प्राप्त है जिसकी प्रथम दो पक्तियाँ उपर्युक्त पद की प्रथम दो पक्तियो से हूवहू मिलती है। बहुत सम्भव है कि कृष्णप्रिया का ही यह पद मीराँ के नाम पर प्रचलित हो गया है।

तनक हंस हेरो मेरी ओर।
हम चितवत तुम चितवत नाही, काहे भई हो कठोर।
निस दिन तुमरो ही नाम रटत हो, चातक ज्यो घनघोर।
कृष्णाप्रिया दर्शन के लोभी, जैसे चन्द्र चकोर।
(पद २५७, पृष्ठ ७१,)

२

आज सखी मेर आनन्द भयो है, घर में मोहन लाधोरी।
वन जोई वृन्दावन जोई, जोई विरज सव वाधोरी।
सतवे मलिये अजव झरोखे, कही ते हरि जी लाधोरी।
म्हारा तो घर में मही घनेरी, हरी चोर चोर दधि खाधोरी।

अपने द्वार में कब की ठाढ़ी, बांह पकरि हरि साधोरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिलियो बिरह बाजन बाधोरी।
॥२२४॥†

असंगत अभिव्यक्ति के आधार पर पद की प्रामाणिकता विशेष संदिग्ध है।

उपर्युक्त दोनो पदों की भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा है यद्यपि कुछ ठेठ राजस्थानी शब्दों का प्रयोग भी है।

३

आण मिल्यो अनुरागी (गिरधर) आण मिल्यों अनुरागी।
सासो[१] सोच अंग नहि, अब तो तिस्ना[२] दुबध्या[३] त्यागी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, स्याम वरण[४] बड़ भागी।
जनम जनम के साहिब मेरो, वाही से लौ लागी।
अपण पिया सग हिलमिल खेलूं, अधर सुधारस पागी।
मीरां के गिरधर नागर, अब के भई सुभागी ॥२२५॥†

पदाभिव्यक्ति से संतमत और वैष्णव मत दोनो का ही प्रभाव इंगित होता है।

---

१ संशय, २ तृष्णा, ३ दुविधा, ४ वर्ण।

ब्रज भाषा में प्राप्त पद

१

वदला रे तू जल भरि ले आयो।
छोटी छोटी बूदन बरसन लागी, कोयल सबद सुनायो।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, अबर वदरा छायो।
सज सवारी पिय घर आये, हिलमिल मगल गायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग भलो जिन पायो। ॥२२६॥

२.

नन्द नन्दन विलमाई, वदरा ने घेरी माई।
इत घन लरजे, उत घन गरजे चमकत विज्जु सवाई।
उमड घुमड चहुँ दिसी से आया, पवन चलै पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलें, कोयल सबद सुनाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चितलाई। ॥२२७॥

पाठान्तर १,

चित नन्दन विलमाई, वदराने घेरी भाई।
इत घन लरजै, उत घन गरजै, चमकत विज्जु सवाई।
उमड घुमड चहुँ दिस से आया, पवन चलै पुरवाई।
विरहनि तेरी प्राण डरत है, दाधी वेल सिचाई।
मीराँ के प्रभु दर्शन दीजै, प्राण रखौ सरणाई।

तृतीय पक्ति के उत्तरार्द्ध का निम्नाकित पाठान्तर भी प्राप्त हैं।

'माण रहत मोकू।'

एक ही पद के दो पाठान्तर दो विभिन्न भावो के द्योतक है, यह विचारणीय ह। पाठान्तर की तृतीय पक्ति का अर्थ स्पष्ट नही होता।

३

मेहा बरसबो करे रे, आज तो रमियो मेरे घर रे।
नान्ही नान्ही बूद मेघ घन बरसे, सूखे सखर भरे रे।
बहुत दिना पै पीतम पायो, विछुरन को मोहिं डर रे।
मीराँ कहै अति नेह जुडायो, मैं लियो पुरबालो वर रे। ॥२२८॥

पद की द्वितीय पक्ति में 'मेघ' और 'घन' दोनों पर्यायवाची शब्दो के प्रयोग से पुनरुक्ति हुई है।

४

देपी वरषा की सरसाई, मेरे पिया जी के मन आई।
नान्ही नान्ही बूदन वरसन लाग्यो, दामिनी दमके झरलाई।
स्याम घटा उमड़ी चहुँ दिसी सो, बोलत मोर सुहाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर आणन्द मंगल गाई। ॥२२९॥

५

रग भरी रग भरी, रंग सूँ भरी री,
होली आई प्यारी रग सूँ भरी री।
उडत गुलाल लाल भये बाहर,
पिचकारिन की लगी झरी री।
चोवा चन्दन और अरगजा,
केसर गागर भरी धरी री।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर,
चेरी होय पायन में परी री॥२३०॥

६

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनि मूरत सावरि सूरत, नैणा बने विसाल।
अधर सुधारस मुरलि राजति, उर बैजन्ती माल।

छुद्र घटिका कटि तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त वच्छल गोपाल॥२३१॥

पदाभिव्यक्ति से वालकृष्ण का वर्णन ही स्पष्ट होता है, जो मुग्धा नारी के लिय सगत नही प्रतीत होता। देखें 'मीरा', एक अध्ययन।'

'वृहदाग रत्नाकर' मे निम्नाकित पद प्राप्त है। दोनों पदो मे इस गहरे साम्य के कारण कहा जा सकता है कि 'दास गोपाल' का ही पद मीराँ के नाम पर प्रचलित हो गया है :-

वसो मोरे नैनन में नन्दलाल।
सावरी सूरत माधुरी मूरत, राजिव नयन विसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, अरुण तिलक दिये भाल।
अधरन वसी कर में लकुटी, कौस्तुभ मणि वनमाल।
वाजूवन्द आभूपण मुदर, नुपूर शब्द रसाल।
दास गोपाल मदन मोहन, पिय भक्तन के प्रतिपाल।
(पद ४८५, पृष्ठ १२३,)

'दास गोपाल' के पद की भापा साहित्यिक है जबकि मीराँ के नाम पर प्रचलित पद की भापा सरल है। सम्भव है कि गेय परम्परा ही इसका कारण हो।

उपर्युक्त दोनो पद से कुछ साम्य रखता हुआ एक और भी निम्नाकित पद 'वृहद्राग रत्नाकर' मे मिलता है।

"वसो मेरे नयनन में दोऊ चद।
गौर वरण वृपभानु नदिनी, श्याम वरण नन्दनन्द।
गोकुल रहे लुभाय रुप में, निरखत आनन्द कद।
जयश्री भट्ट युगल रुप वदो, क्यो छूटे दृढ फद।
(पद ४८६, पृष्ठ १२४)

इस पद की प्रथम पक्ति और उपर्युक्त अन्य दोनो पदो की प्रथम पक्ति में ही गहरा साम्य है। यद्यपि शेप पद सर्वथा भिन्न है।

७

जोसीड़ा ने लाख वधाई, अब घर आये स्याम।
आजि आनन्द उमगि भयो है, जीव लहै सुखधाम।
पाच सखि मिली, पीव परसि के, आनन्द ठासू ठाम।
विसर गई दु ख निरखि पिया कूँ, सुफल मनोरथ काम।
मीराँ के सुख सागर स्वामी, भवन गवन कियो राम ॥२३२॥†

पाठान्तर १,

जोसीड़ा ने लाख बधाई, आज घर आये स्याम।
आजि आनन्द उमगि भयो अति, जीव लहै सुखधाम।
पच सखी मिलि परसि पिया कूँ, आनन्द आठूं जाम।
विसर गई दुख निरखि पिया कू सुफल मनोरथ काम।
मीराँ के प्रभु सुख के सागर, भवन गवन कियो, राम।

यह पद 'राम सनेही' गुटके से उद्धृत है। बहुत सम्भव है कि 'राम सनेही' सम्प्रदाय का ही पद मीराँ के नाम पर चल पडा हो। 'राम सनेही' प्रयोगयुक्त एक पद (सं० ४) राजस्थानी मे भी मिलता है।

८

पायो जी मै तो राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु, किरपा करि अपनायो।
जनम जनम की पूंजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहि कोई चोर न लेवै, दिन दिन वढ़त सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तर आयो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस पायो ॥२३३॥

सम्पूर्ण पद की भाषा विशद्ध व्रज भाषा है। मात्र एक शब्द 'म्हारे' ठेठ राजस्थानी शब्द है। पाठान्तर में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता।

पाठान्तर १,

> राम रतन धन पायो, मैया मैं तो राम रतन धन पायो।
> खरचै ना खूँटे, वाकू चोर न लूटै, दिन दिन होत सवायो।
> नीर न डूबै वाकूँ अगिन न जालै, धरनी धर्‌यो न समायो।
> नाँव को नाँव भजन की वतियाँ, भवसागर से तार्‌यो।
> मीराँ बाई प्रभु गिरधर सरणै, चरण कमल चित लायो।

उपर्युक्त पद के दोनो पाठो से सतमत का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

९

> माई मैं तो लियो रमैयो मोल।
> कोई कहै छानी[1], कोई कहै चोरी, लियो है वजता ढोल।
> कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो है अखी खोल।
> कोई कहै हल्का, कोई कहै मँहगा, लियो है तराजू तोल।
> तनका गहना मैं सव कुछ दीन्हा, दियो है वाजूवन्द खोल।
> मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पूरव जनम का कोल ॥२३४॥

उपर्युक्त पाठ की भाषा राजस्थानी की ओर झुकी हुई है। पद की द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त 'चोरी' शब्द के वदले 'चोडे' का भी प्रयोग मिलता है जो अर्थ सगति के विचार से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। 'चोडे' का अर्थ है सव की जानकारी में। शेप पद से चतुर्थ पक्ति भिन्न पडती है, इतना ही नही यह पक्ति ज्यो की त्यो अन्य पदो में भी मिल जाती है। इसी तरह, अन्तिम पक्ति का द्वितीयाश भी ज्यो का त्यो अन्य पदो मे प्राप्त है।

---

१ छिपा कर।

पाठान्तर १,

माई म्हे गोविन्द लीनी मोल।
कोई कहै सस्तो, कोई कहै महँगो, लीनी तराजू तोल।
कोई कहै घर में, कोई कहै वन में, राधा के संग किलोल।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, आवत प्रेम के मोल।

पाठान्तर २,

माई मैं तो लीयो री गोविन्दो मोल।
कोई कहै सोंहगों कोई कहै मेहगो लियोरी तराजू तोल।
कोई कहै छानै, कोई कहै छुरकै लीयोरी बाजता ढोल।
याकूं तो सब लोग जाणत हैं, लियो अमोला मोल।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, पूरब जनम के कोल।

पाठान्तर ३,

मैं तो गोविन्द लीन्हा मोल।
कोई कहै महगा, कोई कहै सस्ता, लियो तराजू तोल।
ब्रज के लोग करैं सब चर्चा, लिया बजा के ढोल।
सुर नर मुनि जाको पार न पावै, ढक लिया प्रेम पटोल।
जहर पियाला राणाजी भेज्यां, पिया मैं अमृत मोल।
मीरां प्रभु के हाथ बिकानी, सर्वस दीना घोल।

ब्रज के बसिया करैं सब चर्चा' और 'जहर पियाला'.....'अमृत मोल' जैसी अभिव्यक्तियां इस पाठ की विशेषताएं हैं।

पाठान्तर ४,

माई मैं तो लियो है सावरियो मोल।
कोई कहै सूंघो, कोई कहै मूंहगो (मैं तो) लियो ह हीरा सूं तोल।

कोई कहै हलका, कोई कहै भारी, (मैं तो) लियोरी जाखड़िया'तोल
कोई कहै घटतो, कोई बढतो (मैं तो) लियो है बराबर तोल।
कोई कहै कालो,कोई कहै गोरो, (मैं तो) देख्यो है घूंवट पट खोल।
मीरां कहै प्रभु गिरिधर नागर, म्हारे पूरब जनमरो कोल।

पाठान्तर ५,

माई मैं तो लियो छै सावरियो मोल।
कोई कहै हलको, कोई कहै भारी, (मैं तो) लियो छै तराजू तोल।
कोई कहै सोंगो, कोई कहै मेंगो', (मैं तो) लियो छै अमोलख मोल।
कोइ कहै छानै, कोई कहै चोडे (मैं तो) लियो छै वाजता ढोल।
कोई कहै कालो, कोई कहै गोरो (मैं तो) लियो छै अखिया खोल।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, (म्हारे) पूरब जनम को कोल।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी पाठ एक ही पद के गेय रूपान्तर मात्र हैं। यद्यपि प्रत्येक पाठ की भाषा किसी एक बोली विशेष के प्रभाव की द्योतक है तथापि भाव सर्वथा एक ही हैं।

तत्कालीन समाज के साथ मीरां के कठोर सघर्ष की भावना सभी पाठों से व्यक्त होती है। साथ ही सभी पाठों से निन्दा-स्तुति के प्रति उदासीन मीरां का आत्मविश्वास और दृढ़ भक्ति-भाव "मैं तो लियो तराजू तोल" जैसी अभिव्यक्ति से अति स्पष्ट हो उठता है।

शुद्ध ब्रजभाषा के साथ ही साथ राजस्थानी से कुछ प्रभावित ब्रजभाषा म भी प्राप्त यह पद और इसके विभिन्न पाठ विशेष विचारणीय है।

---

१ तराजू, २ महँगा।

गुजराती में प्राप्त पद

१

मने मलिया मित्र गोपाल, नही जाऊं सासराए।
ससार मारुं हो सासुरो ने वैंकुठ मारो वास रे।
लक्ष चौरासी मारो हो चुड़ोलो रे, हारे मै तो वरिया गोपाल लाल नाथ।
सासु हमारी शुशुमना रे, सुसरी प्रेम सतोप रे।
जेठ जुगे जुग जीव जो रे, हा रे पेलो नावलियो निरदोस।
आपूं तो नवरग चूंदडी रे, नही ओढूं कामल लगार रे।
ओढूं प्रेम रस चूंदडी रे, हाँ रे मारा पाप निवारण करनार।
दियरे[1] ने दीनूं है दीकडी[2] रे, दोनूं राजकुमार रे।
एक ने सतयुग मोहि रहियो, राणा, दूजी रही ब्रह्मचार।
एक एक नो गुरु गोविन्द जी हो रे, दूजी की है ससार रे।
राज छाडौ चित्रकूट नेरे हाला, वाला गावला सोल हजार।
अपना पिया को जाई ने कह जो, घना दहाड़ो[3] धना वास रे।
वेऊं कर जोडी हो निनवरे, हा रे गुण गावे मीराबाई दास ॥२३५॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय ह। यद्यपि अभिव्यक्ति अस्पष्ट और कही कही असगत भी है, तथापि सतमत का प्रभाव विशेष रूपम इगित हो जाता है।

अन्तिम पक्ति मे "मीराबाई दास' जैसा प्रयोग इस पद की विशेपता है। इस प्रयोग के आधार पर पद की प्रामाणिकता और भी सदिग्ध हो उठती है।

२

अरज करे छ मीरा राठडी ऊभी ऊभी अरज करे छे।
मणिधर स्वामी म्हार मादर पधारी, सेवा करु दिन रातड़ी।

१ देवर, २ दीकरा अर्थ है यह शब्द डीकरी जिसका अर्थ है पुत्री, ३ दिन, ४ दाना।

फुलना रे तोडा,[1] फुलना रे गजरा,[2] फुलना रे हार फल पांखड़ी।
फुलना रे गादी फुलना रे तकिया, फुलना री पाथरी पछेड़ी।
पय पकवान मिठाई ने मेवा, सेवेयां ने सुन्दर दहीड़ी।
लवंग सुपारी ने एलची, तजवाला कथा पुरारी पान वीड़ी।
सेज बिछाऊ ने पासा मगाऊ, रमवा आवो तो जाय रातड़ी ॥२३६॥†

मीराँ के नाम पर प्रचलित इस पद के किसी भी अंश से इसका मीराँ विरचित होना आभासित नही होता। ऐसे पदों को प्रामाणिक सग्रह मे स्थान न देना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। किसी किसी सग्रह मे निम्नाकित एक पक्ति और भी मिलती है जिसके आधार पर पद को मीराँ का कहा जा सकता है।

'मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, वा'ला राम ने जोना ठरे आखड़ी।

इस पक्ति से व्यक्त होती भावना का शेष पदाभिव्यक्ति से कोई सगति नही बैठती। फिर गुजराती मे प्राप्त मीराँ के पदो की अन्तिम पक्ति मे 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' के बदले "मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण' का ही प्रयोग मिलता है। ऐसी स्थिति मे उपर्युक्त पक्ति के आधार पर भी पद की प्रामाणिकता सिद्ध नही होती।

३

अबोला सीद लोछी मारा राज, प्राण जीवन प्रभु मारा म्हारा राज।
अमे तो तमारा तमे तो अमारा, टाली दोस दो छोरे।
अमे तो तमारी सेवा करीये, सुख लई ने दुख दो छोरे।
जेने पोतानी मासी भारी, तेनी सो विश्वास रे।
अमृत पाई ने उछेरिया वा'ला, विखडा घोलि घोलि शीद पावो छोरे।

---

१ हाथो मे पहनने का जेवर विशेष, २ हार।

ऊडा कुवा में उतरिया वाला, वरत वाढी शूं जाओ छो रे।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित लाओ छो रे ॥२३७॥

पदाभिव्यक्ति में पूर्वापर संगति का अभाव है। 'मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर' का प्रयोग भी अन्य गुजराती पदों की परम्परा के अनुकूल नही पडता।

आराध्य की अप्रसन्नता के प्रति उलाहने की अभिव्यक्ति अन्य पदों में भी मिलती है।

समर्पण द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

मीराँ रग लाग्यो हो नाम हरी, और रग अटकि परी।
गिरधर गास्या सती न होस्या, मन मोह्यो घण नामी।
जेठ बहू नही राणा जी, थे सेवक हू स्वामी।
चोरी करा नही जीव सतावा, काई करेगी म्हाको कोई।
गज सूँ उतरि गधे नही चढस्या, या तो वात न होई।
चूडो तिलक दोवडो अस माला, सील वरत सिणगार।
और वस्तु रति नही मोहे भावै कोई निन्दो,
म्हो तो गोविन्द जी रा गास्या।
जिण मारग वे सत गया छै, जी[1] मारग म्हे जास्या।
राज करता नरक पडता, भोगी जो रै लीया।
जोग करता मुकति पहुता, जोगी जुग जुग जीया।
गिरधर धनी धनी[2] मेरे गिरधर, मात पिता सुत भाई।
थे थाके मै म्हाके राणा जी, यूँ कहै मीराँ बाई। ॥२३८॥

पद के अन्तिम चरण मे "गिरधर धनी, धनी मेरे गिरधर" के बदले "गिरधर म्हारा मे गिरधर की" अभिव्यक्ति भी मिलती है, जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

पाठान्तर १,

मीराँ रग लाग्यो नाव हरी, और रग अटकि परी।
गिरधर भजस्या सती ये न होस्या, मन मोह्यो गिरधारी।

---

१ वही, २ स्वामी।

जेठ वहू को नातो नही छै, राणा थे सेवक म्हे स्वामी।
चूड़ो देवड़ो तिलक ज माला, सील बरत सो भारी।
चोरी करां नही जीव सतावां, काई केरैलो म्हारो कोई।
गज चढ गीदड़ न चढा हो राणा, ये तो वाता सरी।
गिरधर धणी गोविन्द कडूंवो, साध सत म्हारा धरी।
थे थाके म्हे म्हाके हो राणा जी, यूं कहै मीराँ खरी।

पाठान्तर २,

मीराँ लागो रंग हरी, और रंग सब अटक परी।
चूड़ो म्हारे तिलक अस माला, सील बरत सिण गारो।
और सिंगार म्हारे दाय[1] न आवै, यो गुर ग्यान हमारो।
कोई निन्दो कोई विन्दो, म्हे तो गुण गोविन्द का गास्या।
जिण मारग म्हारा साध पधारे, उन मारग म्हे जास्या।
चोरी न करस्या, जीव न सतास्या, काई करसी म्हारो कोई।
गज से उतर कर खर नही चढ़स्या, ये तो बात न होई।

कही कही निम्नांकित कुछ पंक्तियाँ उपर्युक्त पद के साथ और भी मिलती हैं।

मती न होस्या गिरधर गास्या, म्हारो मन मोहो घण नामी।
जेठ वहू को नातो राणो जी, हू सेवक थे स्वामी।
गिरधर कन गिरधर धनी म्हारे, मात पिता वीर भाई।
थे थारे मैं म्हारे राणा जी, यूं कहै मीराँ बाई।

उपर्युक्त पद के तीनों ही पाठो मे मीराँ का सती होने से इन्कार करना सुस्पष्ट हो जाता है। राजपूती परम्परा के आधार पर यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। पद के ही आधार पर यह भी मालूम होता है कि मीराँ को सती होने का आदेश करने वाले स्वय राणा ही थे।

[1] पसन्द।

इन राणा से मीराँ का क्या सम्बन्ध था, यह सर्वथा अनिश्चित है। बहुत सम्भव हो कि ये राणा जेठ ही रह हो। सम्भव है कि मीराँ अपने ही प्रति 'जेठ बहू' (प्रथम पाठ में) की अभिव्यक्ति करती हैं अर्थात् सब मे बडी बहू।

"यूँ कहै मीराँ बाई" जैसी टेक भी विचारणीय है।

सतमत का प्रभाव इस पद से भी स्पष्ट हो उठता है। "जिण मारग म्हे जास्या" जैसी अभिव्यक्ति 'गुरु' और उनके प्रदर्शित मार्ग के प्रति मीराँ के विशेष अनुराग को ही सिद्ध करती है।

२

चाला वाही देस, चाला वाही देस।
कहो कुसम्भी सारी रगावा, कहो तो भगवा भेस।
कहो तो मोतियन माग भरावा, कहो तो छिटकावा केस।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो बिड़द नरेस। ॥२३९॥

यह पद विशेष महत्वपूर्ण है। "जिन जिन भेखा म्हारो साहिब रीझै, सोई सोई भेख धारणा" के लिये उतावली मीराँ स्वय ही यह निश्चित नही कर पा रही है कि आराध्य को कौन रूप स्वीकृत होगा। "कहो तो मोतियन भगवा भेस।" सम्भव है कि वैष्णव और नाथ पथ की विभिन्न परम्पराओं के कारण ही ऐसी अभिव्यक्ति हुई हो।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

म्हाने चाकर राखो जी गिरधारी लाला, चाकर राखोजी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं, नित उठि दरसन पासूं।
वृन्दावन की कुंज गलिन मे गोविन्द लीला गासू।
चाकरी मे दरसन पाऊं, सुमिरन पाऊं खरची।
भाव भगत जागिरी पाऊं, तीनो बाता सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल वैजन्ती माला।
वृन्दावन मे धेनु चरावै, मोहन मुरली वाला।
ऊंचे ऊंचे महल बनाऊं, बिच बिच राखू बारी।
सांवरिया के दरसन पाऊं, पहिर कुसुम्मी सारी।
जोगी आया जोग करन कूं, तप करने सन्यासी।
हरी भजन को साधू आए, वृन्दावन के वासी।
मीरां के प्रभु गहिर गम्भीरा, हृदे रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हो, प्रेम नदी के तीरा* ॥२४०॥

इस पद की टेक "मीरां के प्रभु गहिर गम्भीरा" सर्वथा नूतन है।

२

मै तो थारे दामन लागी जी गोपाल।
किरपा कीजो दरसन दीजो, सुध लीजो तत्काल।
गल वैजन्ती माल विराजे, दर्शन भई है निहाल।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, भक्तन के रछपाल। ॥२४१॥

पद की तृतीय और चतुर्थ पंक्तियों के द्वितीयार्द्ध विरोधात्मक भावना के द्योतक है।

व्रजभाषा में प्राप्त पद

१

मेरे मन राम नाम बसी।
तेरे कारण स्याम सुन्दर, सकल जोगा हासी।
कोइ कहै मीरा भई बावरी, कोई कहे कुलनासी।
कोई कहै मीराँ दीप आगरी, नाम पिया सूं रासी।
खाड धार भक्ति की न्यारी, काटी है जम फासी ॥२४२॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। कठिन सघर्ष के साथ ही साथ मीराँ को गहरा समर्थन भी प्राप्त हुआ। 'कुलनासी' और 'दीप आगरी' जैसे विशेषण साथ ही साथ मिले। वृन्दावन पहुँचने पर भी ये दोनो विरोधी धारायें अक्षुण्ण रही, यही ऐसे पदो से सुस्पष्ट होता है।

२

हमारे मन राधा स्याम बसी।
कोई कहै मीराँ भई बावरी, कोई कहै कुलनासी।
खोल के घूंघट प्यार के गाती, हरि ढिग नाचत गासी।
वृन्दावन की कुजगलिन मे, भाल तिलक उर लसी।
विष को प्याला राणा जी ने भेज्या, पीवत मीराँ हासी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, भक्ति मार्ग मे फसी ॥२४३॥

दोनो पदो की अन्तर्भावना एक ही है, तथापि प्रथम पद का भाव-गाम्भीर्य दूसरे पद मे नही। दूसरे पद की भाषा पर खडी बोली का भी प्रभाव भी विचारणीय है। पूर्वापर सगति, विचार-गाम्भीर्य और भाषा की शुद्धता के दृष्टिकोण से भी प्रथम पद प्रामाणिकता के अधिक निकट पडता सिद्ध होता है।

३

माई मैं तो गोविन्द सो अटकी।
चकित भए हैं दृग दोऊ मेरे, लखि शोभा नटकी।
शोभा अग अग प्रति भूषण, बनमाला तट की।
मोर मुकुट कटि किंकिन राजै, दुति दामिनी पटकी।
रमित भई हा सावरे के सग लोग कहैं भटकी।
छुटि लाज कुल कानि लोग डर, रह्यो न घर हटकी।
मीराँ प्रभु के संग फिरैंगी, कुजा कुजा लटकी।
बिनु गोपाल लाल के सजवनी, को जानै घटकी ॥२४४॥†

उपर्युक्त पद को प्रामाणिक मान लेने पर अभिव्यक्ति विचारणीय हो जाती है। पद मे परम्परानुगत टेक नहीं है। केवल 'मीराँ' नाम मात्र का प्रयोग किसी अन्य पद मे नही मिलता। टेक के बाद और एक पक्ति अन्य कुछ पदो मे भी मिलती हैं; परन्तु ऐसे पदों की प्रामाणिकता सदिग्ध ही है।

४

पग घूँघरु बाध मीराँ नाची रे।
मै तो मेरे नारायण की, आपही हो गई दासी रे।
लोग कहैं मीराँ भई बावरी, न्यात कहै कुलनासी रे।
विष का प्याला राणा जी भेज्या पीवत मीराँ हाँसी रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सहज मिले अविनासी रे ॥२४५॥

उपर्युक्त पद की भाषा पर खडी बोली की छाप विशेष स्पष्ट दिखती है। "सहज मिले अविनासी' जैसी अभिव्यक्ति विचारणीय है। सम्भवत इसको सतमत का ही प्रभाव कहा जा सकता है। सतमत से प्रभावित पदो "सांवरे रग राची" जैसे पद से इस पद का बहुत साम्य है। विभिन्न पदो के सम्मिश्रण से एक स्वतत्र पद का बन जाना असम्भव नही प्रतीत होता तथापि यह कहना असम्भव है कि कौन पद किस रूप मे प्रामाणिक है।

५

चितनन्दन आगे नाचूंगी।
नाच नाच पिय रसिक रिझाऊं, प्रेमी जन को जाचूंगी।
प्रेम प्रीति का बाध घूघरा, सुरत की कछनी काछूंगी।
लोक लाज कुल की मरजादा,या मे एक न राखूंगी।
पिया के पलगा जा पोढूंगी, मीराँ हरि रंग राचूंगी ॥२४६॥

पूर्व पद का पाठान्तर से प्रतीत होते इस पद पर सतमत का प्रभाव विशेष रूपेण स्पष्ट हो जाता है। भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव भी विचारणीय है। प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त 'चितनन्दन' के वदले 'रघुनन्दन' और द्वितीय पक्ति मे 'पिय' के वदले 'यदुनाथ जी' शब्द का भी व्यवहार मिलता है।

पाठान्तर १,

घूघरु बाध मीराँ नाची रे, पग घूघरु।
लोग कहे मीराँ हो गई बावरी, सास कहै कुलनासी रे।
जह्र का प्याला राणा जी भेज्या पीवत मीराँ हासी रे।
मे तो अपने नारायण की आपही हो गई दासी रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वेग मिलो अविनासी रे।

६

मे गिरिधर के घर जाऊ।
गिरिधर म्हारो साचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
रैन पडे तव हि उठि धाऊ, भोर भये उठि आऊ।
रैन दिना वाके सग खेलूं, ज्यो त्यो ताहि लुभाऊं।
जो पहिरावै सोई पहिरू, जो दे सोई खाऊ।
मेरी उन की प्रीत पुरानी, उन विन पल न रहाऊ।
जहा बैठावे तित ही वैठूं, वेचै तो विक जाऊ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, वार वार वलि जाऊ ॥२४७॥

५

चितनन्दन आगे नाचूंगी।
नाच नाच पिय रसिक रिझाऊं, प्रेमी जन को जाचूंगी।
प्रेम प्रीति का बांध घूघरा, सुरत की कछनी काछूंगी।
लोक लाज कुल की मरजादा, या में एक न राखूंगी।
पिया के पलंगा जा पोढूंगी, मीराँ हरि रंग राचूंगी ॥२४६॥

पूर्व पद का पाठान्तर से प्रतीत होते इस पद पर संतमत का प्रभाव विशेष रूपेण स्पष्ट हो जाता है। भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव भी विचारणीय है। प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त 'चितनन्दन' के बदले 'रघुनन्दन' और द्वितीय पंक्ति में 'पिय' के बदले 'यदुनाथ जी' शब्द का भी व्यवहार मिलता है।

पाठान्तर १,

घूघरु बाध मीरॉ नाची रे, पग घूघरु।
लोग कहैं मीरॉ हो गई बावरी, सास कहैं कुलनासी रे।
जहर का प्याला राणा जी भेज्या पीवत मीराँ हासी रे।
मैं तो अपने नारायण की आपही हो गई दासी रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वेग मिलो अविनासी रे।

६

मैं गिरिधर के घर जाऊ।
गिरिधर म्हारो साचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊ।
रैन पडे तब हि उठि धाऊ, भोर भये उठि आऊ।
रैन दिना वाके सग खेलूं, ज्यो त्यों ताहि लुभाऊ।
जो पहिरावै सोई पहिरू, जो दे सोई खाऊ।
मेरी उन की प्रीत पुरानी, उन विन पल न रहाऊ।
जहा बैठावे तित ही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बार बार बलि जाऊ ॥२४७॥

उपर्युक्त पद मे 'म्हारो' (मेरा) और 'थारो', (आपका या तुम्हारा) ये दो शब्द शुद्ध राजस्थानी के हैं, जब कि शेष पद की भाषा ब्रजभाषा है। परशुराम जी द्वारा सग्रहीत 'पदावली' मे 'उन की', 'पुरानी' आदि के बदले 'उण की' 'पुराणी' आदि का प्रयोग मिलता है, जिससे पद की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव और भी स्पष्ट हो उठता है।

७

हरि मेरे जीवन प्राण अधार।
और आसिरो नाहि न तुम विनु, तीनूं लोक मझार।
आप विना मोहि न सुहावे, निरख्यौ सब ससार।
मीराँ कहे मै दासी बावरी, दीज्यो मति विसार ॥२४८॥

८

निपट बंकट छबि अटके मेरे नैना, निपट बंकट छवि अटके।
देखत रूप मदन मोहन को, पियत मयूखन अटके।
वारिज भवा अलका टेढी, मनो अति सुगध रस वटके।
टेढी कटि टेढी कर मुरली, टेढी पाग लर लटके।
मीराँ प्रभु के रूप लुभानी, गिरिधर नागर नटके ॥२४९॥

९

सखी मेरो कानूडो कलेजे कोर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहैं, कुडल की झकझोर।
बिन्द्रावन की कुज गलिन मे, नाचत नन्दकिशोर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल चितचोर। ॥२५०॥

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

१

हमरे रौरे लागिल कैसे छूटे।
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हमरे रौरे बनि जाई।
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा।
जैसे कमल नाल बिच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी।
जैसे चन्दा मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा।
जैसे मीराँ पति गिरधारी, तैसे मिलि रहू कुज बिहारी ॥२५१॥

पद की भाषा स्पष्ट रूपेण अवधी है।

२

जो तुम तोडो पिया, मैं नही तोडूँ।
तोरी प्रीत तोडी, कृष्ण कौन सग जोडूँ।
तुम भये तरुवर, मैं भई पखिया।
तुम भये सरवर, मैं भई मछिया।
तुम भये गिरिवर, मैं भई चारा।
तुम भये चदा, मै भई चकोरा।
तुम भये मोती प्रभुजी, हम भये धागा।
तुम भये सोना, हम भये सुहागा।
बाई मीराँ के प्रभु, ब्रज के वासी।
तुम मेरे ठाकुर, मैं तेरी दासी ॥२५२॥†

भाव, भाषा दोनो के ही आधार पर पद की प्रामाणिकता सदिग्ध है। भाषा खडी बोली है और भाव मे वह गाम्भीर्य नही है जो तथाकथित मीराँ के पदो मे प्राय प्राप्त है। उपर्युक्त पद की तुलना कीर्तन-मडली के चालू पदो से की जा सकती है।

उपर्युक्त पद में 'म्हारो' (मेरा) और 'थारो', (आपका या तुम्हारा) ये दो शब्द शुद्ध राजस्थानी के हैं, जब कि शेष पद की भाषा ब्रजभाषा है। परशुराम जी द्वारा संग्रहीत 'पदावली' में 'तन की', 'पुरानी' आदि के बदले 'तण की' 'पुराणी' आदि का प्रयोग मिलता है, जिससे पद की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव और भी स्पष्ट हो उठता है।

७

हरि मेरे जीवन प्रान अधार।
और आसिरो नाहिं न तुम बिनु, तीनूं लोक मंझार।
आप बिना मोहि न सुहावै, निरख्यौ सब संसार।
मीरां कहै मैं दासी रावरी, दीज्यो मति बिसार॥२४८॥

८

निपट बंकट छबि अटके मेरे नैना, निपट बंकट छबि अटके।
देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूखन अटके।
बारिज भवां अलक टेढ़ी, मनो अति सुगंध रस अटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी कर मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके।
मीरां प्रभु के रूप लुभानी, गिरिधर नागर नटके॥२४९॥

९

सखी मेरो कानूड़ो कलेजे कोर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल की झकझोर।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, नाचत नन्दकिशोर।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चितचोर। ॥२५०॥

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

१

हमरे रौरे लागिल कैसे छूटे।
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हमरे रौरे बनि जाई।
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा।
जैसे कमल नाल बिच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी।
जैसे चन्दा मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा।
जैसे मीरा पति गिरधारी, तैसे मिलि रहू कुंज बिहारी ॥२५१॥

पद की भाषा स्पष्ट रूपेण अवधी है।

२

जो तुम तोड़ो पिया, मै नही तोड़ूँ।
तोरी प्रीत तोड़ी, कृष्ण कौन सग जोड़ूँ।
तुम भये तरुवर, मै भई पखिया।
तुम भये सरवर, मै भई मछिया।
तुम भये गिरिवर, मै भई चारा।
तुम भये चदा, मै भई चकोरा।
तुम भये मोती प्रभुजी, हम भये धागा।
तुम भये सोना, हम भये सुहागा।
बाई मीराँ के प्रभु, व्रज के बासी।
तुम मेरे ठाकुर, मै तेरी दासी ॥२५२॥†

भाव, भाषा दोनो के ही आधार पर पद की प्रामाणिकता संदिग्ध है। भाषा खड़ी बोली है और भाव मे वह गाम्भीर्य नही है जो तथाकथित मीराँ के पदो मे प्राय प्राप्त है। उपर्युक्त पद की तुलना कीर्तन-मडली के चालू पदो से की जा सकती है।

उपर्युक्त पद मे 'म्हारो' (मेरा) और 'थारो', (आपका या तुम्हारा) ये दो शब्द शुद्ध राजस्थानी के है, जब कि शेप पद की भापा व्रजभापा है। परशुराम जी द्वारा सग्रहीत 'पदावली' मे 'उन की', 'पुरानी' आदि के बदले 'उण की' 'पुराणी' आदि का प्रयोग मिलता है, जिससे पद की भापा पर राजस्थानी प्रभाव और भी स्पष्ट हो उठता है।

७

हरि मेरे जीवन प्राण अधार।
और आसिरो नांहि न तुम विनु, तीनूं लोक मझार।
आप विना मोहि न सुहावे, निरख्यौ सब ससार।
मीरां कहे मैं दासी बावरी, दीज्यो मति विसार॥२४८॥

८

निपट बंकट छवि अटके मेरे नैना, निपट बंकट छवि अटके।
देखत रूप मदन मोहन को, पियत मयूखन अटके।
बारिज भवां अलका टेढी, मनो अति सुगध रस बटके।
टेढी कटि टेढी कर मुरली, टेढी पाग लर लटके।
मीरां प्रभु के रूप लुभानी, गिरिधर नागर नटके॥२४९॥

९

म्हांरो मेरो कानूड़ो कलेजे कोर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुंडल की झकझोर।
बिन्द्रावन री कुंज गलिन में, नाचत नन्दकिशोर।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चितचोर। ॥२५०॥

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

१

हमरे रौरे लागिल कैसे छूटे।
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हमरे रौरे वनि जाई।
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा।
जैसे कमल नाल विच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी।
जैसे चन्दा मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा।
जैसे मीराँ पति गिरधारी, तैसे मिलि रहू कुज विहारी ॥२५१॥

पद की भाषा स्पष्ट रूपेण अवधी है।

२

जो तुम तोडो पिया, मैं नही तोडूँ।
तोरी प्रीत तोडी, कृष्ण कौन सग जोडूँ।
तुम भये तरुवर, मैं भई पखिया।
तुम भये सरवर, मैं भई मछिया।
तुम भये गिरिवर, मैं भई चारा।
तुम भये चदा, मैं भई चकोरा।
तुम भये मोती प्रभुजी, हम भये धागा।
तुम भये सोना, हम भये सुहागा।
बाई मीराँ के प्रभु, ब्रज के बासी।
तुम मेरे ठाकुर, मैं तेरी दासी ॥२५२॥†

भाव, भाषा दोनो के ही आधार पर पद की प्रामाणिकता सदिग्ध है। भाषा खडी बोली है और भाव में वह गाम्भीर्य नही है जो तथाकथित मीराँ के पदो में प्राय प्राप्त है। उपर्युक्त पद की तुलना कीर्तन-मडली के चालू पदो से की जा सकती है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

मुखड़ानी माया लागी रे मोहन प्यारा।
मुखड़ु में जोयुं तारु सर्वजग थायुं खारुं।
सब मारुं रहूदुं न्यारुं रेयु
समारीडु सुख एवु झाझ वाना नीर जोवुं,
तेरे तुच्छ करी करीए रे।
मीराँ बाई बलिहारी, आशा मने तकतारी,
हवे हुं तो वड़ भागी रे†॥२५३॥†

२

लेह लागी मने तारी, अल्याजी लेह लागी मने तारी।
काम काज मुक्युं ने धाम ज मुक्युं, मनमा चाहु छुं मुरारी।
तमे छो कावली हाथ मा छे वामरी, गोकुल मा गायो चारी।
सोल सहस्र गोपियो ने तमे वरिया, तोय तमे बाल ब्रह्मचारी।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी॥२५४॥†

पद की तीसरी पंक्ति की अभिव्यक्ति शेष पद से सर्वथा भिन्न पड़ती है, "मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर" का प्रयोग भी गुजराती पदों की परम्परा के अनुसार नहीं है।

३

नागर नन्दा रे बाल मुकुन्दा, छोडी छोने जनना धधा रे,
मारी नजरे रहे जो रे नागर नन्दा।

---

१ देखा, २ गुस्सा, ३ हो गया, ४ रैना, ५ अब, ६ चाह दिया।

काम ने काज मने कांई नव सूझे, भूलि गई छूं मारा घर धंधा रे।
आड़् अवलुं में तो कांई नव जोयुं, जोया जोया छे पुनम केरा चंद रे।
वाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, लागी छे मोहनी मने फंदा रे ।।२५५।।†

४

राम रमकड़ू[1] जड़ियो रे रानाजी, मने राम रमकड़ो जड़ियो।
रमझुम करतो मारे मन्दिरे पधारियो, नही कोई यातें घड़ियों रे।
मोटा मोटा मुनीजन मथी मथी थाक्या, कोई एक विरला ने हाथें चुड़ियो रे।
सुनु सिखर ना रे घाटती, ऊपर अगम अगोचर नाम पड़्युं रे।
वाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मारुं नाम सामलियां सूं जड़ियो रे।
।।२५६।।†

५

राम सीता पती थारी नेह लागी हो।
हो तम्ने भजी थी म्हांरी मीड़ भागी।
घरनो तो धन्ध रे मने नयी गमतो।
साधु सधा ते मारी प्रीत वाधी।
काम काज छोड़िया मं तो लोक लाज मेली।
प्रेम मगन मा हू राजी।
अज्ञान मी कोठड़ी मां ऊंघ घनी आवै।
प्रेम प्रकाश मां हूं जागी।
दुरजन लोग मारे निन्दा करे छे।
वा'ला लागे छै मानो वैरागी।
नाची कूदी मे तो भक्ति न कीधी।
लोक मी लाज मे वहू राखी।

---

१ खिलौना।

ध्रुव जी ने लागी, प्रल्हाद जी ने लागी।
द्रोपदी ने सभा मा भीड़ भागी।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
जन्मो जनम नी हू त्यागी। ॥२५७॥†

पदाभिव्यक्ति मे विरोधाभास और पूर्वापर सगति का अभाव है। कही कही अर्थ सगति भी नही बैठती। अन्तिम दो पक्तियो की गर्वोक्ति के आधार पर पद का मीरां विरचित होने मे सदेह होता है।

६

सुन्दरि स्याम सरीर म्हार दिल, सुन्दरि स्याम सरोर।
कोई ने भाव भवानी ऊपर, कोई ने वाला पोर।
गगा रे कोई ने जमुना रे कोई ने, कोई ने अड़सड़ तीर।
कोई नी रे हस्ती कोई नी रे घोड़ा, कोई नी रे म्हैल मन्दीर।
मीरां बाई के प्रभु गिरिधर नागर, हरी हलधर केरा वीर॥२५८॥†

७

नहीं रे विसरु हरि अन्तर मा थी नही रे।
जल जमुना ना पाणी रे जाता सिर पर मटको धरी।
आवता न जाता मारग वचे अमूलग वस्तु जडी।
आवता न जाता रे वृन्दा रे वन मा चरण तमारी पड़ी रे।
पीला पीताम्बर जरकस जामा, केसर आड़ करो।
मोर मुकुट ने काने रे कुडल, मुख पर मुरली धरो।
बाई मीरां कहे प्रभु गिरिधर ना गुण, विट्ठल वर ने वरी॥२५९॥†

पदाभिव्यक्ति म पूर्वापर सबध और अर्थ सगति का अभाव है। पद की अन्तिम पक्ति विचारणीय है। गुजराती में प्राप्त अधिकाश

पदो की अन्तिम पक्ति में "मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण" का प्रयोग हुआ है। फिर भी, समर्पण द्योतक पदो मे "वाई मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर" या "मीराँबाई कहै प्रभु गिरिधर नागर" का ही प्रयोग मिलता है। पद स० १ मात्र मे 'मीराँ वाई वलिहारी" जैसा सर्वथा नूतन प्रयोग भी मिलता है, परन्तु इस पद मे यह प्रयोग कुछ मिश्रित रूप मे आया है। "वाई मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर" समर्पण द्योतक अन्य पदो में आये प्रयोग के ही अनुकूल है,तथापि आगे के शब्द "नागर" के स्थान पर 'ना गुण' अधिकाश गुजराती पदो की परम्परा के अनुकूल ही हो गया है। साथ ही, "विट्ठल वर ने वरी, जैसी अभिव्यक्ति भी विशेष विचारणीय है। दक्षिण भारत और गुजरात की तरफ विट्ठल की ही पूजा विशेप रूपेण होती है। अन्दाल के पदो मे भी "विट्ठल गिरधरनलाल' की छाप मिलती है।

---.o:---

"दासी" और "जन"

प्रयोग युक्त पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

तुमर कारण सब सुख छाड़्या, अब मोहिं क्यूं तरसावौ हो।
विरह विथा लागी उर अन्तर, सो तुम आप बुझावौ हो।
अब छोड़त नाहि वणै प्रभु जी, हँसि करि तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग से अग लगावौ हो।।२६०।।

इस पाठ की भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। पद की अभिव्यक्ति के आधार पर ही ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत पद की कुछ पूर्व पक्तियाँ लुप्त हो गई हैं। "अब छोड़त नाहि वणै प्रभु जी" अभिव्यक्ति विचारणीय है।

२

थारी छूं रमैया मोसूं नेह निभावौ।
थारे कारण सब सुख छोड्या, हमकूं क्यू तरसावौ।
विरह विथा लागी उर अन्दर, सो तुम आय बुझावौ।
अब छोड्या नाहि वनै प्रभु जी, हँस कर तुरत बुलावौ।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग सूं अंग लगावौ।।२६१।।

उपर्युक्त दोनो पदो में गहरा साम्य विचारणीय है। द्वितीय पद की भाषा राजस्थानी प्रधान है, जब कि पहले पद पर आधुनिक प्रभाव स्पष्ट है। यह पद पूर्व पद से अधिक पूर्ण भी प्रतीत होता है।

३

पपइया रे पिव की वाणी न बोल।
सुणि पावेली बिरहणी रे, थारी राखेली पाख मरोड़।
चोंच कटाऊं पपइया, ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहँस[1] कूण।
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेल्या[2] आज।
चोंच मढाऊं थारी सोवनी[3] रे, तू मेरे सिरताज।
प्रीतम को पतिया लिखूं, कऊवा तू ले जाइ।
प्रीतम जू सूं यो कहे रे, थारी बिरहणी धान न खाइ।
मीरां दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाइ[4]।
वेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी, तुम बिन रह्यो न जाइ ॥२६२॥

उपर्युक्त पद की कुछ पंक्तियां "प्रीतम कूं .... रह्योइ न जाय" स्वतन्त्र पद के रूप में भी प्राप्त हैं।

४

साजन घर आवो जी मिठबोला।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूं, थां ही आंया होसी भला।
आवो निसंक संक मत मानो, आयां ही सुख रहेला।
तन मन वार करूं न्योछावर, दीजो स्याम मोहेला।
आतुर बहुत बिलम नहीं करना, आयां ही रंग रहेला।
तेरे कारण सब रंग त्यागा, काजल तिलक तमोला।
तुम देख्या बिन कल न परत है, कर धर रही कपोला।
मीरां दासी जनम जनम री, दिल री घुंडी खोला। ॥२६३॥

१ कहने वाला 'कहे' शब्द में 'स' पद बैठाने के लिये जोड़ दिया गया है। राजस्थानी की परम्परा में प्राय ऐसा होता है। २ मिले, ३ सुन्दर, ४ बेहाल।

पाठान्तर १,

सजन घर आवो जी मीठां बोला[१]।
बिन देखे मोहे कल न पडत है, कर धर रही कपोला।
आवो निसक सक नहि कीजे, हिलमिल के रंग घोला।
तेरे कारण सब सब रग तजिया, काजल तिलक तमोला।
मीराँ दासी जनम जनम की, दिल की घुंडी खोला।

पाठान्तर २,

साजन घर आवो जी मीठा बोला।
कब की ठाढी पथ निहारू, कर धर रही कपोला।
तन मन वार हिलमिल के रग घोला।
आतुर बिरहनी बिलब नही करना, आया ही रग रहेला।
मीराँ तो गिरधर बिन देख्या, छिन मासा छिन तोला।

५

राणा जी म्हारी प्रीत पुरबली, मैं काई करू।
राम नाम बिन घडी न सुहावै, राम मिले म्हारा हियरा ठरांय[२]।
भोजनिया नहि भावै, म्हाने नीदड़ली नही आय।
विष को प्यालो भेजियो जी, जावो मीराँ पास।
कर चरणामृत पी गई रे, म्हारे राम जी को विस्वास।
विष का प्याला पी गई रे, भजन करै उस ठौर।
थारी मारी ना मरू, राखणहार और।
छापा तिलक बनाविया जी, मन में निश्चय धार।
राम जी काज संवारिया, म्हांने भावे गरदन मार।
पेट्या बासक भेजिया जी, यो छै मोतिडारो हार।

---

१ मधुर भाषी, २ ठंडा होय

३

पपइया रे पिव की बाणी न बोल।
सुणि पावेली बिरहणी रे, थारी रालेली पांख मरोड़।
चोंच कटाऊं पपइया, ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहैस[1] कूण।
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेल्यां[2] आज।
चोंच मढ़ाऊं थारी सोवनी[3] रे, तू मेरे सिरताज।
प्रीतम को पतियां लिखूं, कउवा तू ले जाइ।
प्रीतम जू सूं यों कहै रे, थारी बिरहणी धान न खाइ।
मीरां दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाइ[4]।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी, तुम बिन रह्यो न जाइ॥२६२॥

उपर्युक्त पद की कुछ पंक्तियां 'प्रीतम कूं .... रह्योइ न जाय' स्वतन्त्र पद के रूप में भी प्राप्त हैं।

८

साजन घर आवो जी मिठबोला।
कब की ठाड़ी पंथ निहारूं, थां ही आया होसी भला।
आवो निसंक संक मत मानो, आयो ही सुख रहला।
तन मन वार करूं न्योछावर, दीजो स्याम मोहेला।
आतुर बहुत बिलम नहीं करना, आया ही रंग रहेला।
तेरे कारण सब रंग त्यागा, काजल तिलक तमोला।
तुम देख्या बिन कल न पड़त है, कर धर रही कपोला।
मीरां दासी जनम जनम की, दिल की घुण्डी खोला। ॥२६३॥

---

१ इसके बाद "कहै" शब्द में 'स' पद पूरा करने के लिये जोड़ दिया गया है। राजस्थानी डिंगल-साहित्य में प्रायः ऐसा होता है। २ मिले, ३ सुन्दर, ४ बीतता।

पाठान्तर १,

सजन घर आवो जी मीठां बोला[1]।
बिन देखे मोहे कल न पडत है, कर धर रही कपोला।
आवो निसक सक नहि कीजे, हिलमिल के रंग घोला।
तेरे कारण सब सब रग तजिया, काजल तिलक तमोला।
मीराँ दासी जनम जनम की, दिल की घुंडी खोला।

पाठान्तर २,

साजन घर आवो जी मीठा बोला।
कब की ठाढी पथ निहारू, कर धर रही कपोला।
तन मन वार हिलमिल के रग घोला।
आतुर विरहनी बिलब नही करना, आया ही रग रहेला।
मीराँ तो गिरधर विन देख्या, छिन मासा छिन तोला।

५

राणा जी म्हारी प्रीत पुरबली, मैं काई करू।
राम नाम बिन घडी न सुहावै, राम मिले म्हारा हियरा ठर्राय[2]।
भोजनिया नहिं भावै, म्हाने नीदड़ली नही आय।
विप को प्यालो भेजियो जी, जावो मीराँ पास।
कर चरणामृत पी गई रे, म्हारे राम जी को विस्वास।
विप का प्याला पी गई रे, भजन करै उस ठौर।
थारी मारी ना मरू, राखणहार और।
छापा तिलक बनाविया जी, मन मे निश्चय धार।
राम जी काज सवारिया, म्हांने भावे गरदन मार।
पेट्या बासक भेजिया जी, यो छै मोतिडारो हार।

---

१ मधुर भाषी, २ ठढा होय

नाग गले पहरिया, म्हारे महलां भयो उजार।
राठौड़ा री धीहड़ी जी, सिसोद्यां रे साथ।
ले जाती बैकुंठ कूं, म्हांरी नेक न मानी बात।
मीरां दासी राम की जी, राम गरीब निवाज।
जन मीरां को राखज्यो, कोई बांह गहे की लाज। ॥२६४॥

उपर्युक्त पद की कुछ पंक्तिया "विष को प्यालो भेजियो जी' .... म्हारी नेक न मानी बात" और एक अन्य पद "मीरां बैठी महल में उठत बैठत राम" की पक्तियां हूबहू है। इन पंक्तियों की अभिव्यक्ति भी प्रथम तीन पक्तियो की अभिव्यक्ति से सर्वथा भिन्न पड़ती है। इस पद की कुछ पक्तियों मे निम्नांकित पाठान्तर भी मिलता है। "राम नाम बिन नही भावै, हिवड़ो झोला खाय" पद की पाचवी पक्ति में "राम जी" के बदले "गोविन्द" शब्द का प्रयोग मिलता है। इसी तरह अन्तिम दो पक्तियो मे भी "राम" के बदले "श्याम" का प्रयोग मिलता है। "मीरां दासी" और "जन मीरां" का एक ही साथ प्रयोग इस पद की विशेषता है, जो विचारणीय है।

६

म्हारा ओलगिया[1] घर आज्यो जी।
सुख दुख खोलि कहूं अतर की, बेगा[2] बदन[3] बताज्यो जी।
च्यार पहर च्यारूं जुग बीत्या, नैणां नीद न आवै जी।
पूरण ब्रह्म अखड अविनासी, तुम बिन विरह सतावै जी।
नैणा नीर जाम ज्यूं झरण, ज्यूं मेघ झरण लाया जी।
रतवती द्रत राम कंत बिन, फिरत बदन बिलखाया जी।
साधू सजन मिलै सिर साटै, तन मन करूं बधाई जी।
जन मीरां नैं मिलो कृपा करि, जनमि जनमि मितराई जी।
॥२६५॥

---

१ परदेशवासी प्रीतम २ शीघ्र, ३ मुख।

७

जोगिया म्हाने दरस दियां सुख होइ।
नातरि दुखी जग माहि जीवड़ो, निसि दिन झूरैं[1] तोइ।
दरस दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस।
मीराँ दासी भई है पंडर,[2] पलट्या काला केस। ॥२६६॥

८

तुम आवो जी प्रीतम मेरे, नित विरहणी मारग हेरे।
दुख मेटण सुख दाइक[3] तुम हो, किरपा करिल्यौ नेरे[4]।
बहुत दिना की जोऊ मारग, अब क्यूं करो रे अबेरे[5]।
आतर[6] अधिक कहू किस आगे, आज्यौ मित[7] सवेरे।
मीराँ दासी चरनन की, हम तेरे तुम मेरे। ॥२६७॥

९

प्यारे दरसन दीज्यौ रे, आइ रे आइ।
तुम बिन रह्वौ न जाइ रे जाइ।
जल बिन कवल, चन्द बिन रजनी।
ऐसे तुम देख्या बिन सजनी।
किरपा करि कै बेग पधारो।
बिरह करेजा खाइ रे खाइ।
दिवस न भूख नीद नही नैना।
मुख सूं कहत न आवे बैना।

---

१ किसी की विरह स्मृति में धनैं धनैं क्षीण होते जाना, २ सफेद, ३ देने वाले, ४ निकट, ५ देर, ६ आतुरता, ७ मित्र, राजस्थानी में 'मीत' प्रणय जनित मित्रता को ही कहते हैं।

आकुल व्याकुल फिरूं रैन दिन।
मिलि करि ताप बुझाइ रे बुझाइ।
क्यूं तरसावो अंतरजामी।
आण मिलो किरपा करि स्वामी।
मीरां दासी जनम जनम की।
पड़ूंगी तुम्हारे पाइ रे पाइं ॥२६८॥†

इस पद की शैली "आइं रे आइ" आदि प्रयोग अन्य पदों से सर्वथा विभिन्न पड़ती है। पद की चतुर्थ पंक्ति में "सजनी" शब्द का प्रयोग भी विचारणीय है। हिन्दू दर्शन के आधार पर कहीं भी आराध्य को "सजनी" के रूप में नहीं देखा गया है। पद में व्यक्त भावना भी प्राय इन्हीं शब्दों में अन्य पदों में मिल जाती है। मेरे विचार से ऐसे पदों को विभिन्न पदों के सम्मिश्रण से बना हुआ लोकगीत ही समझना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। डा० श्री कृष्ण लाल के मतानुसार यह पद सम्भवत. रैदास का हो सकता है।

१०

माई म्हारी हरी हूं न बूझी[1] बात।
पिंड मां[2] सूं[3] प्राण पापी, निकसी क्यूं नहि जात।
पाट न खोल्या मुखां न बोल्या, सांझ भई परभात।
अबोलणा[4] जुग बीतण लागे, तो काहे की कुसलात।
सावण आवण कह गया रे, हरि आवन की आस।
रैण अंधेरी, बीज चमकै, तारा गिणत निरास।
लेइ कटारी कंठ सारूं, मरूंगी विष खाइ।
मीरां दासी राम राती, लालच हो ललचाइ। ॥२६९॥

[1] पूछी हरि ने मेरी परवाह नहीं की, [2] में, [3] से, [4] अनबोले, बिना बोले हुए।

पाठान्तर १,

माई म्हांरी हरि न बूझी वात।
पिड में से प्राण पापी, निकस क्यूँ नही जात।
रैण अधेरी, विरह् घेरी, तारा गिणत निसी जात।
ले कटारी कठ चीरूं, करूंगी अपघात[1]।
पाट[2] न खोल्या, मुखा न वोल्या, साझि लग परभात।
अवोलना मे अवधि वीती, काहे की कुसलात।
सुपन मे हरि दरस दीन्हो, मै न जाण्यो हरि जात।
नैना म्हारा उघडि आया, रही मन पछतात।
आवण आवण होय रह्यो री, नही आवण की वात।
मीराँ व्याकुल विरहणी रे वाल ज्यो विललात।

पद विशेष महत्वपूर्ण है। अभिव्यक्ति के आधार पर पद को दो अगो मे वाटा जा सकता है। "माई .... कुसलात" अर्द्धांश से आराध्य की निकटता और अप्रसन्नता ही सिद्ध होती है। परन्तु "सावण आवण . तारा गिणत निरास" से वियोग की ही स्थिति स्पष्ट हो उठती है। प्रथम पाठ की अन्तिम दोनो पक्तियो को उपर्युक्त दोनो ही अभिव्यक्तियो के साथ घटाया जा सकता है। द्वितीय पद की आठवी पक्ति की भावना विशेष विचारणीय है। पश्चात्ताप की अभिव्यक्ति दो एक अन्य पदो मे भी मिलती है।

पद की प्रमुख भावना के अनुसार आराध्य की निकटता और अप्रसन्नता ही व्यक्त होती है। इस अप्रसन्नता से ऊवकर मीराँ आत्महत्या का भी निश्चय कर लेती है, परन्तु आराध्य दर्शन के लोभ मे वह भी नही कर पाती । ऐसी अभिव्यक्ति किसी भी अन्य पद मे नही प्राप्त होती। अत उपर्युक्त पद विशेष रूप से विचारणीय है।

---

१ आत्महत्या, २ दरवाजा या पर्दा, ।

११

कुण[1] वांचे पाती , प्रभु विन कुण वांचे पाती।
कागद लै ऊधो जी आए, कहां रहे साथी।
आवत जावत पांव घिसा रे,(वा'ला) अखियां भई राती।
कागद लै राधा वांचण बैठी, भर आई छाती।
नैन नीरज अब बहे, (वा'ला) गंगा वहि जाती।
पानां ज्यूं पीली पड़ी रे, (वा'ला) अन्न नही खाती।
हरि विन जिवड़ो यूं जलै रे, (वा'ला) ज्यूं दीपक संग बाती।
साचां कुठ चकोर चंद, धोलै वहि जाती।
व्रज नारी की विनती रे, (वा'ला) राम मिले मिलजाती।
मनै भरोसा राम को रे, (वा'ला) डूबत नार्‌यं हाथी।
दास मीरां लाल गिरधर, साकड़ारो[2] साथी। ॥२७०॥†

इस पद में जगह जगह 'हरि' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'हरि' शब्द के बदले कही 'राम' और कही 'कृष्ण' प्रयोगयुक्त पाठान्तर भी मिलते हैं। 'रे','वा'ला','जी' आदि शब्दो का प्रयोग अधिकाश राजस्थानी लोक-गीतो में होता है। लय की पूर्ति ही इनका एकमात्र उद्देश्य है। पद के प्रारम्भ में ऊधव के पत्र लेकर आने का वर्णन है, परन्तु शेष पद में ऊधव की कोई चर्चा नही है। पद विचारणीय है।

१२

रावलो विड़द मोहि रुड़ो[3] लागे, पीड़ित परायें प्राण।
सगो सनेही मेरो और न कोई, वैरी सकल जहान।
ग्राह गह्यो गजराज उबार्‌यो, बूड़ न दियो छे जान[4] ।
मीरां दासी अरज करत है, नाही जी सहारो आन। ॥२७१॥

'वैरी सकल जहान" जैसी अभिव्यक्ति विचारणीय है। तथाकथित मीरां के पदो में यही एक पद ऐसा है जिसमें 'हारे को हरिनाम' जैसी भावना व्यक्त होती है।

१ कौन २ बुरे दिन ३ अच्छा, ४ बारात।

१३

तुम जीमों गिरधर लाल जी।
मीराँ दासी अरज करै छे, सुनिए परम दयाल जी।
छप्पन भोग छतीसो विजन, पावो जन प्रतिपाल जी।
राज भोग आरोगो[1] गिरधर, सनमुख राखो थाल जी ।
मीराँ दासी चरण उदासी, कीजै वेग निहाल जी। ॥२७२॥

पद के प्रारम्भ और अन्त में मीराँ दासी का प्रयोग हुआ है। एक ही पद में ऐसी पुनरुक्ति युक्त पद यह एक ही है। अन्तिम चरण में "चरण उदासी" प्रयोग सम्भवत. उदासी सम्प्रदाय के प्रभाव का द्योतक है।

१४

तुम जीमो गिरधर लाल जू।
मीराँ दासी अरज करै छै, मोकूँ करो निहाल जू।
या विरियाँ[2] है बालभोग की, लीज्यो चित में धार जू।
केसर अतर पुपप के हरवा, इण विध करो सिणगार जू।
छप्पन भोग छत्तीसो विजन, लाई भर भर थाल जू।
पान गिलोरी सुगध मिलाकर, कीनी है सब त्यार जू।
मीराँ दासी परिक्रमा की, मोकूँ करो निहाल जू । ॥२७३॥†

उपर्युक्त दोनो पदो का गहरा साम्य विचारणीय है। सम्भवत दोनो ही पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर हो।

१५

पिया तेरे नाम लुभाणी हो।
नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी हो।
सुमिरत कोइ न कियो, बहु करम कुमाणी हो।

---

[1] भोजन करो, [2] समय।

गणिका कीर पढांवता, वैकुंठ बसाणी[1] हो।
अरध नाम कुंजर लियो, वाकी अवध घटाणी हो।
गरुड़ छाड़ि हरि धाइया, पसु जूण[2] मिटाणी हो।
नाम महातम गुरु दियो, परतीत[3] पिछाणी हो।
मीरां दासी रावली, अपणी कर जाणी हो। ॥२७४॥

इस पद में गुरु की चर्चा और पौराणिक गाथाओं का वर्णन मिलता है जिससे संत और वैष्णव, दोनो ही मतो का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है।

१६

कहो तो गुण गाऊं रे, भजै राम राम सुवा, कहो तो गुण गाऊं रे।
सार की सलियां[4] को सूवा, पींजरो वणाऊं रे।
पींजरा में आव सूवा, हाथ सूं हलाऊं रे।
घीव कर घविर सूवा, मो लापसी[5] रधाऊं[6] रे।
आम ही को रस सूवा, घोल घोल पाऊं रे।
कंचन कोटि महल मन्दिर, मालिया झुकाऊं रे।
मालिया में आव सूवा, मोतिडा वधाऊं रे।
बैठक करो तो सूवा, चादणी बिछाऊं रे।
प्रेम ही प्रताप सूवा, झाझरी बजाऊं रे।
जाई जावूं केतकी सूवा, फूलड़ा सुंघावूं रे।
केसर भरियो वाटको सूवा, अंक चरचाऊं रे।
मीरां दासी सूवा राम की राती, चरणा ही चित लगाऊं रे।
॥२७५॥†

१ बसा दिया २ यानि ३ विश्वास, ४ सींक, ५ गेहूँ से बनाया गया मीठा दलिया ६ बना पाऊँ।

१७

नहि जाऊ सासरे, माई, म्हाने मिलिया छै सिरजणहार।
सासू हरी सुमरना रे, सुसरो परम सतोष,
जेठ जुगा रो राजवी, रे, पिव रह्यो निरदोष।
देवर के दोय डीकरी रे, दौन्यौ ही राजकुमारी,
एकँ सब जग मोह्यो री, एक रही ब्रह्मचारी।
लाख चौरासी चुडलो रे वा'ला, पहिरियो पिया जी रे काज।
वाह पकडी हरी लै चाल्या, मोहि दिना छै अविचल राज।
साधा मे म्हारो सासरो रे, पिया को वैकुठा वास।
फेरि न काल मे आवस्या जी, यूँ गावै छै मीरा दास ॥२७६॥†

इस तरह का एक पद गुजराती मे भी मिलता है। 'डीकरी' (पुत्री) जैसे शब्द से भी इस पद की भाषा पर गुजराती प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

१८

दीजो म्हाने द्वारिका को वास, रूडा रणछोड जी हो।
सुथान वासो नाम हरि को, माला लिये गुणकार।
सकल तीरथ गोमती रे वा'ला, सावरिया सिरदार।
पपैया ने मेघ पियारो, माछरी मध[1] नीर।
म्हानै तो गिरिधर ही पियारो, छाडयो जगत सूँ सीर।
तजियो पीहर, सासरो तजियो, सहियो उपहास।
राणा जी रो वस तजियो, राखो रावल[2] पास।
मथुरा मे हरि जन्म लिया जी, कियो द्वारका वास।
सहस गोप्या रे, वालमो, गावै मीराँ दास ॥२७७॥

---

१ बीच, २ तुम्हारे।

कहना सर्वथा ही भ्रामक होगा। पद सं० १७ और १८ तथा इनके पाठान्तर तथा और भी कुछ पद ऐसे मिलते हैं जिनमें (मीरा दास) प्रयोग मिलता है। अतः इन्हीं के आधार पर किसी नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता।

२०

म्हाँरा सतगुरु वेगा आज्यो जी, म्हांरी सुख री सीर[1] बुहावज्यो[2] जी।
तुम बिछड़ियाँ दुख पाऊँ जी, मेरा मन माहीं मुरझाऊँ जी।
मैं कोयल ज्यूँ कुरलाऊँ जी, कुछ वाहर कहि न जगाऊँ जी।
मोहि वाधण[3] विरह सतावै जी, कोई कहिया पार न पावै जी।
ज्यूँ जल त्यागया मीना जी, तुम दरसन विन खीना जी।
ज्यूँ चकवी रैण भावै जी, वा ऊगों[4] भाण[5] सुहावै जी।
ऊ दिन कवै करोला जी, म्हाँरे आँगण पाँव धरोलाँ जी।
अरज करै मीराँ दासी, गुरु पद रज की मैं प्यासो जी ॥२७९॥†

पद की भाषा शुद्ध जोधपुरी बोली है।

१ वह धार विशेष जो सन्तान प्रेम के कारण माता के स्तनों से स्वतः फूट निकलती है, २ बहा देना, ३ बाघिन, ४ उदित हुआ, ५ सूर्य।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

ऐसो पिया जान न दीजै हो।
सब सखिया मिलि राखिल्यो, नैना सुख लीजै हो।
स्याम सलोनो सांवरो, मुख देखत जीजै हो।
जिण जिण विधिया हरि मिलै, सोही विधी कीजै हो।
चन्दन काला नाग ज्यूं, लपटाइ रहीजै हो।
चलो सखी री वहा जइयें, वाको दरसन कीजै हो।
बाहु कावै मेलिकै, तन लूमि रहीजै हो।
प्याला आयो जहर को चरणोदक लीजै हो।
मीरां दासी वारणै, अपनी कर लीजै हो। ॥२८०॥†

"प्यालो ..... लीजै हो" पंक्ति का शेष पद से समन्वय नहीं होता। यह पद अधिकाश कीर्तन-मंडली के पदो की लय पर ही है।

२

हे मेरो मन मोहना।
आयो नाहिं सखी री, हे मेरो मन मोहना।
कै कहू काज किया संतन का कै कहू गैल भुलावना!
कहा करू कित जाऊ मोरी सजनी, लाग्यो है विरह सतावना!
मीरा दासी दरसण प्यासी, हरि चरणो चित लावणा ॥२८१॥

३

वारी वारी हो रामा हू वारी, तुम आज्यौ गली हमारी।
तुम देख्या बिन कल न पड़त है, जोऊ बाट तुम्हारी।

कुण[1] सखी सू तुम रंगराते, हम सूँ अधिक पियारी।
किरपा कर मोहि दरसण दीज्यो, सब तकसीर विसारी।
तुम सरणागत परम दयाला, भव जल तार मुरारी।
मीराँ दासी तुम चरणन को, बार बार बलिहारी। ॥२८२॥

४

वैद को सारो[2] नहि रे माई, वैद को नही सारो।
कहित ललिता वैद बुलाऊ, आवै नन्द को प्यारो।
वो आया दुख नाहि रहैगो, मोहि पतियारो[3]।
वैद आय कर हाथ जो पकड्यो, रोग है भारो।
परम पुरुष की लहर व्यापी, डस गयो कारो। ॥२८३॥†

इस पद मे मीराँ का नाम कही भी नही आया है। कही कही निम्नाकित दो और पक्तिया भी उपर्युक्त पद मे ही जुडी मिलती है। जिसमे "दासी मीरा लाल गिरधर" का प्रयोग हुआ है।

"मोर चन्दो हाथ ले हरि, देत है झारी।
दासी मीराँ लाल गिरधर, विप कियो न्यारी।"

५

अच्छे मीठे चाख चाख, वेर लाई भीलणी।
ऐसी कहा अचाखती ,रूप नही एक रती।
नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचालणी।
झूठे फल लीन्हे राम, प्रेम की प्रतीत[4] जाण।
हरिजू सो बाँध्यो हेत, वैकुन्ठ मे फूलणी।
ऐसी प्रीत करे सोई, दरस मीराँ तेरे जोई।
पतित पावन प्रभु गोकुल, अहीरणी ॥२८४॥

---

१ कौन, २ वूता, ३ विश्वास।

६

प्रभू, मेरा वेड़ा पार वाधान्यो जी।
मैं निगुनी मैं गुन नाही प्रभु जी, औगुण चित्त मत लाज्यो जी।
काड़ खड़ग राणा जी कोप्या, गरुड़ चढ़्या हरि आज्यो जी।
विपरा प्याला राणा जी भेज्या, चरणामृत करि पीज्यो जी।
काया नगर में घेर पड़चा छै, ऊपर आयर कीज्यो जी।
मीरां दासी जनम जनम की, कंठ लगाया कर लीज्यो जी ॥२८५॥

पदभिव्यक्ति असगत है। राणा जी के द्वारा 'खड़ग' प्रहार की कथा पद की प्रामाणिकता मे विशेष संदेह उपस्थित करती है। पद की शैली भी इस संदेह का समर्थन करती है।

७

मेरी काना[1] सुणज्यो जी करुणा निधान।
रावरो विरद मोय खाड़ रे, सो लागै परत पराये प्राण।
सगो सनेही मेरो और न कोई, वैरी सकल जहान।
ग्रह ग्रह्यो गजराज उवार्यो, वूड़ न दीनो न जान।
मीरां दासी अरज करत है, नही जी सहारो आन ॥२८६॥

द्वितीय पक्ति की अभिव्यक्ति स्पष्ट नही है। इस पक्ति में प्रयुक्त 'परत' शब्द के वदले कही कही पीड़ित शब्द मिलता है।

८

जोगिया के कहज्यो जी आदेस।
जोगिया चतुर सुजाण सजनी, ध्यावे[2] सकर सेस।
आवूंगी मैं नाह रहूंगी, रे म्हारा' पिव विन परदेस।

---

१ कानो से सुनो, ध्यान देकर सुनो, २ ध्यान लगाता है।

करि किरपा प्रतिपाल मो परि, रखो न आपण देस।
मातग मुद्रा भेखला[1] रे, वाला खप्पर लूंगी हाथ।
जोगिण होय जुग ढ़ूँढसूँ रे, म्हांरा रावलिया[2] री साथ।
सावण आवण कहि गया रे, कर गया कौल अनेक।
गिणतां गिणता घस गई रे, म्हारा आगलियारी रेख।
पिव कारण पीली पडी रे, वाला जोवन वाली वेस[3]।
दास मीराँ राम भजि कै, तन मन कीन्हौ पेस ॥२८७॥

पद की भाषा प्रमुखत: राजस्थानी है। परन्तु अधिकाश क्रिया पदो पर खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। सम्भवतः गेय परम्परा ही इसके लिये उत्तरदायी हो।

९

जोगिया ने कहियो रे आदेस।
आऊँगी मैं नाही रहू रे, कर जटाधारी भेस।
चीर को फोडूं कथा पहिरू, लेऊगी उपदेस।
गिणते गिणते घिस गई रे, ऊगलियो की रेख।
मुद्रा माला भेखलू, रे खप्पड लेऊ हाथ।
जोगिन होय जुग ढूंढसूं रे, रावलिया के साथ।
प्राण हमारा वहाँ बसत है, यहाँ तो खाली खोड।
वात पिना परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़।
पाँच पचीसो वस किए, मेरा पल्ला न पकडे कोय।
मीराँ व्याकुल विरहणी, कोई आय मिलावै मोय ॥२८८॥

इस पद पर खड़ी बोली का प्रभाव और भी स्पष्ट हो जाता है। उपर्युक्त पाठ की द्वितीय पक्ति के उत्तरार्द्ध मे निम्नाकित पाठ भेद भी मिलता है —

"कर जोगन को भेस।"

---

१ पहन लूँ, वेष धारण कर लूँ, २ पति, ३ वयस।

१०

जोगिया ने कहजो जी आदेस।
आऊगी पण नही रहू, वाला, कर जोगिन को भेस।
प्राण हमारा वहा बसत है, यहा तो खाली खोड।
मात पिता अरु सकल कुटुम्ब सो, रही तिणका ज्यूं तोड़।
दड कमडल गूदडी रे बाला, कियो नवेलो सनेह।
प्रीतम अजहू न आइया, म्हारे योही[1] बडो सनेस[2]।
गुरु को सबद कान मे पहिरू, अग विभूति रमाके।
जा कारण मैं जगत न जोरै बाला, वालावा रे फसि मैं जाके।
पाच पचीसूं बस कर राखूं, म्हारी पल्लो न पकड़ो कोय।
मीराँ व्याकुल विरहणी रे बाला, हरि मिलीया सुख होय ॥२८९॥

उपर्युक्त तीनो पदो के प्रथम अर्द्धांश मे गहरा साम्य हो उठता है। परन्तु जहाँ प्रथम दो पद मे सिर्फ नाथ प्रभाव ही स्पष्ट हो उठता है,वहाँ इस तीसरे पद पर सतमत का ही प्रभाव है। इस पद की भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव भी अधिक है।

११

राख कमडल गूदडी रे बाला, कियो नेवलो भेष।
प्रीतम ओज्यूं[3] नें आइया, यो है बडो अनेस।
गुरु को शब्द कान मे पहिरू, अग विभूति रमाय।
जा कारण मैं जगत तज्यो हैं, भौर लागी आय।
पाच पचीसा बस करू, पलो न पकडे कोय।
मीराँ व्याकुल विरहणी, हरि मिल्या सुख होय ॥२९०॥†

यह पद उपर्युक्त तीनो पदो के सम्मिश्रण से बना हुआ गेय रूपान्तर प्रतीत होता है। इस पाठ की प्रथम पक्ति विशेष विचारणीय है।

---

१ यही २ आशंका, ३ फिर से अर्थात् लौटकर।

१२

जोगिया जी दरसण दीजयो आइ।
तेरे कारण सकल जग ढूंढया, घर घर अलख जगाइ।
खान पान सब फीको लागें, नैणा नीर न माइ[1]।
बहुत दिना के बिछुरे प्यारे, तुम देख्या सुख पाइ।
मीराँ दासी तुम चरणा की, मिलज्यो कंठ लगाइ ॥२९१॥

व्रजभाषा में प्राप्त पद

१

सखी मन स्याम मूरत बसी।
मुकुट कुंडल करन बसी, मद मुख पर हँसी।
बावरी कोऊ कहें मो को, कोई कहें कुलनासी।
हस्ती की असवारी[2], पाछे लाख कुतिया भुसी।
तजियो घूंघट लई गाती, सत देख्या खुसी।
सील चोल पहन गल म, भक्त मारग घुसी।
ओम पानी नाहि पियो, छाहू बादर किसी।
दासि मीराँ लाल गिरधर, प्रेम फंदे फँसी ॥२९२॥

२

पिया अब घर आज्यो मोरे, तुम मेरे[3] हू तोरे।
में जन तेरा पथ निहारू, मारग चितवत तोरे।
अवध बदीती अजहू न आये, दुतियन मूं नेह जोरे।
मीराँ कहें प्रभु कब रे मिलोगे, दरसन बिन दोरे[4] ॥२९३॥

---

१ समाय, २ सवारी का राजस्थानी अपभ्रंश, ३ मैं, ४ दु:खमय।

पद की भाषा प्रधानतः व्रजभाषा है, यद्यपि दो एक राजस्थानी शब्दो का प्रयोग भी हुआ हैं। पद के बीच मे ही "मै जन" का प्रयोग अन्य पदो से सर्वथा पृथक पड़ता है।

३

कैसे जिऊ री माई, हरि बिन कैसे जिऊं री।
उदक दादुर पीनवत है, जल से ही उपजाई।
पल एक जल कूं मीन बिसरे, तलफत मर जाई।
पिया बिन पीली भई रे, ज्यो काठ घुन खाय।
औषध भूल न संचरै रे, बाला, बैद फिरि जाय।
उदासी होय बन बन फिरूं, रे बिथा तन छाई।
दासी मीरां लाल गिरधर, मिल्या हैं सुखदाई ॥२९४॥

सम्पूर्ण पद से वियोग ही लक्षित होता हैं, तथापि अतिम पक्ति से मिलन की ही अभिव्यक्ति होती है।

४

मै हरि बिन क्यो जिऊं री माय।
पिय कारण बौरी भयी, जस काठ ही घुन खाय।
औषद भूल न सचरे, मोहि लागो बौराय।
कमठ दादुर बसत जल मंह, जल ही ते उपजाय।
मीन जल के बिछुरे तन, तलफि के मर जाय।
पिय ढूँढन वन बन गई, कहु मुरली धुन पाय।
मीरां के प्रभु लाल गिरधर, मिल गए सुखदाय ॥२९५॥

इस पद की तुलना मे प्रथम पद से पूर्वापर सगति अधिक है।

५

प्रभु बिन ना सरै माई।
मेरा प्राण निकस्या जात, हरि बिन ना सरै माई।
कमठ दादुर बसत जल मे, जल से उपजाई।

मीन जल से बाहर कीन्हा, तुरत मर जाई।
काठ लकरी वन परी, काठ घुन खाई।
ले अगन प्रभ डारि आए, भेसम हो जाई।
वन वन ढूंढत मैं फिरी, आली सुध नहि पाई।
एक वेर दरसण दीजै, सव कसर मिटि जाई।
पात ज्यूं पीरी परी, अरु विपत तन छाई।
दासि मीरॉं लाल गिरधर, मिल्या सुख छाई।।२९६।।

उपर्युक्त दोनो सम्मिश्रण से वना हुआ पद ही कुछ परिवर्त्तन के साथ स्वतत्र पद के रूप मे चल पडा है। शेष पदाभिव्यक्ति से समन्वय नही होता, यह एक विशेष विचारणीय बात है।

६

मै अपने सैया सग साची।
अव काहे की लाज सजनी, परगट ह्वै नाची।
दिवस भूख न चैन कवहिन, नीद निसु नासी।
वेध वार को पार ह्वैगो, ज्ञान गुह गासी।
कुल कुटुम्ब सव आनि वैठे, जैसे मधुमासी।
दास मीरॉं लाल गिरधर, मिटी जग हॉंसी।।२९७।।

उपर्युक्त पद का समर्पण द्योतक पद (स० १) से गहरा साम्य है। दोनो ही पदो पर सन-मत का गहरा प्रभाव स्पष्ट हो उठता है।

परिवार और समाज का गहरा विरोध कई पदो से अत्यन्त सुस्पष्ट हो उठता है तथापि उनके लौट आने की अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है।

७

राणा जी, सावरे रग राची।
कोई निरखत कोई हरखत है जी।

कोई करत है हासी, कोई साची।
ताल मृदग बाजै मन्दिर में, हौ हरि आगे नाची।
मीरॉ दासी गिरधर जू की, जनम जनम की जाची ॥२९८॥

पदाभिव्यक्ति मे वैष्णव परम्परा का प्रभाव ही सुस्पष्ट हो उठता है।

८

माई मै तो गिरधर के रग राची।
माई हू स्याम के रग राची।
मेरे बीच परो मत कोऊ, बात चहु दिसी माची।
जागत रैनि रहै उर ऊपर, ज्यूँ कंचन मणि खाची।
होय रही सब जग मे जाहर, फेरि प्रगट होय नाची।
मिलि निसान बजाय कृष्ण सूँ, ज्यो कछु कहो सो साची।
जन मीरॉ गिरधर की प्यारी, मोहबत है नाहि काची ॥२९९॥†

उपर्युक्त पद की भाषा और अभिव्यक्ति दोनो ही विचारणीय है। अभिव्यक्ति मे वह सरस गाम्भीर्य नही जो मीरॉ के पदो की विशेपता है। पद की तृतीय पक्ति अर्थ-हीन है। 'जन मीरॉ' का प्रयोग पद की प्रामाणिकता मे सदेह की पुष्टि करता है।

९

माई मै तो गिरधर रग राची।
मेरे बीच पडो मत कोई बात चहू दिस माची।
जो मन मार मेरे मन उपज्यो, ज्यो कचन मणि सॉचो।
और सब हीरो हो सिर ऊपर, मै परगट होय नाची।
मुलक[1] निसान बजावा कृष्ण के, जे कोई कहो सोई साची।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मो मति नही काची ॥३००॥†

---

१ हँस कर खुश होकर।

यह पद उपर्युक्त पद (स० ९) का ही गेय रूपान्तर मात्र प्रतीत होता है। पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर संगति का अभाव है, इतना ही नही पद की अन्य पक्तिया अर्थहीन भी सिद्ध होती है।

१०

राणाजी मै तो सावरे रग राची।
साजि सिंगार बाध पग घूघरुं, लोक लाज तजि नाची।
गई कुमति लई साधु की सगति, भगत रूप भई साँची।
गाय गाय हरि के गुण निसदिन, काल व्याल सो बाची।
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काची।
मीराँ श्री गिरधरलाल सूँ भगति रसीली जाची ॥३०१॥†

भाव और भाषा दोनो ही के विचार से पद अपने मे पूर्ण है "मीराँ श्री गिरधरलाल" जैसी अभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। ऐसा पयोग और भी कुछ पदो मे मिलता है, परन्तु ऐसे पदो की प्रामाणिकता विशष सदिग्ध है।

११

मै तो रगराती गुँसाइया, मै तेरे रगराती।
औरो के पिया परदेस वसत है, लिख लिख भेजती पाती।
मेरे पिया मेरे निकट वसत है, कह ना सकूँ सरमाती।
सुवा सुवा चोला पहर सखी, मै झरमट खेलन जाती।
खेलत खेलत मिले सावरे, खोल्र मिली हिय गाती।
मदवा पी पी सब मदमाती, मै बिन पिया मदमाती।
प्रेम मदी का मैं इपचाप्या, मै छकी रहू दिन राती।
वह दूल्हा मोहि व्याहन आवै, आप कृस्न ब्रजवासी।
मीराँ के गिरधर मन मान्यो, मै स्याम सुन्दर की दासी ॥३०२॥

इस पद पर सतमत का गहरा प्रभाव सुस्पष्ट है।

१२

मं गिरधर रंग राती, सैयां मं।
पचरंग चोला पहर सखी मं झिरमिट खेलन जाती।
ओह झिरमिट मा मिल्यो सावरो खोल मिली तन गाती।
जिन का पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजे पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहूं आती जाती।
चंदा जायगा सूरज जायगा, जायगी धरणी अकासी।
पवन पाणी दोनूं ही जायेंगे, अटल रहे अविनासी।
सुरत निरत का दिवला संजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल मंगा ले, जगे रह्या दिन राती।
सतगुरु मिलिया सासा भाग्या, सैन बताई साची।
ना घर तेरा न घर मेरा, गावै मीरां दासी ॥३०३॥

१३

सखी री मैं तो गिरधर के रंग राती।
पचरंग मेरा चोला रंगा दे, मैं झुरमट खेलन जाती।
झुरमुट मे मेरा साई मिलेगा, खोल आडम्बर गाती।
चंदा जायगा सूरज जायगा, जायगा धरण अकासी।
पावन पाणी दोनो ही जायगे, अटल रहे अविनासी।
सुरत निरत का दिवला सजोले, मनसा की कर बाती।
प्रेम हटी का तेल बना ले, जगा करे दिन राती।
जिनके पिय परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजे पाती।
मेरे हिय मो माहि बसत है, कहूँ न आती जाती।
पी हर बसूँ न बसूँ साम घर, सतगुरु शब्द सगाती।
ना घर मेरा ना घर तेरा, मीरा हरि रग राती॥३०४॥

उपर्युक्त तीनो पदो की भाषा व अभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। तीनो ही पदो की भाषा अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है

और तीनों पर ही संत मत का प्रभाव विशेष रूप से स्पष्ट हो उठा है। यह पद उपर्युक्त दोनो पदो (सं० ३०२ और ३०३) के सम्मिश्रण से बना हुआ एक नया रूपान्तर मात्र प्रतीत होता है।)

१४

सावरे रंग राची, राणाजी हूं तो।
बाध घूघरा प्रेम का, हू हरि आगे नाची।
एक निरखत है एक परखत है, एक करत मोरी हासी।
और लोग म्हारो काई करसी, हूं हरि जी की दासी।
राणो विष को प्यालो भेज्यो, हू तो हिम्मत काची।
मीराँ चरणा लाग रही छै, साची ॥३०५॥

यह पाठ पहले चार पाठो के ही अधिक निकट पडता है। इसकी भाषा मिश्रित है तथापि राजस्थानी की ओर ही विशेषत झुकी हुई है। भावाभिव्यक्ति मे एक नूतनता है, "हू तो हिम्मत की काची"। जैसी अभिव्यक्ति अन्य प्राय प्राप्त पदो मे मीराँ पीवत हासी" जैसी अभिव्यक्ति के विरुद्ध पडती है।

विभिन्न पदो का सम्मिश्रण ही इस पद का आधार प्रतीत होता है।

१५

राणाजी हो मै साधुन रग राती।
काहू को पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजती पाती।
मेरो पियो मेरे माहि बसत है, कहि न सकूँ सरमाती।
सहो कसूंमी ओढ दुपट्टी, झुरमुट खेलन जाती।
झुरमुट खोल मिले यदुनन्दन, खोल मिली मिल साती।
और सखी मद पीवन भाई, मै मद की मदमाती।
मै मद पियो पचवटी को, छकी रहूँ दिन राती।
सुन्न सिखर के द्वारे आके, मोहि मिले अविनासी।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, जनम जनम की दासी ॥३०६॥

इस पद को विभिन्न भी कुछ परिवर्तन के साथ चला हुआ पदों का सम्मिश्रण ही कहा जा सकता है।

१६

राम तने रग राची, राणा मैं तो सावलिया रग राची।
ताल पखावज मिरदग बाजा, साधो आगे नाची रे।
कोई कहे मीराँ भई बावरी, कोई कहै मदमाती रे।
विष का जो प्याला राणा भर भेज्या, अमृत कर आरोगी[1] रे।
मीरा कहे प्रभु गिरिधर नागर जनम जनम की दासी रे।
॥३०७॥

विभिन्न पदों का सम्मिश्रण ही इस पद का भी आधार प्रतीत होता है।

१७

गोपाल रग राची, मैं श्याम रग राची।
कहा भयो जल विषय के खाये, लिनहुते बाँची।
तात मात लोग कुटुम्ब तिन कीनी उपहासी।
नन्द नन्दन गोपी ग्वाल तिनके आगे मे नाची।
और सकल छाँडि के मैं भक्ति काछ काँची।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जानत झूठी साँची ॥३०८॥

उपर्युक्त दस पदों मे एक गहरा साम्य है। यहाँ तक कि सरसरी दृष्टि से देखने पर ये सभी पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर से प्रतीत होते हैं। परन्तु इन पर विचार करने से दो शैलियाँ सर्वथा स्पष्ट दीखती हैं। "राँची", "साँची", "नाची" आदि तुकान्त पद एक शैली विशेष के हैं। ऐसे पदों पर कहीं कहीं संतमत का हल्का सा प्रभाव मिल जाता है, फिर भी इनकी भावाभिव्यक्ति प्रधानत वैष्णव-परम्परा से ही प्रभावित है। ऐसे पदों की भाषा भी कुछ राजस्थानी

---

१ खा लिया, यहा होगा पी लिया।

की ओर झुकी हुई है। "राती", "माती", "पाती" आदि तुकान्त पद दूसरी शैली के है। इनकी भावाभिव्यक्ति पूर्वोक्त पदो की अभिव्यक्ति से सर्वथा भिन्न पड़ती है। इन पर सतमत का ही स्पष्ट प्रभाव है इनकी भाषा भी खडी बोली से प्रभावित व्रजभाषा है।

१८

भीड छाडि बीर वैद मेरे पीर न्यारी है।
करक कलेजे मारी ओखद न लागै कारी।
तुम घरि जावो वैद मेरे पीर भारी है।
बिरहित विरह् बाढ़चो, तातै दु ख भयो गाढो।
विरह् के बान ले विरहनि मारी है।
चित ही पिया की प्यारी नेक हूँ न होवे न्यारी।
मीराँ तो आजार बाँध वैद गिरधारी है। ॥३०९।

सूर्यनारायण जी चर्तुवदी के अनुसार यह पद मीरा का नही अपितु "मीराँ लीला" करन वालो का है। पद की शैली को देखते हुए मै भी निसकोच उनका समर्थन करती हूँ।

१९

हरि बिन कूँण[१] गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, म रावरी चेरी।
आदि अत निज नाव तेरो, हिया मे फेरी।
बरि बेरि पुकारि कहू, प्रभु आरति है तेरी।
यो समार बिकार सागर, बीच मे घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बाधो, बूडत है बेरी।
विरहणी पिव की बाट जोवै, राखिल्यो नेरी[२]।
दासी मीराँ राम रटत है, मै सरण हूँ तेरी ॥३१०॥

---

१ कौन, २ निकट।

इस पद को विभिन्न भी कुछ परिवर्तन के साथ चला हुआ पदों का सम्मिश्रण ही कहा जा सकता है।

१६

राम तने रंग राची, राणा मैं तो सांवलिया रंग राची।
ताल पखावज मिरदंग बाजा, साधों आगे नाची रे।
कोई कहे मीरां भई बावरी, कोई कहै मदमाती रे।
विष का जो प्याला राणा भर भेज्या, अमृत कर आरोगी[1] रे।
मीरा कहे प्रभु गिरिधर नागर जनम जनम की दासी रे।
॥३०७॥

विभिन्न पदों का सम्मिश्रण ही इस पद का भी आधार प्रतीत होता है।

१७

गोपाल रंग राची, मैं श्याम रंग राची।
कहा भयो जल विषय के खाये, तिनहुते बाँची।
तात मात लोग कुटुम्ब तिन कीनी उपहासी।
नन्द नन्दन गोपी ग्वाल तिनके आगे मैं नाची।
और सकल छाँडि के मैं भक्ति काछ काँची।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, जानत झूठी साँची॥३०८॥

उपर्युक्त दस पदों मे एक गहरा साम्य है। यहाँ तक कि सरसरी दृष्टि से देखने पर ये सभी पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर से प्रतीत होते है। परन्तु इन पर विचार करने से दो शैलियाँ सर्वथा स्पष्ट दीखती हैं। "राँची", "साँची", "नाची" आदि तुकान्त पद एक शैली विशेष के है। ऐसे पदो पर कही कहो संतमत का हल्का सा प्रभाव मिल जाता है, फिर भी इनकी भावाभिव्यक्ति प्रधानतः वैष्णव-परम्परा से ही प्रभावित है। ऐसे पदो की भाषा भी कुछ राजस्थानी

---

१ खा लिया, यहा होगा पी लिया।

की ओर झुकी हुई है। "राती", "माती", "पाती" आदि तुकान्त पद दूसरी शैली के हैं। इनकी भावाभिव्यक्ति पूर्वोक्त पदों की अभिव्यक्ति से सर्वथा भिन्न पटती है। इन पर सतमत का ही स्पष्ट प्रभाव है इनकी भाषा भी खडी बोली से प्रभावित ब्रजभाषा है।

१८

भीड छाडि वीर वैद मेरे पीर न्यारी है।
करक कलेजे मारी ओखद न लागै कारी।
तुम घरि जावो वैद मेरे पीर भारी है।
विरहित विरह वाढ़यो, तातै दुख भयो गाढो।
विरह के वान ले विरहनि मारी है।
चित ही पिया की प्यारी नेक हूं न होवे न्यारी।
मीराँ तो आजार वाध वैद गिरधारी है। ॥३०९।

सूर्यनारायण जी चर्तुवदी के अनुसार यह पद मीराँ का नही अपितु "मीराँ लीला" करन वालो का है। पद की शैली को देखते हुए मैं भी निसकोच उनका समर्थन करती हूँ।

१९

हरि विन कूंण[1] गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, म रावरी चेरी।
आदि अत निज नाव तेरो, हिया मे फेरी।
वरि वेरि पुकारि कहू, प्रभु आरति है तेरी।
यो ससार विकार सागर, बीच मेँ घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल वाधो, वूडत है वेगी।
विरहणी पिव की वाट जोवै, रात्निन्यो [illegible]।
दासी मीराँ राम रटत है, मैं मग्न हूँ [illegible]

१ कौन, २ निकट।

पद की भाषा प्रमुखतः ब्रजभाषा है। परन्तु "कूंण" "नेरी" आदि दो एक राजस्थानी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। पद की छठी पक्ति में "बेरी" शब्द का अर्थ स्पष्ट नही होता। बहुत संभव है कि बार बार के अर्थ मे यहा "बेरी" का प्रयोग हुआ हो।

२०

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राख्यो, तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारन रूप नरहरि, धार्यो आप सरीर।
हरिनकस्यप मार लीन्हो, धर्यो नाहि न धीर।
बूड़ते गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर, दुख जहाँ तहाँ पीर। ॥३११॥

अन्तिम पक्ति के उत्तरार्द्ध मे प्रयुक्त "पीर" शब्द निरर्थक ही प्रतीत होता है। बहुत सम्भव है कि "सीर" शब्द का एतदर्थ द्योतक किसी अन्य शब्द का प्रयोग हुआ हो। "सीर" राजस्थानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है "साथ" या "साथ देने वाला"। अत. अर्थ देखते हुए "सीर" का प्रयोग उपयुक्त ही लगता है। पाठान्तर मे "सीर" का प्रयोग मिलता भी है।

पाठान्तर १,

हरी तुम हरौ जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी, तुरत बढायो चीर।
भगत कारण रूप नरहरी धार्यो नाहिन धीर।
बूडतो गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दासी मीराँ लाल गिरधर, करण कंवल पै सीर।

पाठान्तर मे "सीर" शब्द "सिर" या "मस्तक" के ही अर्थ मे आया है। कहना सम्भव नही कि कौन पाठ प्रामाणिक है।

२१

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कंवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीन्हे, सगी अपनी शरण।
जिण चरण ब्रह्माड प्रभु परसि लीणो, तरी गौतम घरण।
जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोपी लीला करण।
जिण चरण गोवरधन धार्यो, इन्द्र को गर्व हरण।
दासी मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण। ॥३१२॥

पद की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है। अत. प्रत्येक पक्ति का प्रथम शब्द "जिण" न होकर "जिन" होना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

२२

मै तो तेरी सरण परी रे, राम, ज्यूं जाणे ज्यूं तार।
अडेसठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नाहि मानि हार।
या जग मे कोई नही आपणा, सुणियौ श्रवण मुरार।
मीरा दासी राम भरोसे, जग का फदा निवार। ॥३१३॥

पद की तृतीय पक्ति का उत्तरार्द्ध अर्थहीन है। बहुत सम्भव है कि "सुणियौ कृष्ण मुरार" पाठ हो। ऐसा होने पर सम्बोधन की पुनुरुक्ति अवश्य हो जाती है, तथापि अर्थ सगति बैठ जाती है।

२३

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जाणूं कुछ पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढत छिन छिन घटत पल पल, जात न लागे वार।
बिरछ के ज्यूं पान टूटे, बहुरि न लागे, डार।

भौ सागर अति जोर कहिए, अनत ऊड़ी वार।
राम नाम का बाध बड़ो उतर परले पार।
ज्ञान चोसर, मडी चोहट्ट, सुरत पासा सार।
या दुनियाँ मे रची बाजी, जीत भावै हार।
साधु सन्त महन्त ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दास मीराँ लाल गिरधर, जीवणाँ दिन च्यार। ॥३१४॥

पाठन्तर १,

नहि ऐसो जनम वारम्वार।
क्या जानूं कुछ पुण्य प्रगटे, मानुषा अवतार।
बढ़त पल पल, घटत छिन छिन, जात न लागे वार।
विरछे के ज्यूं पात टूटे, लगे नहिं पुनि डार।
भव सागर अति जोर कहिए' विषम औखी धार।
सुरत का नर बाध बेड़ा, वेग उतरो पार।
साधु सन्ता ते महन्ता, चलत करत पुकार।
दासी मीराँ लाल गिरधर, जी वणो दिन चार।

उपर्युक्त पद सूरदास जी के पद का ही गेय रूपान्तर प्रतीत होता है (देखिये "मीराँ, एक अध्ययन")। पाठान्तर पर सन्त-मत का प्रभाव स्पष्ट है।

२४

यहि विधि भक्ति कैसे होय।
मन की मैल हिये से न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, बाधि मोहि चडाल।
क्रोध कसाई रहत घट मे कैसे मिलें गोपाल।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै क्षुधा तरसै, राम नाम न लेत।

आप ही आप पुजाय कै रे, फूलै अंग न समात।
अभिमान टीला किए बहु, कहु जल कहा ठहरात।
जा तेरे हिय अन्तर की जाणे, तासो कपट न वनै।
हिरदे हरि को नाव न आवे, मुख ते मणिया गणै।
हरि हितु सों हेत कर, ससार आसा त्याग।
दासी मीराँ लाल गिरधर, सहज कर वैराग। ॥३१५॥

इस पद पर सन्त-मत का प्रभाव बहुत स्पष्ट है।

२५

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात वन्धु, अपना नहिं कोई।
छाडि दई कुल की कान, क्या करेगा कोई।
सतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
चुनरी के किए टूक टूक, ओढ़ लीन्ही लोई।
मोती मूँगे उतार, बन माला पोई।
असुवन जल सीचि सीचि, प्रेम वेलि बोई।
अब तो वेल फैलि गई, आनन्द फल होई।
दूध की मथनिया, बडे प्रेम से विलोई।
माखन जब काढि लियो, छांछ पिये कोई।
आई मैं भक्ति काज, जगत देखि रोई।
दासी मीराँ गिरधर प्रभु, तारो अब मोहिं। ॥३१६॥

"दासी मीराँ गिरधर प्रभु" प्रयोग इस पद की विशेषता है।

२६

मेरे तो राम नाम, दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई, सकल लोक जोई।

भौ सागर अति जोर कहिए, अनत उडी वार।
राम नाम का बाध बड़ो उतर परले पार।
ज्ञान चोसर, मडी चोहट्ट, सुरत पासा सार।
या दुनियाँ मे रची बाजी, जीत भावै हार।
साधु सन्त महन्त ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दास मीराँ लाल गिरधर, जीवणाँ दिन च्यार। ॥३१४॥

पाठन्तर १,

नहि ऐसो जनम बारम्बार।
क्या जानूँ कुछ पुण्य प्रगटे, मानुषा अवतार।
बढ़त पल पल, घटत छिन छिन, जात न लागे वार।
बिरछे के ज्यूँ पात टूटे, लगे नहिं पुनि डार।
भव सागर अति जोर कहिए विषम औखी धार।
सुरत का नर बाध बेड़ा, बेग उतरो पार।
साधु सन्ता ते महन्ता, चलत करत पुकार।
दासी मीराँ लाल गिरधर, जी वणो दिन चार।

उपर्युक्त पद सूरदास जी के पद का ही गेय.रूपान्तर प्रतीत होता है (देखिये "मीराँ, एक अध्ययन")। पाठान्तर पर सन्त-मत का प्रभाव स्पष्ट है।

२४

यहि विधि भक्ति कैसे होय।
मन की मैल हिये से न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, बाधि मोहिं चडाल।
क्रोध कसाई रहत घट मे कैसे मिले गोपाल।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै क्षुधा तरसै, राम नाम न लेत।

आप ही आप पुजाय के रे, फूलै अंग न समात।
अभिमान टीला किए बहु, कहु जल कहां ठहरात।
जा तेरे हिय अन्तर की जाणे, तासों कपट न बनै।
हिरदे हरि को नाव न आवे, मुख ते मणिया गणै।
हरि हितु सो हेत कर, संसार आसा त्याग।
दासी मीराँ लाल गिरधर, सहज कर वैराग। ॥३१५॥

इस पद पर सन्त-मत का प्रभाव बहुत स्पष्ट है।

२५

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बन्धु, अपना नहिं कोई।
छाड़ि दई कुल की कान, क्या करेगा कोई।
सतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
चुनरी के किए टूक टूक, ओढ़ लीन्हीं लोई।
मोती मूंगे उतार, वन माला पोई।
असुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो वेल फैलि गई, आनन्द फल होई।
दूध की मथनिया, बडे प्रेम से बिलोई।
माखन जब काढि लियो, छाछ पिये कोई।
जाई मैं भक्ति काज, जगत देखि रोई।
दासी मीराँ गिरधर प्रभु, तारो अब मोहि। ॥३१६॥

"दासी मीराँ गिरधर प्रभु" प्रयोग इस पद की विशेपता है।

२६

मेरे तो राम नाम, दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई, सकल लोक जोई।

भाई छोड़चा, वन्धु छोड़चा, छोड़चा सगासोई ।
साध संग बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
भगत देखि राजी भई, जगत देखि रोई।
प्रेम नीर सीच सीच, विष वेलि धोई।
दधि मथ घृत काढ़ि लियो, डार दियो छोई।
राणा विष को प्यालो भेजियो प्रिय मगन होई।
अब तो बात फैलि गई, जानै सब कोई।
मीरां राम लगन लगी, होनी होय सो होई ॥३१७॥

इस पाठ विशेष मे भी प्रथम पक्ति में प्रयुक्त "राम" के बदले गिरधर नागर का भी प्रयोग मिलता है। "गिरधर नागर" पाठ ही विशेष रूपसे प्रसिद्ध है क्योकि प्रचलित मान्यतानुसार मीराँ कृष्ण की की ही उपासिका मानी जाती है।

२७

गोविन्द सूँ प्रीत करत, तबही क्यूं न हटकी।
अब तो बात फैल गई, जैसे बीज बटकी।
बीच को विचार नाहि, छाँय परी तटकी।
अब चूकौ तो ठौर नाहि, जैसे कला नट की।
जल के बुरी गाठ परी, रसना गुन रटकी।
अब तो छुडाय हारी, बहुत बार झटकी।
घर घर मे घोल मठोल बानी, घट घट की।
सब ही कर सीस धरि, लोक लाज पटकी।
मद की हस्ती समान फिरत, प्रेम लटकी।
दासी मीराँ भक्ति बुन्द, हिरदय विच गटकी ॥३१८॥

यह पद भी सूरदास जी के पद का ही गेय रूपान्तर भर प्रतीत होता है। (देखिये मीराँ, एक अध्ययन)।

२८

सखी री लाज वैरन भई।
श्री लाल गुपाल के संग, काहे नाहिं गई।
कठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कँह नई।
रथ चढाय गोपाल लैगो, हाथ मीजत रही।
कठिन छाती स्याम बिछुरत, विरह में तन तई।
दास मीराँ लाल गिरधर, विखर क्यो ना गई।।३१९।।†

२९

सखी मोहे लाज वैरन भई।
चलत गुपाल लाल पिय के, संग क्यों ना गई।
चलन चाहत गोकुल ही ते, रथ सजायो नई।
विरह व्याकुल होय सजनी, हाथ मल मल रही।
कठिन छाती स्याम बिछुरत, बिदर क्यो ना गई।
लेन अब संदेश पिय को, काहे पठऊँ दई।
कूबरी सग प्रीति कीन्ही, मोहे माला दई।
दास मीराँ लाल गिरधर, प्रान दछना दई। ।।३२०।।

पद की चतुर्थ और छठी पक्ति में निम्नांकित पाठान्तर मिलतेहैं।

चतुर्थ पक्ति "रुकमनी सग जाइबे को, हाथ मीजत रही।"
छठी पक्ति "तुरत लिखि सदेस पिय को, काहि पठऊँ लई।"

दोनो ही पाठो मे "दास मीराँ" प्रयोग मिलता है, यह विचारणीय है।

३०

अब तो हरि नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो वैरागी।

भाई छोड़्या, वन्धु छोड़्या, छोड़्या सगासोई ।
साध संग वैठि वैठि, लोक लाज खोई।
भगत देखि राजी भई, जगत देखि रोई।
प्रेम नीर सीच सीच, विष वेलि धोई।
दधि मथ घृत काढ़ि लियो, डार दियो छोई।
राणा विप को प्यालो भेजियो प्रिय मगन होई।
अब तो वात फैलि गई, जानै सब कोई।
मीरा राम लगन लगी, होनी होय सो होई ॥३१७॥

इस पाठ विशेष मे भी प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त "राम" के वदले गिरधर नागर का भी प्रयोग मिलता है। "गिरधर नागर" पाठ ही विशेष रूपसे प्रसिद्ध है क्योकि प्रचलित मान्यतानुसार मीरॉ कृष्ण की की ही उपासिका मानी जाती है।

२७

गोविन्द सूँ प्रीत करत, तबही क्यूँ न हटकी।
अब तो बात फैल गई, जैसे वीज बटकी।
वीच को विचार नाहि, छॉय परी तटकी।
अब चूकौ तो ठौर नाहि, जैसे कला नट की।
जल के बुरी गाठ परी, रसना गुन रटकी।
अब तो छुड़ाय हारी, वहुत बार झटकी।
घर घर मे घोल मठोल बानी, घट घट की।
सब ही कर सीस धरि, लोक लाज पटकी।
मद की हस्ती समान फिरत, प्रेम लटकी।
दासी मीरॉ भक्ति बुन्द, हिरदय विच गटकी ॥३१८॥

यह पद भी सूरदास जी के पद का ही गेय रूपान्तर भर प्रतीत होता है। (देखिये मीराँ, एक अध्ययन)।

२८

सखी री लाज वैरन भई।
श्री लाल गुपाल के संग, काहे नाहिं गई।
कठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कँह नई।
रथ चढाय गोपाल लैगो, हाथ मीजत रही।
कठिन छाती स्याम बिछुरत, बिरह में तन तई।
दास मीराँ लाल गिरधर, बिखर क्यों ना गई ॥३१९॥†

२९

सखी मोहे लाज वैरन भई।
चलत गुपाल लाल पिय के, संग क्यों ना गई।
चलन चाहत गोकुल ही तें, रथ सजायो नई।
विरह व्याकुल होय सजनी, हाथ मल मल रही।
कठिन छाती स्याम बिछुरत, बिदर क्यो ना गई।
लेन अब सदेश पिय को, काहे पठऊँ दई।
कूबरी सग प्रीति कीन्ही, मोहे माला दई।
दास मीराँ लाल गिरधर, प्रान दछना दई। ॥३२०॥

पद की चतुर्थ और छठी पक्ति में निम्नाकित पाठान्तर मिलतेहै।

चतुर्थ पक्ति "रुकमनी सग जाइबे को, हाथ मीजत रही।"
छठी पक्ति "तुरत लिखि सदेस पिय को, काहि पठऊँ लई।"

दोनो ही पाठो मे "दास मीराँ" प्रयोग मिलता है, यह विचारणीय है।

३०

अब तो हरि नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो वैरागी।

कहं छोड़ी वह मोहन मुरली, कहं छोड़ी सब गोपी।
मूंड मुंड़ाई डोरि कहं बांधी, माथे मोहन टोपी।
मातु जसुमति माखन कारन, बांध्यो जाको पांव।
स्याम किसोर भये नव गोरा, चैतन्य ताको नांव।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसे।
दास भक्त की दासी मीरां, रसना कृष्ण रहे। ॥३२१॥

कहा जाता है कि यह पद मीराँ ने महाप्रभु चैतन्य देव को सम्बोधित कर बनाया था। अद्यावधि प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ चैतन्य देव के समकालीन नहीं ठहरती। पद की अन्तिम पंक्ति भी विशेष विचारणीय है। पद से व्यक्त होती भावना के आधार पर महाप्रभु चैतन्य स्वयं ही कृष्ण के अवतार सिद्ध होते हैं, परन्तु अन्तिम पंक्ति के अनुसार "दास भक्त" सिद्ध होते हैं। यह "दास भक्त" कौन हैं? "मीरा दास" नाम से लिखने वाले और इस "दास भक्त" में भी एक रूपता हो सकती है या नहीं। यहाँ 'दास' का प्रयोग सभी भक्तों के लिये हुआ है, यह विशेष विचारणीय है। अभिव्यक्ति के आधार पर, मेरे विचार से, "दास भक्त" सम्बोधन किसी विशेष भक्त को ही लक्षित करता है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

सूँ करुं राना जी मारो चितड़ू चुरोये मारे मनहु वेधाये।
करवा ना सूझे अगने घर नारें काम, भोजन न भावै नैन निद्रा हराम।
जल जमनानो काठे ऊभा वलिभद्र वीर, वसरी वजावे वालो जमुना ने तीर।
अभी वजारे गजरथ चाल्यो रे आय, स्वान भसे तो तेनी संख्यान थाय।
झख रे मारे रे पेला दुर्जन लोग, चितडूँ आटयूँ तो तेनी सिखामन फोक[1]।
ज्याँ स्यामलियो गिरधारी त्याँ मारी आस, हरिखी निरखी गया मीरा दास।
॥३२२॥†

पदभिव्यक्ति मे पूर्वापर संवध का निर्वाह नही हुआ है।

२

म्हारे घेरे आवो सुन्दर श्याम, सोले सनगार पेरो शोभता रे।
मोतिडे माँग भरावुं, वेणी गुँथावुं, शोभे ढलकती हु[2] तो ऊभी राजद्वार।
ऊँची हु चहुं ऊभेड़री रे, जोऊ पातलियानी वाट।
वेग पधारो म्हांरा ओ साजेवा, तारे वेसणे माँटु पाट[3]।
मोर मुगट शोहामणो रे, गले गुंजा नो हार।
मुख मधुरी तारे हो मोरली रे, तारी चालतणी छे वलीहार।
दास मीराँ वाई गिरधर नागर, हर्खी निर्खी गुण गाय।
कलयुग माँ अये अवतरियाँ[4], मने राखोनी चरणे करो साथ॥३२३॥†

पूर्वापर सबंध का निर्वाह इस पद में भी नही हुआ। पद की अन्तिम पंक्ति प्रामाणिकता के विरुद्ध गवाही देती है।

---

१ व्यर्थ, २ में, ३ पीढ़ा, ४ में हम,

३

विट्ठल वाहेला आवोरे, वाटड़ी जाऊं हरखि निरखि मन मोहियुं रे
वाही गाऊं। टेक।
वाहला म्हारा रसोई बनावी छे, सारी[1] की धी[2] छे सुन्दर थारी रे।
वाहला म्हारा केसार पिरसियो छे, प्रीतें प्रभु जमो[3] पूरन प्रीत रे।
वाहला म्हारा दालि भात ने कढी, वड़ी सामाग्री सव की धी रे।
वाहला म्हारा राइता शाक पापड़ छे सारा[4] तम जमो प्रीतम मारा रे।
वाहला म्हारा शरमाशो नही वारूं कई कहे जो खाहुं खारुं रे।
वाहला म्हारा कनक नी झारी भरि लाई तमने आचमन लेव रावुं रे।
वाहला म्हारा मुखवास[5] लावी छूं सारो, तमे उठो सेजे पधारो रे।
वाहला म्हारा हेते रहो भुज पास, गुण गाय तेरी मीरा दास रे॥३२४॥†

ऐसी हल्की भावाभिव्यक्ति वाले पदों की प्रामाणिकता सर्वथा अमान्य है। (देखे मीरा एक अध्ययन)।

४

जेने मारा प्रभुजी ने भक्ति न भावे रे, तेदे घर सीद जइये रे।
जेने घर सन्त पाहुनो न आवे रे, तेने घर सीद जइये रे।
स्वसुरो अमारो अग्नि नो भड़को, सासू सदानी सूली रे।
एनी प्रत्ये मारु काई ना चाले रे, एने आँगनिये नाखूं पूला रे।
जेठानी हमारी भवंरानु जालु, देयरानी तो दिल माँ दाजी रे।
नान्ही ननद तो मो मचोकड़े ते भाग्ये अमारे कर मे पाजी रे।
. . . ., ते वलता माँ नाके, छे वारी रे।
मारा घर पछुवाडे सीद पड़ी छे, वाई तु जीती हुं हारी रे।

---

१ अच्छी २ किया है, ३ भोजन करो, ४ अच्छा, ५ भोजनोपरान्त मुखशुद्धि हेतु पान आदि।

तेने खुणे वेसी ने मैं तो झीनुँ कातिउं रे, ते नथि राख्युँ काई काचुं रे।
दासी मीरा वाई गिरधर गुन गावे, तारा आँगनिए माँ थेइ थेइ नाचुँरे ।
॥३२५॥†

उपर्युक्त पद की प्रथम दो पक्तियाँ शेप पद से सर्वथा भिन्न पड़ती हैं। इन दो पक्तियो को छोड कर शेप पद से एक निम्न स्तर के घरेलू जीवन का ही चित्र स्पष्ट हो उठता है। ऐसे पदो की प्रामाणिकता आमन्य ही प्रतीत होती है—(देखे,मीराँ,एक अध्ययन) पद की अन्तिम पक्ति से भी *अन्योक्ति ही स्पष्ट हो उठती है।*

५

भजलो नी सन्तो भजला नी साधो, रामजी विना कैसो जीवन रे।
तन तो बनाऊ तम्पूरो जीवन नो तार तनाऊ र् राम।
बन वन वाजे घूघरा, जीवने लाइ लडाऊं राम।
आँगनिये अनियारा आटला (?) मन्दिर लीटया दीसे राम।
शेर अनाज ने सेवता जीवड़ा जाता ने हीसे राम।
काया ने आना आविया, ज्यो पाछा न पुरे राम।
सात सहेली ना झूमस मा, जीवने आगल वरावे राम।
तल तल होमिया, जरा आज्ञा न मोडू राम।
जीवडो जाय तो आवा देऊ, हरी ने भक्ती ना छोडू राम।
नी ने किनारे नैने नीर वहे वडाऊ राम।
कान्ह जी ने हाथ नी रेखा डे,विन चम्पे कलियो आवे राम।
दास मीरा बाई नी विनती, डाकुर दासी तुझ गहाऊ राम ॥३२६॥†

पद में पूर्वापर सम्बन्ध का अभाव है।

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

पंजाबी

१

लागी सो ही जाणै, कठण लगण दी पीव।
विपति पड़्या कोइ निकट न आवै, सुख मे सब को सीर[१]।
बाहरी घाव कछु नीद दरस, रोम रोम दी पीर।
जन मीराँ गिरधर के ऊपर, सद्कै[२] करूँ सरीर। ॥३२७॥†

पाठान्तर १,

कठण लगन की पीर रे, हरि लागी सोई जाने।
प्रीत करी कछु रीत न जानी, छाड़ चले अधबीच।
दु.ख की बेला कोई काम न आवे, सुखके सबही मीत।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आखर जात के अहीर। ॥३२८॥†

इन दोनो पाठों की मात्र प्रथम पक्ति ही हूबहू मिलती है। शेप पद म भाव-साम्य है, परन्तु भाषा मे साम्य नही है।

---

१ साथ, यह शब्द राजस्थानीमें भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है, २ वार देना।

उपासना खण्ड

वैष्णव प्रभाव द्योतक पद

निर्वेदाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

थोडी थोडी पावो गिरधारी लाल जी, मोली[1] म्हाने आवै[2]।
नदन वन सूं बूंटी आई, जोग ध्यान दरसावै।
या बूटी दुरलभ देवन के, सेस सहस मुख गावै।
शिव विरचि जाको ध्यान धरत है, वेद पुरान सुनावै।
मीराँ तो गिरधर रग राची, भक्ति पदारथ पावै ॥३२९॥

२

म्हारो मनडो लाग्यो हरि सूँ, मं अरज करु अतर सूँ।
माधुरि मूरत पलक न विसरु, सोले हिरदै धरसूं।
आवन कह गये अजहू न आये, बिन दरसण मै तरसूं।
म्हारो जनम सुफल हुयो,जा दिन हरि के चरण परसूं।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तन मन अरपण करसूं ॥३३०॥

पद की तृतीय पक्ति से वियोग लक्षित होता है।

३

मै थारे गुण रीझी हो रसिक गोपाल।
निस वासर मोय आस तिहारी, दरसन द्यो नन्दलाल।

---

१ नशा, २ चढना है।

७

साध म्हारे आइया हेली, वे गिरधर जी रा प्यारा।
चरण धोय चरणामृत लेस्या, (हे) कलमल मेटन हार।
प्राण तो अति प्रिय लागै, (हे) कबहुन करस्यां न्यारा।
प्रभु कृपा कीनी अति (मो) पर, सुधार्‌या जनम हमारा ॥३३५॥

यह पद मीरां का है, ऐसा कही से भी स्पष्ट नही होता। चतुर्वेदी जी "प्रभु कृपा किनी अति" के बदले "मीरां के प्रभु गिरधर नागर" [illegible] स्वीकार करना उत्तम समझते है जिसका कोई कारण नही देते। [illegible] में प्रामाणिक पदो को छांट लेना और भी कठिन हो जाता [illegible] को मीरां के नाम पर चलाने का प्रयास निरर्थक ही प्रतीत [illegible]।

इन्द्र कोप कियो ब्रज ऊपर, नख पर गिरिधर धारा।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारा। ॥२३३॥†

चतुर्वेदी जी के मतानुसार इस पद की प्रामाणिकता भी संदिग्ध ही है, क्योंकि शैली में गहरा अन्तर है। मैं भी चतुर्वेदी जी का समर्थन करती हूँ।

६

राणा जी करमारो सगाती, कुल में कोई नहीं।
एक तो माल रे दोय दोय डीकरा, ज्यां की न्यारी न्यारी भाग।
(बांकी न्यारी न्यारी करमां रेख)।
एक तो राजाजी री गद्दी बैठिया, दूजो हल्कर बैल भर रो पेट।
एक तो भाभा रे दोय दोय डीकरी, ज्यां की न्यारी न्यारी भाग।
(बांकी न्यारी न्यारी करमां रेख)।
एक तो सोनियन मांग भरावजी, दूजी घर घर की पनिहार।
एक तो गऊ रे दो दो बछड़ा, ज्यांकी न्यारी न्यारी राणा भाग।
(बांकी न्यारी न्यारी करमां रेख)।
एक तो महादेवजी रे मंदिर मांडियो, दूजो वणजारे हाथ।
एक तो कुम्हार रे दोय दोय मटकिया, ज्यांकी न्यारी न्यारी राण भाग।
(ज्यांकी न्यारी न्यारी करमां रेख)।
महादेव जी रे मंदिर जल चढ़े दूजी पणिहारी रे हाथ।
[illegible] री सगाती, जग में कोऊ नहीं ॥२३४॥†

मीरां का यहाँ वर्णन नहीं है। "राणाजी" जैसे [illegible] मीरां का कहा जा सकता है, परन्तु यह [illegible] है। शब्द योजना अन्य पदों के अनुकूल नहीं [illegible] मानना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

७ ३ भिन्न भिन्न।

सो मद भगत करो जी न साधो, मत बिसरो नन्दलाल।
काहू के चदो काहू के मंदो, काहू के उर में माल।
प्रेम भरी मीराँ जिन गरजै, हिरदै गिरधर लाल।
(येक) घडी घड़ी पल मोये जुग सम, बीतत हो गई हाल बेहाल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, छुट गई जंजाल ॥३३१॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है।

४

बाना[1] रो बिड़द[2] दुहेलो रे।
बाना पहर कहा गरबायो, मुक्ति न हामी खेलो (रे)।
बाना रो प्रण प्रह्लाद उबार्यो, बैर पिता सो गेल्यो (रे)।
आगा धर पीछा मत ताको, दकतर नाहि चढैलो (रे)।
मीराँ जी ने भक्ति कमाई, जहर पियालो गेल्यो (रे)।
॥३३२॥†

श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी के मतानुसार यह पद सम्भवत मीराँ लीला करने वालो का है। "मीराँ जी ने भक्ति कमाई" जैसी अभिव्यक्ति के आधार पर इस मत की पुष्टि होती है।

५

हरि से गरब किया सोई हारा।
गरब किया रतनागर सागर, जल खारा कर डारा।
गरब किया लकापति रावण, टूक टूक कर डारा।
गरब किया चकवे चकवी ने, रैन बिछोहा डारा।
गरब किया वन की चिरभी ने, मुख कारा कर डारा।

---

१ वेश भूषा, २ यश।

इन्द्र कोप किया व्रज ऊपर, नख पर गिरिवर धारा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारा। ॥३३३॥†

चतुर्वेदी जी के मतानुसार इस पद की प्रामाणिकता भी संदिग्ध ही है, क्योंकि शैली मे गहरा अन्तर है। मै भी चतुर्वेदी जी का समर्थन करती हूँ।

६

राणा जी करमारो सगाती[1], कुल में कोई नही।
एक तो मात रे दोय दोय डीकरा, ज्या की न्यारी न्यारी भात[2]।
(वाकी न्यारी[3] न्यारी करमा रेख)।
एक तो राजाजी री गद्दी वैठिया, दूजो हलर वैल भर तो पेट।
एक तो भाखा रे दोय दोय डीकरी, ज्या की न्यारी न्यारी भात।
(वाकी न्यारी न्यारी कामा रेख)।
एक तो मोतियन माग भरावती, दूजी घर घर की पनिहार।
एक तो गऊ रे दो दो बछड़ा, ज्याकी न्यारी न्यारी राणा भात।
(वाकी न्यारी न्यारी करमा रेख)।
एक तो महादेवजी रे मदिर नादियो, दूजो वणजारारे हाथ।
एक तो कुम्हार रे दोय दोय मटकिया, ज्याकी न्यारी न्यारी राण भात।
(ज्याकी न्यारी न्यारी करमा रेख)।
एक महादेव जी रे मदिर जल, चढ़े दूजी चभारा रे हाथ।
राणा जी करमा रो सगाती, जग मे कोऊ नही ॥३३४॥†

सम्पूर्ण पद में मीराँ का कही वर्णन नही है। "राणाजी" जैसे सम्बोधन के कारण सम्भवत मीराँ का कहा जा सकता है, परन्तु यह पहलू बहुत हल्का जान पड़ता है। शब्द योजना अन्य पदों के अनुकूल नही पडती। पद को प्रक्षिप्त मानना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

---

१ साथी, २ भाँति, तरह, ३ भिन्न भिन्न।

७

साधू म्हांरे आइया हेली, वे गिरधर जी रा प्यारा।
चरण धोय, चरणामृत लेस्या, (हे) कलमल मेटन हार।
प्राण तो अति प्रिय लागै, (हे) कबहुन करस्या न्यारा।
प्रभु कृपा कीनी अति (मो) पर, सुधार्‍या जनम हमारा ॥३३५॥†

यह पद मीरां का है, ऐसा कहीं से भी स्पष्ट नहीं होता। चतुर्वेदी जी "प्रभु कृपा किनी अति" के बदले "मीरां के प्रभु गिरधर नागर" का व्यवहार करना उत्तम समझते है जिसका कोई कारण नहीं देते। ऐसा होने से प्रामाणिक पदों को छांट लेना और भी कठिन हो जाता है। ऐसे पदों को मीरां के नाम पर चलाने का प्रयास निरर्थक ही प्रतीत होता है।

८

वडे घर ताली लागी, रे, म्हांरा मन री डणारथ भागी रे।
छीलटिये म्हारो चित नहीं रे, डाबरिये कुण जाव।
गगा जमना सूं काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलूं परियाव।
हाल्या मोल्या सूं काम नहीं रे, मैं तो जाय करुं दरबार।
काच कथीर सूं काम नहीं रे, म्हारे हीरा रो व्योपार।
भाग हमारो जागियो रे, भयो समंद सूं सीर।
अमृत प्याला छाडि कै, कुण पिवै कडवी नीर।
पीपा को प्रभु परचो दीनो, दिया रे खजीना पूर।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ॥३३६॥

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है।

९

आवो सखी रली करां दे, पर घर गवण निवारि।
झूठो माणिक मोतिया री , झूठी जगमग जोति।

झूठा सब आभूषण री, साची प्रिया जी री प्रीति।
झूठा पाट पटम्बरा रे, झूठा दीक्खनी चीर।
साची पिया जी री गूदड़ी, जामे निरमल रहे सरीर।
छप्पन भोग बुहाइ दे रे, इन भोगिन मे दाग।
लूण अलूणो ही भलो है, अपने पियाजी के साग[1]।
देखि विराणे निवाण कूँ हे, क्यूँ उपजावे खीज[2]।
कालर[3] आपणो ही भलो है, जामे निपज्वै[4] चीज।
छैल विराणे लाख को है, अपणे काज न होई।
ताके सग सिधारता है, भला कहेसी न कोई।
जाके सग सिधारता हे, भला कहे सन कोई।
अविनासी सूँ वालमा हे, जिन सूँ साची प्रीत।
मीराँ को प्रभु मिलिया हे, ऐसो ही भगति की रीत ॥३३७॥

पद से व्यक्त होती भावनाओ का अन्य भावाभिव्यक्ति से कोई समन्वय नही होता, पदाभिव्यक्ति मे भी सगति नही है। सम्भवत कीर्तन मडली का ही कोई गीत हो।

१०

राम मोरी बाहडली जी गहो।
या भव सागर मझधार मे, थे ही निभावण हो।
म्हारे ओगण[5] धणा[6] छै, हो प्रभु जी थे ही सहो तो महो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाज विदर की वहो। ॥३३८॥

कही कही प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त "राम" सम्बोधन के वदले "श्याम" सम्बोधन भी मिलता है।

---

१ मारवाडी का शब्द है 'सागे' जिसका अर्थ है 'साथ'। यहाँ लय मिलाने के लिये ही 'सागे' का 'साग' हो गया हो, ऐसा प्रतीत होता है, २ क्रोध, ३ कुरूप, ४ उत्पन्न हो, ५ अवगुण, ६ बहुत।

पाठान्तर १,

बांहडली जो गहो राम जी, म्हारी बाहड़ली जो गहो।
भवसागर की तीक्षणधारा, थेई हो न नीमो (निमो)[१]।
म्हे तो छा ओगण का भरिया, थेई हो न सहो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर विड़द की लाज गहो।

पद की द्वितीय पक्ति का उत्तरार्द्ध अस्पष्ट है।

११

सूरत दीनानाथ सो लगी, तू तो समझ सुहागण सुरता नार।
लगनी लहगो पहर सुहागण, बीती जाय बहार।
धन जोवण है पावणा री, मिलै न दूजी बार।
राम नाम को चुडलो पहिरो, प्रेम को सुरमो सार।
नक वेसर[२] हरि नाम की री, उतर चलोनी परले[३] पार।
ऐसे वर को क्या करू, जो जन्मे और मर जाय।
वर वरिए एक सावरो री, मेरो चुड़लो अमर हो जाय।
मैं जान्यो हरि मे ठग्यो री, हरी ठग ले गयो मोय।
लख चौरासी मोरचा री, छिन में गोप्या छै विगोय।
सुरत चली जहा मैं चली रे, कृष्ण नाम झंकार।
अविनासी की पोल पर जी, मीराँ करै छै पुकार ॥३३९॥†

पद की प्रथम दो और दो पक्तियो से सतमत का प्रभाव सुस्पष्ट हो जाता है। बीच की पक्तियाँ असम्बद्ध है। पद का प्रारम्भ होता है उपदेशात्मक शैली से, परन्तु अन्त होता है व्यक्तिगत भावनाओ की अभिव्यक्ति मे। इसे पदो की प्रामाणिकता विशेष रूपेण सदिग्ध ही जान पडती है।

---

१ निर्वाह कर दिया, २ नथ, ३ उस पार।

१२

सब जग रुठडा, रुठण द्यो, येक राम रुठो नहि पावै।
गरभ[1] कियौ रतनागर सागर, नीर खारो कर डार्‍यो।
गरभ कियौ उन चकवा चकवी, रेण बिहोहो[2] पार्‍यो।
गरभ कियौ उन वन की कोयल, रूप स्याम कर डार्‍यौ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, हरि के चरण तन वार्‍यौ॥३४०॥

पद मे पूर्वापर सगति का अभाव है। सम्भवत यह कोई स्वतत्र पद न होकर पद स० ५ की ही कुछ पक्तियों का रुपान्तर है।

निर्वेद

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

अरे मं तो ठाढ़ी जपूँ रे राम माला रे।
मं तो जपती नाव मेरे सायब का, आण मिलो नन्दलाला रे।
हाथ सुमरणी काख कूबडी, ओढ रही मृग छाला रे।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, ओढ़े लाल दुसाला रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भगतन के प्रतिपाला रे ॥३४१॥

२

ज्याँरा[3] चित चरणा मे लागा, वे ही सवेरे जागा।
पहले भूप भरतरी जागा, शहर उजीणी लागा।
सुणा सुणा वचन साहब सतगुरु का गोपीचन्द उठ भागा।

---

१ गर्व, २ वियोग, ३ जिनका।

साहब सैन बलखारा राजा, बाण विरहरा लागा।
आठ पहर कबीरा जागा, मरण जीवन भय भागा।
राणा रुस्यां भय मोरे नाही, चित साहब से लागा।
मीरां बाई तो शरणे आया, लोक लाज भय त्यागा ॥३४२॥

पद से संत मत का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है।

३

माई म्हारे निरधन रो धन राम।
खाय न खूटै चोरन लूटै, विपति पड्या आवै काम।
दिन दिन प्रीति सवाई दूणी, समरण आगे याम।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल विसराम ॥३४३॥†

पाठान्तर १,

माई म्हारे निरधन को धन राम।
खाय न खूटे, चोर न लूटे, विपत पड़्या आवै काम।
दिन दिन प्रीत सवाई दूणी, सुमभरण सूँ म्हारे काम।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरणकमल विसराम[1]।

उपर्युक्त दोनो पाठ "पायो जी मैं तो राम रतन धन पायो" पद के ही गेय रुपान्तर प्रतीत होते हैं।

४

भजु मन चरण कवल अविनासी।
जेताईं[2] दीसे धरीन गगन बिच, तेताईं[3] सब उठि बासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी।
इस देही का गरब न करना, माटी मे मिल जासी।

---

१ विश्राम, २ जितने ही ३ उतने ही।

यो ससार चहर की वाजी, साझ पड्या उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहरया, घर तजि भयो सन्यासी।
जोगी होय जुगुति नही जाणी, उलटि जनम फिर आसी।
अरज करो अवला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फासी ॥३४४॥

उपर्युक्त पद पर सत मत का प्रभाव सुस्पष्ट है।

५

लगे रहना, लगे रहना, हरी भजन मे लगे रहना।
साहेब का घर दूर है रे, जैसी लगी खजूर।
चढै तो चाखे प्रेम रस, पडे तो चकना चूर।
क्या वक्तर का पहनना रे, क्या ढालो की ओट।
सूरे पूरे का पारखा रे, लडी घणी से जोर।
कान्ह कटारी वडी रे गुरु गोविन्द तलवार।
धनुष्य रूपी माला वाध वो, कबू न लागे द्वार।
हाड चाम की देह वनी रे, नव नाडी दश कोर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, लगी भर्म की चोट ॥३४५॥†

पद की पहली तीन और अतिम दो पक्तियों से सतमत का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है। पद का मध्यांश अर्थहीन है। ऐसे पदो की प्रामाणिकता मे सदेह का होना सहज है।

६

भजन भरोसे अविनासी, मै तो भजन भरोसे।
जप तप तीरथ कछुए न जाणूँ, करत मे उदासी रे।
मत्र न जत्र कछुए न जाणूँ, वेद पढ्यो न गई कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल की हूँ दासी ॥३४६॥

७

भजन बिना जिवड़ा दु खी, मन तू राम भजन करी ले।
जीव तूं जायगा जरुर, मन तू राम भजन करीले।
लाख रे चौर्यासी फेरा फिरोगे, जीव जन्मी जन्मी मरे।
माता पिता तेरा दास नें[1] बन्धु वाल्हे, कारज कछु ना सरे।
हस्ती नें घोड़ा माल खजाना, धन भंडार भर्यो घर में।
बाइ मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, अरे मेरो चित भजन में धरे।
॥३४७॥

उपर्युक्त पद की भाषा पर गुजराती प्रभाव 'वाल्हे' आदि स्पष्ट है।

८

तुम सुनो दयाल म्हारी अरजी।
भौ[2] सागर मे बही जात हूँ, काढ़ो तो थारी मरजी।
यो संसार सगो नही कोई, साचा रघुवर जी।
मात पिता और कुटुम्ब कबीला, सब मतलब के गरजी।
मीरां की प्रभु अरजी सुन लो, चरन लगाओ थारी मरजी॥३४८॥

९

जग में जीवणा थोड़ा रे, राम कुण करे जंजार।
मात पिता तो जन्म दियो है, करम दियो करतार।
कई रे खायो कइ रे खरचियो, कइ रे कियो उपकार।
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नही तेरी लार[3]।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, भज उतरो भव पार॥३४९॥

---

१ गुजराती शब्द जिसका अर्थ है 'और', २ भव, ३ पीछे।

१०

काय कूँ न लियो तव तू काय कूँ न लियो।
राम जी को नाम तव तू काय कूँ न लियो।
नव मास तू ने उदर मे राख्यो।
झूलणे झुलाओ, तू ने पारणे[1] पोढायो।
वडो रे भयो तव तू कुल लजायो।
गुनका[2] को बेटा गली माही डोले।
पिता विन पुत्र ए गुनका को कहायो।
वाई मीराँ के प्रभु तिहारा भजन विना।
आवो रुडो मन खोवे ऐले[3] गुमायो ॥३५०॥

पदाभिव्यक्ति मे असंगति है। भाषा पर गुजराती प्रभाव है। पद की प्रामाणिकता विशेष संदिग्ध है।

११

भजले रे मन गोपाल गुणा।
अधम तरे अधिकार भजन सूँ, जोइ आये हरि की सरणा।
अविस्वास तो सखि वताऊं, अजामेल, गणिका, सदना।
जो कृपालु तन मन धन दीन्हो, नैन नासिका मुख रसना।
जाको रचत मास दस लागे, ताहि न सुमिरौ एक दिना।
वालापन सव खेल गमायो, तरुण भयो जव रुप घना।
वृद्ध भयो जव आलस उपज्यो, माया मोह भयो मगना।
गज अरु गीध हूँ तरे भजन सूँ, कोऊ तर्यो नही भजन विना।
धना भगत पीपा मुनि सवरी, मीराँ की हु करो गणना ॥३५१॥†

अन्तिम पक्ति के आधार पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि पद मीराँ द्वारा रचित नही।

---

१ पालने, २ गनिका, ३ मारवाडी में शब्द है 'अहला' जिसका अर्थ है 'व्यर्थ'।

१२

राम कहियें रे गोविन्द कहि मेरे।
ककर हीरा एक सरमा, हीरा किस कूँ कहिए रे।
हीरा पण तो जब ही जाणूँ, महगा मोल विकइए रे।
कोयल कागा एक सरसा, कोयल किस को कहिए रे।
कोयलपण तो जब ही जाणूँ, मीठा वचन सुनाइये रे।
हसा वगुला एक सरीखा, हंसा किस कूँ कहिए रे।
हसा पण तो जद ही जाणूँ, चुग चुग मोती खइये रे।
जगत भगत के आवरे हैं, भगत किसकूँ कहिए रे।
भगत पणो तो जबही जाणूँ, वोल सभी का सहिए रे।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणा चित दइए रे।
द्वारका के ठाकुर के सरण मे, जाकर रहिए रे ॥३५२॥

१३

रमइया बिन या जिवड़ो दु ख पावै, कहो कुण धीर बँधावै।
या ससार कुबुध[1] को माडो[2], साध सगति नही भावै।
राम की निन्दा ठाणै, करम ही करम कुमावै[3]।
राम नाम विनु मुकुति न पावैं, फिर चौरासी जावैं।
साध सगति कवहू न जावे, मूरख जनम गवावै।
मीरा प्रभु गिरधर के सरणे, जीव परम पद पावै ॥३५३॥†

पद की पाचवी पक्ति मे पुनुरुक्ति है। प्रथम पक्ति को वियोग द्योनक पदो मे प्राप्त पक्ति का ही रुपान्तर कहा जा सकता है। इस पक्ति से व्यक्त होने वाली वियोग वेदना का कोई आभास शेष पद पर नही।

१ कुबुद्धि, पाप, २ पात्र, ३ कमाता है।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

बसो मोरे नैनन मे नन्दलाल।
मोहनी मूरत सावरि मूरति, वनै नैन विसाल।
अधर सुधारस मुरलि राजति, उर वैजन्ती माल।
छुद्र घटिका कटि तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
मीराँ प्रभु सत सुखदाई, भक्त वछल गोपाल ॥३५४॥

पद की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है। यह देखते हुए अन्तिम पक्ति मे व्यवहृत "वछल" शब्द अनुपयुक्त ठहरता है "वछल" शब्द के कारण लय भग भी होता है। अत: "वछल" के वदले "वत्सल" का प्रयोग ही अधिक युक्तियुक्त होगा।

२

मेरो मन राम ही राम रटै रे।
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम के खत जू पुराने, नामही लेत फटे रे।
कनक कटोरे इम्रिता भरियो रे, पीवत कौन नटै रे।
मीराँ कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे ॥३५५॥+

पद की तीसरी पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबध नही बैठ रहा है।

३

नैया मेरी हरी तुम ही खवैया, तुमरी कृपा ते पार लगैया।
गहरी नदिया नाव पुरानी, पार करो वलभद्र जू के भैया।
अजमिल गज गनिका तारी, शवरी अहिल्या (द्रोपदी) लाज रखैया।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वार वार तुमरे बाल गैया।
॥३५६॥+

चतुर्थ पक्ति का उत्तरार्द्ध अशुद्ध है।

४

राम नाम रस पीजै मनुआ, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सतसग वैठ नित, हरि चरचा सुन लीजै।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, चित से वहाय दीजै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताही के रंग भीजै ॥३५७॥†

उपर्युक्त पद मे "राम" गिरधर नागर" दोनो ही सम्वोधन का प्रयोग हुआ है यह विचारणीय है।

५

मेरा वेड़ा लगाय दीजो पार, प्रभु अरज करु छूँ।
या भव मे मै वहुत दु ख पायो, ससा सोग निवार।
अष्ट करम की तलव लगी हैं, दूर करो दुख पार।
यो ससार सव वह्यो जात हैं, लख चौरासी धार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आवागमन निवार ॥३५८॥†

प्रथम पक्ति मे "करु छूँ" क्रिया का प्रयोग शेप पद की शुद्ध व्रज भाषा से सर्वथा भिन्न पडता है।

६

कृष्ण करो जजमान, प्रभु तुम कृष्ण करो जजमान।
जाकी कीरति वेद वखानत, साखी देते पुरान।
मोर मुकुट पीताम्वर शोभत, कुडल झलकत कान।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, दे दर्शन को दान ॥३५९॥†

पद की प्रथम पक्ति सर्वथा निरर्थक है। शेप पद वर्णनात्मक है। तृतीय पक्ति अन्य पदो मे भी हूबहू इसी रूप मे मिल जाती है।

७

धन आज की घरी, सतसग में परी।
श्री मदभागोत श्रवण सुनी, रसना रटत हरी।

मन डूबत लीला सागर में, देही प्रीति धरी।
गुरु सतन की मोहनि सूरति, उर बिच आई अरी।
मीराँ के प्रभु हरी अविनासी, सरणौ राखि हरी ॥३६०॥

वैष्णव और सतमत दोनों का ही प्रभाव स्पष्ट है।

८

डब्बा मे सालगरम बोलत क्यो नहियाँ।
हम बोलत तुम बोलत नाहि, काहे को मौन धरैयाँ।
यह भव सागर अगम भरी है, काढ़ लेहूँ गहि वैयाँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम्ही मोरे सैयाँ ॥३६१॥ †

पदाभिव्यक्ति असंगत है।

९

तुम विन स्याम कौन सुने (गो) मेरी।
ठाढी खेवटणी अरज करत है।
मलवा ने नाव पछिम फेरी।
नदिया गहरी नाव पुराणी।
अध पर वीच भंवर ने घेरी।
वोदी है प्रभु पार लगावो।
डूब जाय तो कहा रहै तेरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर।
कुल को त्याग शरण लिई तेरी। ॥३६२॥ †

पदाभिव्यक्ति स्पष्ट नही है।

१०

काहे को देह धरी, भजन विन काह को देह धरी।
गर्भवास की मास दिखाई, वाकी पीव लुरी।

कोल[1] वचन कर वाहर आयी, अब तुम भूल परी।
नीब तन गारा वजे वधाई, कुटुंब सब देख डरी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, जननी भार मरी ॥३६३॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है।

११

अब कोऊ कछु कहो दिल लागा रे।
जाकी प्रीत लगी लालन से, कचन मिला सुहागा रे।
हसा की प्रकृत हमा (ही) जाने, का जाने मर कागा रे।
तन भी लागा, मन भी लागा ज्यो वाभण गल धागा रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भाग हमार जागा रे ॥३६४॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है। पद में पूर्वापर सबन्ध का भी निर्वाह नही हुआ है। सघर्ष द्योतक पदों मे भी एक पद ऐसा ही मिलता है। बहुत सम्भव है कि यह पद उसका गेय रुपान्तर मात्र हो।

१२

करम की गति न्यारी सन्तो, करम की गति न्यारी।
बड़े बड़े नयन दिये मरधन कु, बन बन फरत उधारी रे।
उज्वल वरन दीनी बगलन कु, कोयल कर दीनीकारी रे।
औरन दीपन जल निरमल कीनो, समुदर कर दीनी खारी रे।
मुरख कु तुम राज दियत हो, पण्डित फरत भिखारी रे।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागुन राना जी तो कान बिचारी रे।
॥३६५॥

१३

भजन भरोसे अविनाशी, मै तो भजन भरोसे अविनाशी।
जप तप तीर्थ कछुए न जाणुं फरत में उदासी रे।

---

1 कौल, बचन।

मत्र ने जत्र कछुए न जाणुं वेद पढ़्यो न गै कासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की हूँ दासी ॥३६६॥

१४

कोई ना जाने हरिया तारी गति कोई ना जाने।
मिट्टी खात मुख देखा जसोदा चोदह भुवन भरिया।
पडी पाताल काली नागनाथ्यूं सूरज शशी डरिया।
डूबत व्रज राख लियो है कर गोवरधन धरिया।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मरने आयो सो तरिया ॥३६७॥

१५

चरण रज महिमा मे जानी।
ये ही चरण से गगा प्रगटी भगीरथ कुल तारी।
ये ही चरण से विप्र सुदामा हरि कचन धाम दीनी।
ये ही चरण से अहिल्या उधारी गौतम की पटरानी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ये ही चरण कमल मे लपटानी ॥३६८॥

१६

मेरो मन हर लिनो राजा रण छोड़, राजा रण छोड़, प्यारा रगीला रणछोड़
केशव माधव श्री पुरपोत्तम कुबेर कल्याण कीजो।
शख चक्र गदा पद्म विराजे, मुख मुरली धन घोर।
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे, कुण्डल की छब ओर।
आस पास रत्नागर सागर, गोमती जी करे कलोल।
धजा पताका बहुल्या फरके, झालर फरत झकझोर।
सब भगत के भाग्य ही प्रकटे, नाम धर्यो रणछोर।
जे कोई तेरो नाम सुनावे, पावे युगल किशोर।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर नागुण कर ग्रहो नन्द किशोर ॥३६९॥

गुजराती में प्राप्त पद

१

बोल माँ बोल मा बोल माँ रे।
राधा कृष्ण बिना बीजूं बोल मा[१]।
माकर शेलडीनो स्वाद तजी ने।
कडवो लीवडो घोल माँ रे।
चाँदा सूरजनु तेज तजी ने।
अगिया सगा ने प्रीत जोड माँ रे।
हीरा माणेक झवेर तजी ने,
कथीर सगाते मणि तोल माँ रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
शरीर आप्युं सम तोल माँ रे ॥३७०॥

२

ध्यान धणी केरू धरवूं[२] रे, बीजुं[३] पारे शुं करूँ।
शुं करूँ रे सुन्दर श्याम, बीजाने[५] मारे शुं करूँ।
नित्य उठी शुभे नाहि अेने धोई अे रे, ध्यान धणीतणुं धरीए रे।
साधु जन ने जमाडीअे[४] वाला, जूढ़ं वधे[६] ते अमे जमीए रे।
वृन्द ते वन मा राच्यो रे वाला, राम मडल माँ तो अमे रमीए रे।
हरि ने चीर काम न आवे वाला, भगवाँ पहरीने अमे भमीए रे।
बाई मीराँ के प्रभु-गिरिधर नागर, चरण कमल माँ चित धरीए रे।
॥३७१॥

पदाभिव्यक्तिमें वह गाम्भीर्य पूर्ण मधुरता नहीं जो मीराँ के पदो की विशेपता है।

---

१ मत कर, २ धरना, ३ दूसरा, ४ भोजन करा कर, ५ दूसरे का, ६ बढ़े।

३

राम नाम साकर कटका हाँ रे, मुख आवे अमी रस गटका।
हाँरे जेने[1] राम भजन प्रीत थोड़ी, तेनी[2] जी मड़ली लियो ने तोड़ी।
हाँरे जेने राम तना गुण गाया, तेने जमुना मार न खाया।
हाँ रे गुण गाये छे मीराँ बाई, तुम हरि चरने जाओ धाई।
बोल माँ बोल माँ बोल माँ रे, राधिका सुन विन बोल माँ रे।
साकर सेरडी स्वाद तजी ने, कड़वो लिवडो[3] घोल माँ रे।
चान्दा सूरजने तेज तजी रे, आगिया सधाथे प्रीत जोड माँ रे।
हीरा माणक जेवर तजी ने, कथीर सधा ये मनी तोल माँ रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मरीर आप्यूँ समतोल माँ रे ॥३७२॥†

उपर्युक्त पद का प्रथमांश "राम नाम ' जाओ धाई। अभिव्यक्ति के आधार पर प्रक्षिप्त ही प्रतीत होता है। द्वितीयाश "बोल माँरे प्रीत जोड मारे।" प्रथम पद (स० १) की ही पुनरुक्ति है। ऐसे पद निश्चित रूप से प्रक्षिप्त कहे जा सकते हैं।

४

मुझ अवला ने मोटी नीरात थई सामलो घरे, नु म्हारे साँचु रे।
खाली धडाऊँ बीटलवर केरी, हार हरिनो म्हारे हिय रे।
तीन माल चतुर भुज चुडलो, सिद्ध सोयी धरे जाइये रे।
झाझरिया जगजीवन केरा, किसन गला री कठी रे।
विछुवा घुंघरा रामनारायण, अनवट अन्तरजामी रे।
पेटी धड़ाऊ पुरुषोतम केरी, ने टीकम नाम नूँ तालो रे।
कुन्जी कराऊँ करुणा नन्द केरी, ते मा गैपा नू माँरू रे।
सासर वासो सजी ने वैठी, अव नथी[4] काँचू रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि नु चरणे जाचू रे।

३७३॥†

---

१ जिसको, २ उसको, ३ नीम, ४ नही।

५

मुखड़ानी माया लागी रे, मोहन प्यारा, मुखड़ानी माया लागी रे।
मुखडूं में जोयूं[1] तासूं सर्व जग थे यूं[2] खारूँ, मन मारूँ, रहियूं न्यारूँ रे।
संसारी नो सुख एवो[3] झाझवाना नीर जे वूं[4], तेने तुच्छ करी फेग्यिे रे।
ससारी नो सुख काचूं, परणी ने रड़ावु पाछुं, तेने घर सीद[5] जइये रे।
परणूं तो प्रीतम प्यारो, अखण[6] सौभाग्य मारो, राण्ड़वानो भय टाल्यो रे।
मीरा बाई बलिहारी आशा मने एक तारी, हवे हूँ तो बड भागी रे।
॥३७४॥†

६

काम नही आवे तो काम नही आवे प्रभु बिना तुम्हारे काम नही आव।
रुचि रुचि अन्न वो भोजन बनायो, तापरे तन तापकर लगायो रे।
रत्न जतन करि एहि पुतर जायो, छनो छनो बाबु लाड़ लडायो रे।
तिरया कहे तोरे साथ चलूंगी, लुटि लुटि वाको धन खायो रे।
काढ काढ करे घर की बाहरी छनुरे रहेवा न पाया रे।
बाई मीरां थे प्रभु गिरधर नागुण, चरणे रही चरण न धरायो रे।
॥३७५॥†

७

हां रे चालो डाकोर माँ जई वसिये।
हा रे मने रग लगाडी रग रसिये रे।
हाँ रे प्रभात ने पहोर माँ नोबत बाजे।
हाँ रे अमे दरसन करवा जइये रे।
हाँ रे अटपटी पाग केसरियो बाधो रे।
हाँ रे काने कुण्डल सोइये रे।
हाँ रे पीला पीताम्बर जरकस जामा।

— —

१ देखा २ हुआ ३ ऐसा ४ जैसा ५ उसको, ६ अखड ।

हाँ रे मोतियन माल थी मोहिये रे।
हाँ रे चन्द्र वदन अनियाली आँखो।
हाँ रे मुखड़ो सुन्दर सोहिये रे।
हाँ रे रुमझूम रुमझूम नुपूर वाजे।
हाँ रे मन मोहियो मारू मोर लिये रे।
हाँ रे मीराँ बाईं कहे रे गिरधर नागर।
हाँ रे अंगों अंग जाई मलिये रे ॥३७६॥†

उपर्युक्त पद गुजराती गरवा गीतों की तर्ज पर है।

८

सोकल डानूँ साल भरि भोटूँ हो जीरे घरमाँ सो कलडानूँ साल मोरे।
हेमो ने हमारे मइयर वनावो वोला, हवे रहेवानूँ म्हाने खाँटु।
कुवेरे पडीमुं अभो वखड़ोर पीसूँ, हावे जीवा ने आल सिर चोटु।
सासु हठीली ननद ढगारी वाला, नाना दिये रयुं में यूं मोटु।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर वाला, चरण कमल चितने ओटु ॥३७७॥†

९

लेताँ लेताँ राम नाम रे, लोकड़याँ तो लाज मरे छे।
हरि मन्दिर जाता पाव लिया रे दूखे, फिरि आवे सारो गाम रे।
झगड़ो थाय त्याँ दौड़ी ने जाय रे, मुकी ने घर ना काम रे।
भाड़ गवैया गानें का नृत्य करताँ, बेसी रहे चारे जाभ रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित हाम रे ॥३७८॥†

१०

हाँ रे मैं तो की धी छे ठाकोर थाली रे, पधारो वनमाली रे वनमाली।
प्रभु कगाल तोरी दासी, हाँ रे प्रभु प्रेमना छो तमे प्यासी, दासी नी पूरजो आगी।
प्रभु साकर द्राख खजूरी, माँहे न थी बामुरी के पुरी, मारे सासु नन्दनी मूली।

प्रभु भाँत भाँत ना मेवा लावूँ, तमें पधारो वासु देवा मारे भुवन मा
रजनी रेहवा।

हाँ रे में तो तजी छे लोकनी शका, प्रीतम का घर हे वका बाई मीराँ गे
दीघा डका ॥३७९॥†

११

काये कूँ नलीयो तव तु कोय को न लीयो, रामजी को नाम तव तु काये
को न लीयो।

नव नव माँस तुंने उदर मे राख्यो, वड़ोरे भयो तवसे कुल लजायो।
गुनका को वेटो गली माही डोले, पिता विन पुन गुनका को कहायो।
मीराँ बाई के प्रभु त्याहारा भजन विना, आवो मनखोते ऐले गँवायो।
॥३८०॥†

खड़ी बोली में प्राप्त पद

१

मैं तो हरि गुण गावत नाचूगी।
अपने महल में बैठ कर प्रभु जी गीता भागवत बाचूँगी।
ज्ञान ध्यान की गठरी बाध कर, हिरदे मन मे राचूँगी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सदा प्रेम रस चाखूँगी ॥३८१॥†

अभिव्यक्ति के आधार पर पद को प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

२

मालक कुल आलम के हो, तुम साँचे श्री भगवान।
स्थावर जगम पावक पाणी, धरती बीच समान।
सब मे जलवा तेरा देखा, कुदरत के कुरवान।
सुदामा के दारिद खोये, बाले की पहिचान।
दो मुट्ठी तडुल की चाबी, श्राप भये रथवान।

उन ने अपने कुल को देखा छूट गये तीर कमान।
ना कोई मारे ना कोई मरता, तेरा यह अज्ञान।
चेतन जीवन तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान।
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजे, बन्दी अपनी जान ॥३८२॥†

, उपर्युक्त पद मीराँ विरचित है ऐसा आभास पद के किसी भी अंश से नहीं मिलता। "मीर माधो" के निम्नांकित पद से उपर्युक्त पद की तुलना करने पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि "मीर माधो" का ही पद मीराँ के नाम पर चल पड़ा है।

मालक कुल आलम के हो साँचे श्री भगवान'
स्थावर जंगम पानी पावक, धरती बीच समान।
सब मे जलवा तेरा देखा, कुदरत के कुरबान।
सुदामा के दारिद खोये, पाडे की पहचान।
दो मुट्ठी तंडुल की चाबी, बख्शे दो जहान।
भारत में अर्जुन की खातर, आप भये रथवान।
उसने अपने कुल को देखा, छूट गये तीर कमान।
ना कोई मारे ना कोई मरता, तेरा ही अजान।
यह तो चेतन अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान।
मुझ अज्ञान पर किरपा कीजे, बन्दा अपना जान।
मीर माधो में शरण तिहारी, लागे चरनन ध्यान ॥३८३॥

(बृहद्राग रत्नाकर, पृ० १७७, पद १३८)]

३

कछु लेना न देना मगन रहना।
नाय किसी की काणा सुनवी, नाय किसी को अपनी कहना।
गहरी गहरी नदिया नाव पुरानी, खेवटियें सूं मिलते रहना।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, साँवरा के चरण में चित देना ॥३८४॥†

पदाभिव्यक्ति में पूर्वपर संगति का अभाव है।

मीराँ को प्रभु सांची दासी बनाओ।
झूठो धंधो से मेरा फंदा छुड़ाओ।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा।
बुधि बल यदपि करुं बहुतेरा।
हाय राम, नहिं कछु बस मेरा।
मरत हू विवस प्रभु धाओ सबेरा।
धर्म उपदेश नित प्रति सुनती हूं।
मन कुचाल से भी डरती हू।
सदा साधु सेवा करती हूं।
सुमिरण ध्यान मे चित धरती हूं।
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ।
मीराँ को प्रभु साची दासी बनाओ ॥३८५॥†

भाषा के आधार पर पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है।

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

१

वन्दे बन्दगी मत भूल।
चार दिना की कर ले डूबी, ज्यूं पाड़िभरा फूल।
आया था ए लोभ के कारण, भूल गमाया मूल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, रहना वे हजूर। ॥३८६॥†

उपर्युक्त पद में व्रज और पंजाबी भाषा का अजीव सम्मिश्रण है। अन्तिम पक्ति का द्वितीयाश 'रहना वे हजूर' भी अर्थ हीन ही प्रतीत होता है। पजाबी भाषा के प्रभाव के कारण पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है।

वैष्णव प्रभाव द्योतक पद

पौराणिक गाथाएँ

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

क्यूं कर म्हे दिन काटा (नाथ जी), थे तो म्हासू अंतर राखो
(नाथ जी) राखो कपटो आटां।
कुबज्या दासी कस राई की, फिरती कपड़ा फाटा,
वाकू तो पटरानी कीन्ही पहरें रेसम पाटा।
वाजूबन्द मूंदडी अंगुली नखसिख गहणों साटा,
पहर[1] कुवड़ी न्हावण चाली जमुन के घाटा।
धान न भावे नीद न आवै, चिन्ता लगी निराटां,
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, देख देख हियो फाटां।
॥३८७॥†

२

दूर रहो रे कवर नदना रे, परे[2] रह रे कवर नदना रे।
कारी कामरी वारा तू रे कान जी ओ,
थे तो रीझ्या[3] सालूडा[4] री कोर जी ओ।
गज मोत्या[5] वारी राणी राधिका जी रे,
श्री राधा गोरी ज्याको नाम छै रे।

---

१ पहन कर, २ दूर, ३ मोहित हो गये, ४ओढ़नी, ५मोती का राजस्थानी बहुवचन।

बाला हाथ जोड़ी ने करा बीनती रे,
म्हारो अबला को कह्योड़ो[1] जादू मानजो रे।
मीराँ मेड़तणी रा म्हैला उभयिया रे,
मैं तो रीझ्या रीझ्या साधूड़ा री साथ मे रे ॥३८८॥†

यह पद राजस्थानी लोक गीतो की लय पर ही है। श्री सूर्यकरण जी चतुर्वेदी जी के अनुसार भी इसकी प्रामाणिकता सदिग्ध है।

३

रुक्मणी री लाज राखो, राखोला म्हाराजि।
आजि रुक्मण की लाज राखो।
माता के मै घणि पियारी, नाही दोप पिता को।
रुकमइयौ सिसुपाल बुलायो, नही मुख देखूं वाको।
थाका विड़द कूं लोग हसैगो, जीव जावेगी म्हाको।
मेरा स्याम कूं कृष्न बतावै, नारद मूनीयो भाषो।
मीराँ कहे यूं रुक्मणि कहत है, ऊँच नीच मति राखो। ॥३८९॥†

४

माधो जी, आया ही सरैगो, राणी रुक्मण का भरतार।
लिखी पतिया द्विज हाथ पठावो, द्वारका ने गमन करैगी।
वडे वडे भूल महावल जोधा, कुण से कोण घटैगी।
यो सिसपाल चदेरी को राजा, कूडी साँस भरैगी।
मीराँ कहैं यूं रुक्मणी कहत है, योको ही विडद लजैगी।
॥३९०॥†

---

१ कहा हुआ।

प्रसिद्ध है कि मीराँ ने रुक्मणी मंगल नामक एक ग्रथ की रचना भी की थी, परन्तु अभी तक इस ग्रथ की उपलब्धि नही हुई है। श्री सूर्य-करण जी चतुर्वेदी का मत है कि उपर्युक्त दोनों पद सम्भवत. उसी ग्रथ के अश हो। सम्पूर्ण ग्रथ के अप्राप्य होने के कारण मात्र दो चार पदो के आधार पर इस सबध मे कोई निर्णय देना सभव नही।

५

मत आवै रे नन्द का म्हांकी गली।
म्हाकी गली की बाकी गुवालिन, मत ना लोग हँसावे रे।
सासु बुरी मेरी नणद हठीली, पाडोसण[1] लख जावैं[2] ।
कोऊ गलियो मे लुकतो छिपतो म्हाके कामी आवैं रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, झूठो ही ललचावे रे ॥३९१॥†

६

म्हासूँ मुखडै क्यूँ नहि बोली।
म्हासूँ काई गुना लियो छै अबोले।
पहली प्रीति करी हरि हम सूँ, प्रेम प्रीति को झोलो।
प्रेम प्रीति की गाठना धुलि गई, याने कुण विधि खोलो।
कुब्जा दासी कसराय की, अक भरि भरि तोलो।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, हिवडा री गाठवा खोलो।।३९२।।†

७

मोहन मुसक्याने सखी लागे सोही जाणे।
मे जल जमुना जात वृन्दावन वो पीछे से आयो।

---

१ पड़ोसी स्त्रियाँ, २ लख जावे, भाँप लेना।

काकरी दे मोरी गगरी गिराई, जोरी से बैंया मरोरी ।
सखी कोई रीत न जाणे।
मैं दधि बेचन जात वृन्दावन वो सामे से आयो ।
दधि की मटकी सिर से गिराई लूट लूट दधि खाणे,
सखी कोई मरम न जाणे।
घायल की गति घायल जाणे, जे कोई निकसे जाणे ।
मीराँ को कह्यो बुरा न मानो, आखिर जात अहीर।
सखी ये प्रीत न जाणे ॥३९३॥†

पद के तीसरे अंश का शेष पद से समन्वय नही होता। श्री सूर्यकरण चतुर्वेदी जी के मतानुसार भी यह पद मीराँ का प्रतीत नही होता।

८

नन्द जी रे आज बधावणो छै।
गहमह हुई रग रावल मैं, निरखि नैना सुख पावनो छै।
भाभी जी, म्यो था सूँ पूछां, आजिरो द्योस सुहावणो छै।
मीराँ के प्रभु गिरिधर जनमिया, हुवो मनोरथ भावनो छैं।
॥३९४॥†

९

हे री माँ नन्द को[1] गुमानी, म्हारे मनडे बस्यो।
गहे द्रुम डार कदम की ठाढो, मृदु मुस्काय म्हारी ओर हस्यो।
पीताम्बर कटि काछनी काछे, रतन जटित माथे मुकुट कस्यो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, निरख बदन म्हारो मनड़ो फंस्यो।
॥३९५॥

---

१ नन्दा का पुत्र 'नन्द को', 'नन्द का' आदि प्रयोग राजस्थानी भाषा की शैली मे प्राय प्राप्त होते हैं,

१०

कुछ दोष नहिं कुवज्या ने, वीर[2] अपना श्याम खोटा।
आप न आवै पतियाँ न भेजे, कागज का कोई टोटा।
नौ लख धेनु नन्द घर दूधे, माखन का नही टोटा।
आप ही जाय द्वारिका छायें, ले समदर[3] की ओटा।
कुवज्या दासी नन्दराय की, वे नन्द जी के ढोटा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कुवज्या बड़ी हरी छोटा।
॥३९६॥†

एक निम्नाकित ऐसा ही पद 'चन्द्रसखी' के नाम पर भी प्रचलित है।

कुछ दोष नही कुवज्या ने, वीर आपनो स्याम खोटो।
आप न आवे पतियाँ न भेजे, कागद रो काई टोटो।
विख वेल रे विख् फल लागे, काई छोटी काई मोटो।
जमना के नीरे तीरे धेन चरावे, हाथ चन्दन रो सोटो।
कुवज्या चेरी कस राय री, वो छै नन्दजी रो ढोटो।

इस पद मे 'चन्द्रसखी' की छाप नही है तथापि यह 'चन्द्रसखी'के सग्रह म ही प्राप्त है। पदाभिव्यक्ति देखने से प्रतीत होता है कि गेय परम्परा के कारण विभिन्न पदाश सग्रहीत होकर एक स्वतन्त्र पद के रूप मे चल पड़े है।

११

हमने सुणी छै हरि अधम उधारण।
अधम उधारण सब जग तारण।
गज को अरजि गरजि उठि ध्यायो, संकट पर्‍यो तब निवारण।
द्रोपति सुता को चीर बढायो, दुसासन को मान पद मारण।
प्रल्हाद की प्रतग्यां राखी, हरणाकुस नख इन्द्र विदारण।

---

२ भाई, ३ समुद्र।

रिख पतनी पर कृपा कीन्ही, विप्र सुदामा की विपति विदारण।
मीराँ के प्रभु मो बंदि पर, एती अबेरी भई किण कारण।
॥३९७॥

१२

म्हा नैणा आगे रहीजो जी स्याम गोविन्द।
दास कबीर घर बालद जो लाया, बासदेव का छान छवन्द।
दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनन्द।
भीलणी का बेर सुदामा का तंदुल, भर मूठड़ी, बुकन्द।
करमी बाई को खीच आरोग्यो[1], होइ परसण पावन्द।
सहस गोप बीच स्याम बिराजै, ज्यो तारा बिच चन्द।
सब संतो का काज सवांरे, मीराँ सूँ दूर रहन्द। ॥३९८॥

उपर्युक्त दोनो पद इस श्रेणी के अन्य पदो से अलग पड़ते है, क्योंकि इनमें निर्वेद की भी भावना झलकती है। इस पद में प्रयुक्त 'मीराँ 'सूँ दूर रहन्द' जैसी टेक भी अन्य पदों में प्राप्त नही।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

राम गरीब निवाज, मेरे सिर राम गरीब निवाज।
कचन कलस सुदामा कूँ दीनो, हीडत है गजराज।
रावण के दस मसतग छेदे, दीयो भभीखण राज।
द्रोपती सती को चीर बधायो, अपणे जन के काज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, कुल की राखी लाज ॥३९९॥

---

१ खाया।

२

किरपा भई सतगुर अपने की बेर बेर, हरि नॉव[1] लियो री।
हिरणाकुस प्रल्हाद सतायो, जार अगन विच डाल दियो री।
राज छांड दियो नॉव न छाड़ियो, खम्भ फाड प्रभु दरस दियो री।
माता को उपदेस भयो जब, राज छाँड़ धुजो वन में गयो री।
मारग मे मिल गए नारद मुनि, तब से धुजो अटल भयो री।
सागर ऊपर सिला तिराई, दुष्ट रावण कूँ मार लियो री।
सीता सहित अवधपुर आये, भगत विभीषण राज दियो री।
सब भगतन की सहाय करी प्रभु, मेरी बेर कहाँ सोय गयो री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बसी बजा के मोहिं लियो री।
॥४००॥†

पद के प्रथम पक्ति से संतमत का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है, परन्तु शेष पद से वैष्णव प्रभाव ही स्पष्ट लक्षित होता है।

३

प्रीत मत तोडो गिरधर लाल।
तुम ही साहुकार तुम ही वोहोर, ब्याज भूल मत जोडो।
सॉवरियाँ के कारणे मे तो बाग लगायो, काचा कलियाँ मत तोड़ो।
सॉवरियाँ के कारण मे तो सेज बिछाई, सूनी सेज मत छोडो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, इमरत मे विष मत घोरो।
॥४०१॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध का निर्वाह नही हुआ है। श्री सूर्यकरण जी चतुर्वेदी के मतानुसार भी यह पद मीराँ विरचित नही प्रतीत होता।

---

१ नाम।

४

नन्द को विहारी म्हांरे हियड़े वस्यो छै।
कटि पर लाल काछनी काछे, हीरा मोती वालो मुकुट धर्यो छे।
गहिर त्यो डाल कदम की, ठाड़ी गोहज मो तन हेरि हस्यो छे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, निरखि दृगन में नीर भर्यो छे।
॥४०२॥†

पद की तृतीय पंक्ति सर्वथा अर्थहीन है।

५

मिथुला, कर पूजन की त्यारी।
धूप दीप नैवेद्य आरती, सवही सौंज लॅआ री।
वहु विध सूं पकवान वनाकर, करो भोग की त्यारी।
जीमेली[1] म्हारो पिया गिरधारी, साधा ने वेग वुला री।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर चरणां पर वलिहारी। ॥४०३॥

पाठान्तर १,

मिथुला, सुन यह वात हमारी।
राज भोग की समै[2] हुई है, वेग[3] थाल सजला री।
छप्पन भोग छतीसों विजन, सीतर जल की झारी।
धूप दीप नई वेद[4] आरती, कीजे वेग त्यारी।
धरियें भोग विलम्व नहीं कीजिये, मेरी मान पियारी।
जीमे म्हारो प्यारो गिरधर, साधा ने वेग वुलारी।

उपर्युक्त पद विशेष विचारणीय है। किसी अन्य को आज्ञा देकर पूजन की त्यारी करने की अभिव्यक्ति इस पद की विशेपता है। यहां "मिथुला" सम्बोधन भी किस के प्रति हुआ है यह एक विचारणीय प्रश्न है।

---

१ भोजन करेगा २ शीघ्र ३ समय, ४ नैवेद्य।

६

मन मोह्यो रे वंसीवाला।
काँधे कमरिया हाथ लकुटिया, मारियो नैना के भाल।
यक वन ढूँढ़ी सकल वन ढूंढ़े, कहूँ नही पायो नन्दलाल।
मोर मुकुट पीताम्वर राजे, कानन कुंडल छवी विसाल।
मीराँ प्रभु गिरधर जू की प्यारो, आनि मिल्यो प्यारी गोपाल।
॥४०४॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सम्बन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

७

वाह वाह रे मोहन प्यारे, कहाँ चले जादू करि के।
रुप सरूप सलूनी सी डारी, मेरो मन लीनू हर के।
मोर मुकुट सिर छत्र विराजै, नख पर गिरवर धर के।
दमन कियो नाग काली को, आप धुसे मध सर के।
फण फण निरत करत यदुनन्दन, अमै कियौ वग बद के।
सब व्रजलोग छाँडि निज घरकूं, जाई वसे तर गिर के।
सात दिवस लग सूंड़ धार, जल इन्द्र पखो पग डर के।
कातिग[1] मास वाल सब मिल कै, नाचै जल मे तिर के।
चोर चोर पुनि वगल डार कै, जाय चढ़े छल करि के।
वृन्दावन की कुज गलिन मे, रास रच्यो छल वल के।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, पानै पडी गिरिवर के ॥४०५॥

पदाभिव्यक्ति असंगत है।

८

पाछो रथ फेरो द्वारका रारा।
सूरज तलफे चदा तलफे, तलफे नोलख तारा।

---

१ कार्तिक।

गऊ भी तलफे बाच्छा भी तलफे, तलफे गुवाल विचारा।
जोगी भी तलफे जगम भी तलफे, तलफे समदर खारा।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम जीते हम हारा ॥४०६॥†

ऐसी पदाभिव्यक्ति अन्य पदो से सर्वथा भिन्न पड़ती है। अन्तिम पक्ति और शेप पद मे पूर्वापर सवन्ध का निर्वाह भी नही हुआ है।

९

मैया ले थारी लकरी, ले थारी कावरी,
वछिया हू न जाऊ री।
सग के ग्वाल वाल सव वलिभद्र कूं मोकलो।
एकलो वन मे डराऊ री।
सघन वन मे कछु खवर नहि परे।
सग के ग्वाल सव मोहे डरावे रे।
दादुर मोर पछी यूं रटे, कृष्ण कृष्ण कहि मोहि खिजावे।
माखन तो वलिभद्र को खिलायो, हमको पिलाई खाटी छाछडी।
वृन्दावन के मारग जाता, पाऊ[1] मे चेभत झीनी काकरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कवल तोरी आख री॥४०७॥†

उपर्युक्त पद का भाषा और भाव के आधार पर गुजराती पदो से गहरा समन्वय है। गुजराती भाषा का प्रभाव भी स्पष्ट है। प्रथम अर्द्धांश की भावाभिव्यक्ति का सूरदास के पदो से गहरा साम्य है। पद की छठी पक्ति का शेप पद से पूर्वापर सवन्ध का निर्वाह नही होता। अन्तिम पक्ति द्वितीयार्द्ध सर्वथा अर्थविहीन है। ऐसे पदो को गेय परम्परा का फल मानना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

१०

आज अनारी ले गयो सारी, वैठी कदम के डारी हो माय।
म्हारी गैल[2] पर्‌यो गिरधारी, हे माय आज अनारी ले गयो सारी।

---

१ पैर, २ पीछे।

मै जल जमुना भरन गई थी, आगयौ कृष्ण मुरारी हे माय।
ले गयो सारी अनारी हॉररी, जल मे उभी उघारी हे माय।
सखी साइनी मोरी हँसत है, हँसि हँसि दे मोहि तारी हे माय।
सास वुरी अरु नणद हठीली, लरि लरि दे मोहि तारी हे माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की वारी हे माय ॥४०८॥†

११

वाटड़ली निहारां जी हरि ठाढी।
आप नही आवत पतियाँ नाहीं मेलत, छाती करी हरि ठाढी[1]।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, जमुना वहे छे नाडी।
आप जाय मथुरा मे वैठे, प्रीत रली उहाँ वाढी।
हम को लिपि लिपि जोग पठावत, आप दूलह कुवज्या भई लाढी[2]।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कहा करै जमुना आडी ॥४०९॥

लगभग ऐसे ही पद गुजराती भाषा के पदो मे भी मिलते है। अन्तिम पंक्ति का द्वितीयाश अर्थविहीन है।

१२

मोरी गलियन मे आवो जी घनश्याम।
पिछवाड़े आए हेला[3] दीजो, ललित सखी हे म्हारो नाम।
पैया परत हूँ विनती करत हूँ, मत कर मान गुमान।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तेरे चरण मे ध्यान। ॥४१०॥

---

१ कठिन, मजबूत २ दूसरी पत्नी, ३ पुकार।

विभिन्न भाषाओं में प्राप्त पद

१

कुबज्या ने जादू डारा री, जिन मोहें श्याम हमारा।
झरमर झरमर मेहा बरसे, झुक आये बादल कारा।
निरमल जल जमुना को छाँड़ो, जाय पिया जल खारा।
शीतल छाँय कदम की छोड़ी, धूप सहा अति भारा।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वाही प्राण पियारा ॥४११॥†

कही कही प्रथम पक्ति के द्वितीयाश का निम्नाकित पाठान्तर भी प्राप्त है. —"विना भाल सुर मारा"।

२

मेरे प्यारे गिरिवरधारी जी, दासी क्यो बिसार डारी।
द्रोपदी की लाज राखी, सब दुख सो निवारी।
प्रल्हाद पैज पारी, नृसिंह देह धारी।
भीलनी के झूठे वैर खाये, कछु जात न बिचारी।
कुब्जा सो नेह लायो, और गोतम की नारी तारी।
प्यासी फिरो दरस बिन तलफो, मोहे काहे बिसारी।
प्यासी फिरो दरस बिन तलफो, मोहे काहे बिसारी।
मीराँ के प्रभु दरसन दीजो, गिरिधर अपनी ओर निहारी।
॥४१२॥

३

छैल, गैल[1] मत रोकै तू हमारी रे।
चाल कुचाल चलो जिन चचल, ऐसो अनीती तैने करमी विचारी रे।
सखी सग की देखत ठाढ़ी, चरचा करेंगो सब पुरनर नारी रे।

---

१ रास्ता।

मैं सुकुमार खडी कांपत हों, सिर पर दधि की मुटकिया भारी रे।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, तुम्हरे चरण कमल वलिहारी रे ॥४१३॥†

पदाभिव्यक्ति के आधार पर पद मीरॉं विरचित नही प्रतीत होता। श्री सूर्यकरण जी चतुर्वेदी का मत मेरे विचारो का समर्थन करता है।

४

छांडो लगर मोरी वहियाँ गहो ना।
मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे रहो ना।
जो तुम म्हारी वहिया गहत हो, नयन जोर मोरे प्रान हरो ना।
वृन्दावन की कुज गलिन मे रीति, छाड़ि अनरीति करो ना।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारें टरो ना।
॥४१४॥†

'चन्द्रसखी' के नाम पर एक ऐसा ही पद प्रचलित है —

छाडो लगर मोरी वहियाँ गहो ना।
जो तुम मोरी वहियाँ गहत हो, नैणा मिलाय मेरे प्राण हरो ना।
हम तो नारी पराये घर की, हमरे भरोसे गोपाल रहो ना।
वनरावन की कुंज गलिन मे, रीति छाडि अनरीति करो ना।
जाय पुकारु कस राय के दरवार, तुमरी वात एक सहो ना।
चन्द्र सखी भज वालकृष्ण छवि, चरण कमल चित टारें टरो ना।

वर्तमान परिस्थिति मे पद मौलिक रुपसे किस का है, यह कहना असम्भव है।

५

वडी वडी अखियन वारो सॉंवरो, मो तन हेरो हसि क री।
हो जल जमुना भरन जात ही, सिर पर गागरि लमिके री।
मुन्दर स्याम सोलोने मूरति, मो हियरे मे वसिकै री।
जन्तर लिखि ल्यावो मन्तर लिखि ल्यावो, ओदध ल्यावो घसिके री।

जो कोई ल्यावै श्याम बैद कूँ, तो उठि बैठूँ हसिके री।
भ्रकुटि कमान वान बाँके लोचन, मारत हिय कसिके री।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कैसो रहो घर वसि के री ॥।४१५॥†

पाठान्तर १,

हे माँ वड़ी बड़ी आँखियन वारो सावरो, मो तन हेरत हँसि के।
भौहें कमान वान वाके लोचन मारत हियरे कसि के।
जतन करो, जतन लिख बाँधो, ओषध लाऊ घसि के।
ज्यो तोको कछु और विथा हो, नाहिन मेरो वसि के।
कौन जतन करो मेरी आली, चदन लाऊ घसि के।
जन्तर मन्तर जादू टोना, माधुरी मूरत बसि के।
साँवरि सूरत आनि मिलावो, ठाड़ी रहूँ मैं हँसि के।
रेजा रेजा भयो करेजा, अदर देखो धसि के।
मीराँ तो गिरधर विन देखे, कैसे रहे घर किस के।†

उपर्युक्त पाठ की अभिव्यक्ति मे असंगति है। 'चन्द्रसखी' के नाम पर भी एक ऐसा ही पद प्रचलित है :—

हँस के री, माँ री, मेरा मन ले गये आँखनवारो क्वारो, हँसि के।
भौहे कवान वान जाके, लोचण मेरे हिवड़े मार्‍या कस के।
रेजा रेजा भयो करेजा मेरो, भीतर देखो धस के।
जतन करो, जन्तर लिखि ल्यावो, ओखद लावो घस के।
रोम रोम विप छाय रह्यो है, कारो खायो डस के।
जो कोई मोहन आनि मिलावे, गले मिलूँगी, हँस के।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि, क्या रे करु घर बस के।

६

अब नही जाने दूँ गिरधारी, थारे म्हारे प्रीत लगी अति भारी।
बाँको मुकुट काछनी सुन्दर, ऊपर जरद किनारी।

गल मुतियन की माल विराजे, कुन्डल की छवि न्यारी।
बाँकी मो कजरारे नैना, अलकें छुट रहि कारी।
मद मद मुरली धुन बाजत, मोही बृज की नारी।
क्षुद्र घटिका कटि सोहै, भुज पर बाजू धारी।
कड़ा भरहरी सुघर नेवरी, नूपुर की गुणकारी।
दुरजन लोग हँसो क्यो ने मोसो, दे दे कर कर तारी।
मीराँ प्रभु की भई दिवानी, प्रेम मगन मतवारी ॥४१६॥†

पद की सातवी पक्ति अर्थहीन प्रतीत होती हं। आठवी पक्ति की अभिव्यक्ति और शेष पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सवन्ध का निर्वाह नही होता। यह पद श्री जगतश्रवण जी के पुजारी जी की जवानी लिखा गया है। सूर्यकरण जो चतुर्वेदी के मतानुसार इस पद को इस रूप में प्रामाणिक नही माना जा सकता है।

७

मेरी चूनर भिजावे, मेरे भिजे अगी पाक।
नन्द महर जी को कुअर कन्हैया, जान न देऊगी मै आज।
पट पकर के फगवाँ ल्यूंगी, मुख भी डोगी उगराज।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सदा रहो सिरताज ॥४१७॥†

पद की तीसरी पक्ति सर्वथा अर्थ-विहीन है।

८

जागो मोहन प्यारे ललना, जागो वसीवार।
रजनी बीती भोर भई है, घर घर खुले किवारे।
गोपी दधि मथुन करियत है, कगन के झनकारे।
उठो लाल जी भोर भयो है, सुर नर ठाढे द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कोलाहल, जय जय शब्द उचारे।
माखन रोटी हाथ मे लीन्ही, गऊअन के रखवारे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, शरण आये कूं त्यारे ॥४१८॥†

पद की प्रथम और अन्तिम पक्ति के निम्नाकित पाठान्तर भी मिलते है।

"प्रथम पक्ति : "जागो बसीवारे ललना, जागो मेरे प्यारे।"

अन्तिम पक्ति : "मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तरण आया कूं तारे।"

अभिव्यक्ति के विचार से इस अन्तिम पक्ति का प्रथम पाठ ही उपयुक्त सिद्ध होता है।

९

तुम सो तो मन लाग रह्यो, तुम जागो मोहन प्यारे।
भोर भई चिडिया चहचाई, कागा बोले कारे।
कामनिया ने चोर संभाले, घर घर खुले किवारे।
सारी गउएं निकसाई, यमुना लेकर संग ग्वाल रे।
ग्वाल बाल सब द्वारे ठाडे, ठाई हार तिहारे।
घर घर ग्वालन दही बिलोवे, कर कगन झनकारे।
वस्तर आभूषण तन पर धारो, पागियाँ पेच सवारे।
या ब्रज के प्रभु भूषण तुम हो, तुम ही प्राण हमारे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आयी शरण तिहारे ॥४१९॥†

अन्तिम पक्ति के द्वितियाश का निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है। "तुम हो प्राण हमारे।" ऐसी स्थिति मे आठवी और नवी पक्ति के द्वितीयाश एक ही हो जाते हैं। पाचवी पक्ति का द्वितीयाश अर्थहीन है।

१०

सखी मेरो कानूडो, कलेजे की कोर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल की झकझोर।
विन्द्रावन की कुज गलिन मे, नाचत नद किसोर।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल चितचोर ॥४२०॥†

११

रे री कौन जाति पनिहारी।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, बीच मिले गिरधारी।
सुन्दर वदन नयन मृग मानो, विधाता आप सवारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम जीते हम हारी ॥४२१॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है।

१२

गागर ना भरन देत तेरो कान्ह माई।
हँसि हँसि मुख मोडि मोड, गागर छिटकाई।
घूघट पट खोल देत, साँवरो कन्हाई।
जसुमति तै भली बात, लाल को सिखाई।
नगर डगर झगरो करत, रारि तो मचाई।
हौ तो बीर जमुना तीर, नीर भरन धाई।
गिरधर प्रभु चरण कमल, मीराँ बलि जाई ॥४२२॥†

पद की छठी पक्ति मे प्रयुक्त "बीर" शब्द का अर्थ जुडता नही है। "गिरधर प्रभु चरण कमल, मीराँ बलि जाई।" जैसी टेक भी इस पद की विशेषता है।

१३

कमल दल लोचना, तैने कैसे नाथ्यो भुजग।
पेसि पियाला काली नाग नाथ्यो, फण फण निर्त अकरन्त।
कूद परियो न डर्यो जल माही, और कारी नहि सक।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, श्री वृन्दावन चन्द ॥४२३॥†

१४

मन अटको मेरे दिल अटको हो, मुकट लटक मेरे मन अटको।
माथे खोर चन्दन की, सेला है पीरे पटको।

शख गदा पद्म विराजै, गुंज माल मेरे हिये अटकी।
अन्तरधान भये गोपिन मे, सुध न रही जमुना तटकी।
पात पात वृन्दावन ढूंढै, कुंज कुज राधा लटकी।
जमुना के तीरे धेनु चरावै, सुरत रही वंशी वट की।
फूलन के जामा कदम की छैया, गोपिन की मटुकी पटकी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जानत हो सव के घटकी ॥४२४॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है। चतुर्थ और सातवी पक्तियाँ अर्थ-विहीन ही प्रतीत होती है, अतः पद की प्रामाणिकता सहज सदिग्ध है।

१५

यदुवर लागत है मोहि प्यारो।
मथुरा मे हरि जन्म लियो है, गोकुल मे पग धारो।
जन्मत ही पूतना गति दीनी, अधम उधारन हारो।
यमुना के तीर धेनु चरावै, ओढ़े कामलो कारो।
सुन्दर वदन दल लोचन, पीताम्बर पर वारो।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, कर में मुरली धारो।
शख चक्र गदा पद्म विराजै, सतन को रखवारो।
जल डूवत व्रज राखि लियो है, कर पर गिरिवर धारो।
मीरा प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारो। ॥४२५॥

१६

भज केशव गोविन्द गोपाल हरि हरि, राधेश्याम पहिरे वनमाला।
मथुरा मे हरि जन्म लियो है, गोकुल फुले नन्दलाला।
गोपी के कन्हैया वलभद्र जी के भैया, भक्त वच्छल प्रभु प्रतिपाल।
पूतना को जननी गति दीन्ही, अधम उधारन नन्दलाला।
मोर मुकुट पीताम्वर सोहै, गल वैजन्ती माला।

यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, मुरली बजावे नन्दलाला।
वृन्दावन हरि रास रच्यो है, मीराँ की करौ प्रतिपाला ॥४२६॥

१७

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
हाट बाट मोहि रोकत टोकत, या रसिया की मैं सारी न जानी।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मद मुसकानी।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, बसी मे गावे मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारू, चरण कमल मीराँ लपटानी।
॥४२७॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सवन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

१८

अब मै शरण तिहारी जी मोहि राखो कृपा निधान।
अजामिल अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढी विमान।
और अधम तारे बहुतेरे, माखन सन्त सुजान।
कुब्जा नीच भीलनी तारी, जाने सकल जहान।
कह लगि कहूँ गिणत नही आवै, थकि रहै वेद पुरान।
मीराँ कहै मै शरण रावरी, सुनियो दोनो कान ॥४२८॥

१९

सुण लीजो बिनती मोरी, मै सरन गही प्रभु तोरी।
तुम तो पतित अनेक उधारे, भव सागर ते तार्यो।
मै सब का तो नाम नहीं जानूं, कोई कोई भक्त बखान्यो।
अम्बरीप सुदामा नामी पहुचाये, निज धामा।
ध्रुव जो पाँच बरस को बालक, दरस दियो घनस्यामा।
धना भक्त का खेद जमाया, कबिरा बैल चराया।

शंख गदा पद्म विराजै, गुंज माल मेरे हिये अटकी।
अन्तरधान भये गोपिन में, सुध न रही जमुना तटकी।
पात पात वृन्दावन ढूंढै, कुज कुंज राधा लटकी।
जमुना के तीरे धेनु चरावै, सुरत रही वशी वट की।
फूलन के जामा कदम की छैया, गोपिन की मटुकी पटकी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जानत हो सब के घटकी ॥४२४॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है। चतुर्थ और सातवी पक्तियां अर्थ-विहीन ही प्रतीत होती है, अत. पद की प्रामाणिकता सहज सदिग्ध है।

१५

यदुबर लागत है मोहि प्यारो।
मथुरा मे हरि जन्म लियो है, गोकुल मे पग धारो।
जन्मत ही पूतना गति दीनी, अधम उधारन हारो।
यमुना के तीर धेनु चरावै, ओढे कामलो कारो।
सुन्दर वदन दल लोचन, पीताम्बर पर वारो।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, कर मे मुरली धारो।
शख चक्र गदा पद्म विराजै, संतन को रखवारो।
जल डूबत ब्रज राखि लियो है, कर पर गिरिवर धारो।
मीरां प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारो। ॥४२५॥

१६

भज केशव गोविन्द गोपाल हरि हरि, राधेश्याम पहिरे बनमाला।
मथुरा मे हरि जन्म लियो है, गोकुल फुलै नन्दलाला।
गोपी के कन्हैया बलभद्र जी के भैया, भक्त वच्छल प्रभु प्रतिपाला।
पूतना को जननी गति दीन्ही, अधम उधारन नन्दलाला।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला।

यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, मुरली बजावे नन्दलाला।
वृन्दावन हरि रास रच्यो है, मीराँ की करौं प्रतिपाला ।।४२६।।

१७

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
हाट बाट मोहि रोकत टोकत, या रसिया की मैं सारी न जानी।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बाँको चितवन मंद मुसकानी।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, बंसी मे गावे मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारू, चरण कमल मीराँ लपटानी।
।।४२७।।†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सवन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

१८

अब मैं शरण तिहारी जी मोहि राखो कृपा निधान।
अजामिल अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढी विमान।
और अधम तारे बहुतेरे, माखन सन्त सुजान।
कुब्जा नीच भीलनी तारी, जाने सकल जहान।
कह्ं लगि कहूँ गिणत नही आवै, थकि रहे वेद पुरान।
मीराँ कहै मै शरण रावरी, सुनियो दोनो कान ।।४२८।।

१९

सुण लीजो विनती मोरी, मैं सरन गही प्रभु तोरी।
तुम तो पतित अनेक उधारे, भव सागर ते तार्यो।
मैं सब का तो नाम नही जानूं, कोई कोई भक्त बखानो।
अम्बरीप सुदामा नामी पहुचाये, निज धामा।
ध्रुव जो पाँच बरस को बालक, दरस दियो घनस्यामा।
धना भक्त का खेद जमाया, कबिरा बैल चराया।

सबरी के झूठे बेर खाये, काज किए मन भाये।
सदना ओ सैना नाई को तुम लीन्हा अपनाई।
कर्मा की खीचड़ी तुम खाई, गनिका पार लगाई।
मीराँ प्रभु तुम्हारे रंगराती, जानत सब दुनियाई। ।।४२९।।

उपर्युक्त दोनो पदो की प्रथम पक्ति का भाव-भाषा साम्य विचारणीय है।

२०

तुम विन मोरी कौन खबर ले गोवरधन गिरधारी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल की छबि न्यारी रे।
भरी सभा मे द्रोपदी ठारी, राखो लाज हमारी रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी रे।।४३०।।

२१

देखत राम हँसे, सुदामा, कूँ देखत राम हँसे।
फाटी तो फुलडियाँ, पॉव उभाडे चलते चरण धसे।
बालपने का मीत सुदामा, अब क्यो दूर बसे।
कहा भावज ने भेट पठाई, तदुल तीन पसे।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे।
कित गई प्रभु मोरी गऊवन बछिया, द्वार बिच हस्ती फँसे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, सरणा तोरे बसे। ।।४३१।।

२२

गोकुल के वासी, भले ही आये गोकुल के वासी।
गोकुल की नारी, देखत आनन्द सुख रासी।
एक गावत एक नाचत, एक करत हाँसी।
पीताम्बर के फेटा बाँधे, अरगजा सुवासी।
गिरिधर से सुनवल ठाकुर, मीराँ सी दासी ।।४३२।। †

पदाभिव्यक्ति अस्पष्ट है। अन्तिम पक्ति की भाषा शैली विशेष विचारणीय है।

२३

आये आये जी महाराज आये।
गज वैकुंठ तज्यो गरुडासन, पवन वेग उठ ध्याये।
जब ही दृष्टि परे नन्दनन्दन, प्रेम भक्ति रस प्याये।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरन कमल चित ल्याये ।।४३३।।†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबन्ध का निर्वाह नही हुआ है। प्रथम दो पक्तियो से गज-उद्धार की कथा लक्षित होती है, परन्तु तीसरी और चौथी पक्तियो की अभिव्यक्ति सर्वथा भिन्न पडती है।

२४

कोई ना जाने हरिया तारी गती, कोई ना जाणे।
मिट्टी खात मुख देख जशोदा, चौदह भुवन भरिया।
पडी पाताल वाली नाग नाथ्यो, सूर ने[1] शशी डरिया।
डूबत ब्रज राखिलियो है, कर गोवर्धन धरिया।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, शरणे आयो तो तारिया ।।४३४।।

पद पर गुजराती प्रभाव स्पष्ट है।

२५

निपट विकट ठौर, अटके री नैना मेरे।
सुख सम्पति के सब कोई साथी, विपति परे सब अटके।
तजि खगराज छुडायो, हाथी टेर सुने नही कहुँ अटके।
मीराँ के प्रभु गिरिधर को, तजि मूरख अनत ही मरकों।
।।४३५।।†

---

१ और।

पद मे पूर्वा पर सबध का निर्वाह नही हुआ है, इतना ही नही तीसरी और चतुर्थ पक्ति मे विरोधाभास भी बहुत स्पष्ट है। तृतीय पक्ति का प्रथमाश अर्थ-हीन है, अन्तिम पक्ति के अन्तिम शब्द "मरबो" का अर्थ नही लगता, अत. उपयुक्त नही प्रतीत होता। उपर्युक्त परिस्थिति मे पद को प्रामाणिक मानना सम्भव नही।

२६

जब ते मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पड्यो माई।
तब से परलोक लोक कछु न सुहाई।
मोरन की चन्द्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै।
कुडल की अलक झलक कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई।
कुटिल तिलक भाल चितवन मे टोना।
खजन अरु मधुप मीन भूले मृग छोना।
सुन्दर अति नासिका सुगीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु वेष धरे रूप अति विशेषा।
अधर बिम्ब अरुण नैन मधुर मन्द हाँसी।
दसन दमक दाडिम दुति अति चपलासी।
छुद्र घटिका किकनी अनूप धुनि सुहाई।
गिरिधर के अग अग मीरा बलि जाई। ॥४३६॥

पाठान्तर १,

जब से मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पड़यो भाई।
जमुना जल भरन गई, मोहन पर दृष्टि गई।
गागर भरि गृह चली, भवन न सुहाई।
गृह काज भूलि गई, सुधि बुधि बिसराई।

सास नन्द ऊलझि परी, जाऊं कहाँ भाई।
मोरन की चन्द्रकला कीरीट मुकुट सोहै।
केसर के तिलक ऊपर तीन लोक मोहै।
कानन मे कुडल कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई।
काछनि कटि सोहै, पग नूपुर विराजै।
गिरधर के अग अग मीराँ वलि जाई।

पाठान्तर २,

जब ते मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पड़्यो भाई।
तब ते परलोक लोक कछु न सुहाई।
मोर मुकुट चद्रिका सु सीस मध्य सोहै।
केसरि को तिलक ऊपर तीन लोक मोहै।
सांवरो त्रिभग अग चितवन मे टोना।
खजन जौ मधुप मीन भूले मृग छौना।
अधर विम्ब असन नयन मधुर मद हाँसी।
दसन दमक दाडिम दुनि दमके चपला सी।
छुद्र घटिका अनूप नुपुर धुनि सोहै।
गिरिधर के चरणकमल मीराँ मन मोहै।

पाठान्तर ३,

जब तें मोहिं नन्दनन्दन दृष्टि पर्‌यो भाई।
तब तै परलोक लोक कछु न सुहाई।
मोरन की चन्द्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै।
कुडल की अलक झलक कपोलन परछाई।
मानो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई।
भृकुटि कुटिल चपल नयन मधुर मद हांसी।

दसन दमक दाडिम द्युति दमकै चपलासी।
कवु कठ भुज बिलासे ग्रीव तीन रेखा।
नटवर को भेष भानु सकल गुण विशेषा।
क्षुद्र घट किंकनी अनूप धुन सुहाई।
गिरिधर के अग अग मीराँ बलि जाई।

पाठान्तर ४,

जब ते मोय नन्दनन्दन दृष्टि पड्यो भाई।
हरि की कहा कहो सुन्दरता वरनी नही जाई।
मोरन की चन्द्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै।
कुडल की अलक झलक कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तज मकर मिलन आई।
भृकुटि कुटिल अति विसाल चितवन मे टौना।
खजन और मधुप मीन मोहै मृग छौना।
नासिका अति अनूप मद मद हाँसी।
दसन बरन दामिनि द्युति चमकत चपलासी।
कुभुक कठ भुज विशाल गिरिव तीन रेखा।
नटवर को भेख मानो सकल गुण विसेपा।
छुद्र घटिका अति अनूप किंकनि धुन सवाई।
(उस) गिरिधर के अग अग मीराँ बलि जाई।

उपर्युक्त पाठ के विभिन्न पाठान्तरो मे कुछ शब्दो का ही हेर फेर है। यद्यपि प्रत्येक पाठ मे कुछ शब्द निरर्थक है तथापि कही भी भाव मे कोई विशेष अन्तर नही पड़ने पाया है।

२७

कोई स्याम मनोहर ल्यो रे, सिर धरे मटकिया डोले।
दधि को नॉव बिसर गई ग्वालन, हरि ल्यो हरि ल्यो बोले।

मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चेली भई बिन मोले।
कृष्ण रूप छकी है ग्वालिन, और ही और बोले। ॥४३७॥

उपर्युक्त पद मे तीसरी पक्ति म ही टेक आ जाता है। चतुर्थ पक्ति को यदि तृतीय पक्ति के स्थान पर रख कर तृतीय पक्ति को ही, अन्तिम पक्ति बना दिया जाना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। ऐसा करने पर द्वितीय और अन्तिम पक्ति की भाव-धारा मे व्यवधान भी नही पड़ेगा और मीराँ के पदो की परम्परा का भी निर्वाह हो जावेगा। तृतीय पक्ति के द्वितीयाश के प्रारम्भ मे 'चेली' शब्द के बदले 'चेरी' शब्द का होना अधिक सगत प्रतीत होता है।

२८

या व्रज मे कछु देख्यो री टोना।
ले मकुटी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नन्दजी के छोना।
दधि को नाम बिसर गयो प्यारी, ले लेहुरी कोई स्याम सलोना।
वृन्दावन की कुज गलिन मे, आख लगाई गयो मन मोहना।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, सुन्दर स्याम सुघर सलोना। ॥४३८॥

उपर्युक्त तीनो पद विशेष विचारणीय है। इन तीनो की भाषा साहित्यिक है, भाव मे भी साहित्यिक उपमाएँ व चमत्कार है। इन पदो पर व्रजभाषा मे प्राप्त वैष्णव साहित्य का गहरा प्रभाव बहुत ही स्पष्ट हो उठता है।

२९

शिव मठ पर सोहै लाल ध्वजा।
कौन कै सोहै हरी पीरी चुनरियाँ, कौन के सोहै भसम गोला।
गौरी कै सोहै हरी पीरी चुनरियाँ, शिव के सोहै भसम गोला।
कौन शिखर पर गौरी विराजैं, कौन शिखर पर बम भोला।
उत्तर शिखर पर गौरी विराजे, दक्षिण शिखर पर बम भोला।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, प्रभु के चरन पर चित मोरा। ॥४३९॥†

३०

शिव के मन मांही बसी कासी।
आधी काशी बामन बनिया, आधी कासी सन्यासी।
काहू करण को ब्राह्मण बनिया, काहू करन को सन्यासी।
नेम धरम को ब्राह्मण बनिया, तप करने को सन्यासी।
कौन शिखर पर गौरी विराजै, कौन शिखर पर अविनासी।
उत्तर शिखर पर गौरी विराजै, दक्षिण शिखर पर अविनासी।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, हरी चरणन पर मैं दासी। ॥४४०॥†

उपर्युक्त पद की पाँचवी और छठी पक्तियाँ प्रथम पद की पाँचवी और छठी पक्तियो की पुनरुक्ति मात्र हैं।

३१

वे न मिले जिनकी हम दासी।
पात पात विन्द्रावन ढूंढ्यो, ढूंढ़ि फिरी सिगरी मैं कासी।
कासी को लोग बडो बिसवासी, मुष मे राम बगल मे फासी।
आधी कासी मे बामण बनिया, आधी कासी बड़े सगसी।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, हरि चरणा की रहो मैं दासी ॥४४१॥†

इस पद की तीसरी पक्ति पद स० २८ की दूसरी पंक्ति की पुनरुक्ति ही प्रतीत होती है। "सगसी" कोई शब्द नही हैं। सम्भव है कि "सन्यासी" का ही अशुद्ध रूप चल गया हो।

इन तीनो ही पदो को भाव और भाषा के ही आधार पर प्रक्षिप्त कहना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति में ही वह भावातिरेक और गाम्भीर्य नहीं है जो मीरां के पदो की विशेपता है। प्राप्त अधिकाश पदो की भाषा शैली का भी इन पदो की भाषा शैली से कोई साम्य नही बैठता। इतना ही नही, पदाभिक्तियो मे भी पूर्णतया पूर्वापर सबध का निर्वाह नही हुआ है।

३२

नमो नमो तुलसी महाराणी, नमो नमो हरि की पटरानी।
जाके दरस परस अघ नासै, महिमा वेद पुरान बखानी।

शाखा पत्र मंजरी कोमल, श्रीपति चरण कमल लपटानी।
धनि तुलसी पूरब तप कीन्हौं, शालिग्राम भई पटरानी।
शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक ,खोजत फिरे महामुनी ज्ञानी।
छप्पन भोग धरे हरि आगे, बिन तुलसी प्रभु एक न मानी।
धूप दीप नैवेद्य आरती, पुष्पन की वर्षा बर्षानी।
प्रेम प्रीति करी हरि बस कीन्हीं, साँवरी सूरत हृदय हुलसानी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भक्ति दान मोहि दियो महारानी।
॥४४२॥†

पद के द्वितीयार्द्ध में अर्थ संगति का विशेष अभाव है। शिव और काशी वर्णन के पदों की तरह इस पद को भी भाव और भाषा के आधार पर प्रक्षिप्त मानना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

३३

अजी ये लला जू आज गोकुल वासी।
गोकुल वासी प्राण हमारे, हाँ ललाजी, श्याम आये, भला।
श्याम सुन्दर अविनासी।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, हाँ लला जी, बीच ये भला।
बीचे नदी यमुना सी।
यमुना के तीरे धेनु चरावें, हाँ लला जी, हाथ लिये नौलासी।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, हाँ लला जी, संग दुलहिन राधा सी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हाँ ललाजी, तुम ठाकुर मैं दासी।
॥४४३॥†

भाव भाषा के आधार पर प्रक्षिप्त ही प्रतीत होता है। इस शैली का यही एक पद प्राप्त है। पद में पूर्वापर संबंध और अर्थ संगत का अभाव है। "यमुना के तीरे तीरे धेनु चरावे" जैसी अभिव्यक्ति की पुनरुक्ति अन्य कई पदों की तरह इसमें भी हुई है।

३४

नागर नन्दा रे मुगट पर वारी जाऊँ नागर नन्दा।
वनस्पति में तुलसी बड़ी है, नदीयन में बड़ी गंगा।

सब देवन मे शिवजी बड़े है, तारन मे बड़ा चन्दा।
सब भक्त मे भरथरी बडे है, शरण राखो गोविन्दा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल चित चन्दा ॥४४४॥†

३५

कृष्ण करो यजमान, अब तुम कृष्ण करो यजमान।
जाकी कीरत वेद बखानत, साखी देत पुरान।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहत, कुण्डल झलकत कान।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दो दरशण का दान॥४४५॥†

३६

माई मोरे नैन बसे रघुबीर।
कर सर चाप, कुसम सर लोचन, ढारे भए मन धीर।
ललित लवग लता नागर लीला, जब पेखो तब रनबीर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बरसत काचन नीर॥४४६॥†

३७

दोनो ठाढे कदम की छइयाँ।
गौर वरण है ज्येष्ठ हमारा, श्याम वरण मोरे सइयाँ रे।
गौर के सिर जर कसबी नीरा, श्याम सिर मुकुट धरइया रे।
गौर के नाव बलभद्र भइया, श्याम के नाव कन्हैया रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दोनो मोरे शीश नवइया रे॥४४७॥†

३८

गोरस लीने नन्दलाल, रसमाँ गोरस लीजे।
मै हू वृषभानु नन्दिनी, तुम हो नन्दाजी के लाल।
मोर मुकट मुक्ता फूल कुन्डल, उर बैजन्ती माल।
मै दधि बेचन जाती वृन्दावन, रोकत है बिना काज।
बाई मीरा के प्रभु गिरधर ना गुण, बाह गहे की लाज॥४४८॥†

खड़ी बोली

१

एरी बरजो जसोदा कान, मेरे घर नित्य आता है।
जिधर को मैं जाती हूँ, वह मेरे सामा ही आता है।
मैं जल जमुना भरन जात हूँ, मेरे सामा ही आता है।
कंकरी दे मोरी बहिया मरोरी, बारजोरी मचाता है।
मैं दहि बेचन जात वृन्दावन, चला पीछा से आता है।
दहि मटकी फोड़ माखन, मेरा लुट खाता है।
रास विलास करत गोकुल में, बीसयाँ सुनाता है।
मीराँ के गिरधर मिलियाँ, चरण मे लगता है ॥४४९॥†

२

बंसीवारे की चितवन सालति है।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, तापर कलगी हालति है।
मैं तो छकी तुमरे छवि ऊपर, जो न छके ताहैं नालति है।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल चित लागति है।
॥४५०॥†

३

बता दे सखी सांवरियाँ को डेरो किती दूर।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी बीच बहे यमुना पूर।
मथुरा जी की मस्त गुवालिनी मुख पर बरसे नूर।
मीराँ के प्रभ गिरिधर नागर, साँवरे से मिलना जरूर।
॥४५१॥†

पंजाबी बोली

१

दसियो मोहन किस दानी।
आवंदा जावदा नजर न आवै, अजब तमाशा इस दानी,।
दधि मेरी खायो मटुकिया फोरी, लोभी वह गोरस दानी।
मात यशोदा दधि विलोवै, गोरस ले ले नसदानी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, लूं लूं रस दानी ॥४५२॥†

†पदाभिव्यक्ति असंगत है।

भोजपुरी बोली

१

मेरो मन बसि गयो गिरधर लाल सो।
मोर मुकुट पीताम्बरो, गल वैजन्ती माल।
गऊवन के सग डोलत हो, जसुमति को लाल।
कालिन्दी के तीर हो, कान्हा गऊवा चराय।
सीतल कदम की छहियाँ हो, मुरली बजाय।
जसुमति के दुवरवाँ हो, ग्वालिन सब जाय।
बरजहूँ अपना दुलरवाँ हो, हमसे अरूझाय।
वृन्दावन क्रीडा करै हो, गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि सब मोहे हो, ठाकुर जदुनाथ।
इन्द्र कोप घन बरखे, मूसल जल धार।
बूडत ब्रज को राखेऊ, मोरे प्रान अधार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर हो, सुनिये चितलाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सुहाय। ॥४५३॥

पदाभिव्यक्ति में पूर्वापर सबध का अभाव है।

बिहारी बोली

१

मैं तो लागी रहो नन्दलाल सों।
हमरे बारहि दूज न पार।
लाल लाल पगिया झिन झिन वार।
साँकर खटोलना दुइ जन बीच।

मन कइले बरप, तन कइले कीच।
कहाँ गइले बछरु, कहाँ गइली गाय।
कहाँ गइले धेनु चरावन राय।
कहाँ गइले गोपी, कह गइले वाल।
कहाँ गइले मुरली बजावनहार।
मीराँ के प्रभु गिरधर लाल।
तुम्हरे दरस बिन महल बेहाल ॥ ४५४ ॥

पदाभिव्यक्ति असगत और कही कही अर्थहीन भी है।

२

हरि सो बिनती कर जोरी।
बरबस रचल धमारी, हम पर मात पिता पार गारो।
निपट अल्प बुधि हीन, दीन गति थोरी, प्रेम मकान रसले बसोरी।
मीराँ के प्रभु शरण तिहारी, ओचक आय मिल्तु गिरधारी ॥४५५॥†

पद की तृतीय पक्ति अर्थहीन है।

३

जागिस गिरधारी लाल, भक्तन हितकारी।
दासी हाजर खवास, कचन ले झारी।

सऊच करो दत धावन, स्नान की तय्यारी।
वस्त्र और पुष्प माल, तुलसी अति प्यारी।
रत्न जटित आभूषण, मुकुट लटक वारी।
धूप दीप नैवेद्य, आरती सवारी।
मीरों प्रभु विधी विधान चरणन चित हारी॥ ४५६ ॥†

पद की प्रथम पक्ति से बिहारी प्रभाव स्पष्ट है तथापि शेष पद की भाषा शुद्ध व्रजभाषा ही है। भाव और भाषा के आधार पर पद की प्रामाणिकता संदिग्ध है। पद की अन्तिम पक्ति का निम्नांकित पाठान्तर प्राप्त है :—"जागिये गिरिधारी लाल भक्तन हितकारी" इस पाठान्तर के आधार पर पद शुद्ध व्रजभाषा का हो जाता है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

कनैया वल जाऊँ, अब नहि वसूँ रे गोकुल मे।
काली ओढे कामली रे, काली हेरे कहान।
वृन्दावन की कुज गलिन मे, खेलत गोपी तज मान रे।
घेर आई गोवालन, घेर आये गोवाल।
हरिह जु नहि आये रे, मेरे मदन गोपाल।
सोने की वँसरिया, रूपे की जजीर।
गावे न बजावे कान जी, भट जमुना के तीर।
जमना के नीरे तीरे बँगला बनावुँ।
बँगला के भीते भीते बेर बेर प्रेम चणाऊँ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर प्यारे लाल।
अब कोई मत पडो रे, मेरे ख्याल ॥४५७॥†

२

लेने तुरी लकडी रे, लेने तुरी कामली, गायो तो चरावा नहि जाऊँ मावड़ी।
माखन तो वलभद्र ने खायो, हमने खायो खाटी हो रे छाँशड़ली।

वृन्दावन नें मारग जाता, पाँवों मे खुंचे[1] झीनी काँकड़ली ।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर नागुण, चरण कलम चित राखड़ली ॥४५८॥†

३

नन्दलाल नही रे आऊँ मुझें घरे काम छे,तुलसीनी माला मे स्याम छे।
वन्द्राते वनने मारग जता, राधा गोरी ने कान श्याम छे।
वन्द्राते वन में रास रचो छे, सहस्त्र गोपी में एक स्याम छे।
वन्द्राते वन मे मारग जाता, दान आयानि[2] धनी हाम[3] छे।
वन्द्राते वनमी कुञ्ज गलिन में, घरे घरे गोपियो मे डाम छे।
आनी तेरे गंगा वाला पेरी तेरे जमुना, वह माँ गोकुल यू गाम छे।
गामना वालो ना मारे महीना वलोना,महिणा धुनियानी धनी हाम छे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन में सुख स्याम छे ॥४५९॥†

४

वारे वारे कहोने कहीए दिलडानी वातो, वारे वारे कहोने कहीए।
आगे तमे बोलडा बोल्या मारा राज ।
ते बोलडा सभारी[4] मने कहे ताँ आवे लाज।
पाँडवोनी प्रनिज्ञा पाली, द्रौपदी नी राखी लाज।
सुदामानी वेला वारी, उगार्यो प्रहलाद ।
प्रजापतिए नीभामाँ पूरियाँ, मांहे देवतानो वास।
माजारी[5] ना बच्चा रे राख्याँ, एवा श्री महाराज।
वृन्दावन थी सालुडा लाव्या[6], राधाजी ने काज।
पहेरी ओढी महेले आव्या, रीझ्या श्री महाराज।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, सोहागी बनी सजी साज॥४६०॥†

---

१ चुभती है, २ देनेकी, ३ इच्छा, ४ सुनकर, ५ बिल्ली, ६ लाये।

५

आँखलडी बाँकी रे, अलबेला तारी, आँखड़ली बाँकी।
चारवणीमाँ मारा चित्त चोरी लीधा[1],नेणे मोहनी नाखी।
नेण कमलना भलका[2] मारे,ओणे मार्या ताकी ताकी रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागुण,नीत चरण कमलनी दासी रे॥४६१॥†

६

झगडो लाग्यो श्री जमना जी आरे, चल्याने माँरे शुं छे।
वृन्दावन ना मारग जाताँ, हारे आगल आवी[3] का घेरे।
वृन्दावनती कुज गलीन माँ, पालव आवी का झेरे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागुण,गोपी जोने लाड़ लडावे॥४६२॥†

७

कोण भरे रे पानी कोण भरे, जमनानाँ पाणी कोण भरे।
धर म्हाँरू दूर गागर शिर भारी, अरे खोटी थाँऊ तो घेर वेठणी वढ़े।
शिर पर कलश कलश पर झारी, झारी पे बेठी झारी मोज करे।
आणी तेरे गगा पेली तीरे जमना, वचमाँ[4] कानुड़े रग रास रमे[5]।
माव सोनानो मारो घाट घडुलो, उठाणीए तो रत्न कनक जडे।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित्त ध्यान ठरे॥४६३॥†

८

चाल सखी वृन्दावन जइये, जीवन जोवाने[6], महीनी भटुकी ओ माथे लई।
श्याम सुन्दर ने भावे भेट जो, तेणे दुखड़ा सहु शमावशे[7] रे।
मीराँ बाई प्रभु गिरधर नागर, भावजी मारग माँ आवशे रे॥४६४॥†

---

१ लिया २ चमक ३ आकर, ४ बीच में, ५ खेले, ६ देखने के लिए, ७ शामिल हो जायेंगे नष्ट हो जावेंगे।

९

चढी ने कदम्ब पर वैठो रे, वालो मारो चीर तो हरी ने।
माता जसोदा नो कुँवर कन्हैया, नागर नन्दजी नो वेटो रे।
मोर मुकुट सिर विराजे, पहिर्‌यो छे पीलो लपेटो रे।
नहाया धोया मैं केम[1] करी आवी ये, नाखों[2] ने नवग्ग रेटो रे।
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, को उतारू ने अने हेठो[3] रे ॥४६५॥†

१०

नाव रीसायो रे, वेनी मारो नाव रीसाचो रे।
चोरामा जोया[4] ने चौटामाँ जोयो, फलीयाँ जोयाँ पूरी पूरी ने।
हाथ माँ दीवलडो ने घेर घेर जोती, जोती अणे धणु[5] रोती।
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित देती ॥४६६॥†

११

कानुड न जाणी मोरी पीर।
वाई हुँ तो वाल कुँवारी रे, कानुडे न जाणी मोरी पीर।
जलरे जमनाँ अमे पाणीडाँ गया ना, वाहला कानुडे उठाडाया आच्छानीर॥
। उडाया फर ऽऽऽ रे।
वृन्दा रे वनमाँ वालछै, रास रच्यो सोलसे गोपियाँ ताण्याँ चीर।
फाट्याँ चर ऽऽऽ रे।
हुँ[6] वरणागी काहना तमारो[7] र नामनी रे, कानुडे मारया छे अमने तीर।
वाग्याँ अरऽऽऽरे।
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कानुडे वाली ने फेंकी ऊँचे नीर।
राख ऊँडे फर ऽऽऽ रे ॥४६७॥†

---

१ कैमे, २ डालो, ३ नीचा, ४ देखा, ५ बहुत, ६ मैं, ७ तुम्हारा।

१२

काँकरी मारे घूनारो कान, पाणीलाँ केम करी जई ये[१]
आ[२] काँठे[३] गंगा वहाला, पेली[४] काँठे जमना जी, वचमाँ गोकुलीऊँ गाम।
सोना उठाणी मारूँ, रूपानु वेंठँ वा'ला, हुलवो चढावत कानो करे काम।
मारे मदरिए मारी सासु रहे छे वा'ला, सामा मदरीए मारो श्याम।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागुण, भावे भेटो[५] भगवान ॥४६८॥†

१३

भूली मोतियन को हार, सखी तट जमुना किनारे।
एक एक मोती मारूँ लाख टकानु वाला, परोव्युँ सुवरण के रे तार।
सासु हमारी अती बढकारी[६] वा'ला, नन्दन बिखड़ानु[७] झार।
सासु हमारो परम सुहागी, मारा छे मोहना बान।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित ध्यान ॥४६९॥†

१४

हाँरे कोइ माधवल्यो, माधवल्यो, बेचती व्रजनारी रे।
माधव ने मटुकी माँ घाली, गोपी लटके लटके चाली रे।
हाँरे गोपी घेलुँ घुँ बोलती जाय, मटुकी माँ न समाय रे।
नव मानो लो जुवो[८] उतारी, माँही जुवे तो कुंजबिहारी रे।
वृन्दाबन माँ जाता दहाडी वा'लो गो चार छे गिरधारी रे।
गोपी चाली वृन्दावन वाटे, सौ व्रजनी गोपिओ साथे रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, जेना चरण कमल सुख सागर रे ॥४७०॥

उपर्युक्त पद से भाव साम्य रखता हुआ एक पद व्रजभाषा में भी मिलता है।

---

१ इस, २ और, ३ उस, ४ मिलों, ५ क्रोधी, ६ विषका, ७ पागल की तरह, ८ देख लो।

१५

मेलो ने मारगड़ो मेलीनी मावा।
वाटे ने घाटे रोको साँवलिया हारे मारा पाल वड़ा सावा।
रसिया जी सु सहोर करो छो, जीवन दो जावा।
मीराँ वाई के शुभ गिरधर ना गुण, गुण तो गोविन्द नु गावा ॥४७१॥

१६

मने मेली ना जाशो भावा रे, आ व्रज मा केम वसीए वोलारे, भेली ना जाशो।
जे जोइए ते तमणे आणी आपु बोला, मीठाई मेवा खावा रे।
आ वीजाँ घणा घणा तमने वाना रे करती, नहि देऊ तमने जावा रे।
कव की ठारी अरज करूँ छूँ, अेटली[1] अरज मोरी मानो व्रज वावा रे।
जल जमनाँ रे जल भरवाँ गयाँ ताँ वहाला, सुन्दर गयाँ ता न्हावा रे।
मीराँ वाई के प्रभु गिरधर ना गुण वहाला, शाम लिओ चित्र थे मनावा रे।
॥४७२॥†

१७

जल भरवा क म जाऊँ, कानो मारी केडे[2] पड्यो रे।
साव सोनानु घाट घड्ला वाला, उढानिए रतन जड़ाऊँ रे।
मारग माँ वा'लो पानिला मागे, सहिय[3] देखता[4] केम[5] पाऊँ रे।
नाथ जी हमारा निरलज थई वैठा, वा'ला हुँ निरलज केम थाऊँ।
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, हरी चरणे ध्यान धराऊँ।
॥४७३॥†

१८

कानुड़े कामण[6] कीधा[7], ओधव ने वा'ल, कानुड़े कॉमण कीधाँ।
वृन्दावन माँ धेनु चरावे वा'लो, मोरलीए मनड़ा गोपी विधाँ।
जल जमनाँ भरवाँ ने गयाँ ताँ, ताँ पालव पकड़ी मन लीधाँ।

---

१ इतना, २ पीछे, ३ सखियों के, ४ देखते हुये, ५ कैसे, ६ सम्मोहन, जादू, ७ किया।

राधा नो कथ[1] कामण[2] गारो।
मीरांबाई के प्रभु गिरिधर ना गुण वा'ला, भव सागर थी' हमने तारो।
॥४७४॥†

१९

प्रेम नी प्रेम नी प्रेम नी रे, मन लागी कटारी प्रेम नी रे।
जल जमुना माँ भरवा गयातां, इती गागर माथे इमे नीरे।
काँचे ते ताँत न हरि जी पे बाँधी, जेम खेच तेम नी रे।
'मीरां' के प्रभु गिरधर नागर, साँवली सुरत सुभ एक नी रे।।४७५।।†

श्री विष्णु कुमारी 'मंजु' ने उपर्युक्त पद को मीरां कृत मानने में सन्देह प्रकट किया है। परन्तु "मीराबाई की शब्दावली" वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग में लिखित होने के कारण इसमें उल्लिखित है।

२०

जागो रे अल्बेला कान्हा, मोटा मुकुट धारी र।
सहु दुनिया तो सुती जागी, प्रभु तुम्हारी निद्रा भारी रे।
गोकुल गामिनी गायो छूटी, वनज करे व्यापारी रे।
दातन करो तमे आद देवा, मुख धुओ मुरारी रे।
भात भात ना भोजन निपाया[3], भरी सुवरण थीली रे।
लवँग सुपारी न एलची, प्रभु पाननी बीडी वाली रे।
प्रीत करी वाओ पुरुषोतम, अवडावे[4] व्रजनी नारी रे।
कस नीन में वस काढी, मासी पूतना मारी रे।
पताले जाई काली नाग नाथ्यो, अँवली करी असारी रे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, हुँ छे दासी तमारी रे ।।४७६।।

२१

व्रजमा कयम र' वाशे, ओधवना वा' ला, व्रजमा कयम रे' वाशे।
आठ दाहाडानी[7] अवध करीने गया छे वा'ला, खर मास थया छे[8] हरि ने।

---

१ पति २ जादू करनेवाला, ३ मे, ४ सब, ५ बनाया, ६ अच्छा लगे, ७ दिवस, ८ हो गये।

वृन्दावन नी कुंज गली माँ वा'ला, बेठा छे मुख मोरली घटी ने।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, अमोरह्या छे आँमडा[१] मरी ने।
॥४७७॥†

२२

शामले मेल्याँ ते विसारी, ओधवने वा'ले शामले ते मेयाँ विसारी।
प्रीत करीने पालव पकडो वा'ला, प्रेम नी कटारी मुने मारी।
गोकुल थी मथुरामाँ गया छो वा'ला, कुब्जा से लागी छे ताली।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल वलिहारी ॥४७८॥†

२३

लालने लोचनीए दिल लीधाँरे, माडी मारा, लालने लोचनीए दिल लीधाँ रे।
जब्र यणी वा'लो मुझ पर डारे वा'लो, वेला कवेलाजाँ कामण मने कीधाँ रे।
जल जमना ना जल भरवाँ गयाँ ताँ वा'ला, घुंघटड़ा माँ घेरी लीधाँ रे।
चुन चुन कलिया वाली सेज बनावुं वाहला, भ्रमर पलग सुख लीधाँ रे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल मे चित्त चोरी लीधाँ रे।
॥४७९॥†

२४

लेरो रे महीडाँ केरा दान आ तो मोढ़ुं, लेरो रे महीड़ा केराँ दाण।
अमो अवला कट सवल सुवालाँ वा'ला, आवडी शी खेचा ताण।
नन्दना घरना गोवालियो रे, ओल्ल्या विना रे भ्रखु माण।
मथराते मथुरायी रे नाठो, ते तो अमणे न थी रे अजाण।
वृन्दावन नें मारगे जाताँ, तुं तो शेणे माँगे छे रे दाण।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल तु चित्तड़ा मे ध्यान ॥४८०॥†

२५

कोने[१] कोने कहुँ दिलडानी वात, वारे वारे कोने कोने कहुँ।
पाँडवनी प्रतिज्ञा पाली, द्रौपदी नी राखी लाज रे;

---

१ आगा, २ किसको।

सुदामा नी वेला वारी, उगार्यो प्रहलाद रे;
वृन्दावन तमे वाहले उगार्युं, सुन्दरी ने काज र।
पहेरी सजी महेल पधारो, रीझे मारो नाथ रे;
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, ... ;
तमने भजी ने हुँ तो थई छूँ रे, अणि दिन रलियात रे।।४८१।।†

२६

हाँ रे नन्दकुंवर तारू नाम सॉभलीने[1], आश भर्या अमो[2] आव्याँ;
गाय „दोता[3] दोहणी रे भूल्याँ, वाछरडा घवड़ाव्याँ[4];
पीपले पीपले पाणी भरता, ठीक री माँधी तान्याँ;
नन्दकुमारे जईने विणा व जाड़ी[5], शा अर्थे बोलाव्याँ;
माय बापनी लज्या मेहली, सहीये रे समजाव्याँ;
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित्त चलाव्याँ।।४८२।।†

२७

ना खल प्रेम नी दोरी, गलामा अमने नाखेल प्रेमनी दोरी।
आणी[7] कोरे गगा वा'ला, पेली कोरे जमनाँ, वच्चभाँ कानुड़ो नाखे[8] फेर फेरी।
वृ दारे वनमाँ वहाले धेनु चरावी, वाँसली वगाड़े घेरी घेरी।
जलरे जमनाँ ना अभे पाणीडा गया ताँ, भरी गागर नाखी ढेरी।
वृन्दारे वनमाँ वाहले रास रच्योरे, कानड़ काला ने राधा गोरी।
बाईं मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वाहला चरणुं दी दासी पियारी तेरी।
।।४८३।।†

२८

शाने रोको छो वाटमाँ, जवादो मने शाने रोको छो वाटमाँ;
जल भरवा जमना जीना घाटमाँ, जवा दो मने शाने[9] रोको छो वाटमाँ[10]।टेक

---

१ सुनकर, २ हम, ३ दुहते हुए, गुजराती भाषा में प्रायः 'दोहता', 'वाहला' जैसे शब्दो में 'ह' लुप्त हो जाता है—अत. 'दोता' 'वा'ला' आदि रूप ही लिखा जाता है ४ घबड़ा गये, ५ बजाये, ६ हम, ७ और, ८ डाले, ९ किस लिये, १० रास्ते में।

आज अभारे प्रभु कामनो दिन छे, हाँरे भारे जाँवु सहीय रोना साथ माँ;
मारा सम भारी गागर नहानी, हाँरे अेणे वचन आप्युं तुं मारा हाथ माँ;
वंद्रावन नी कुंज गलन माँ, हाँरे भलो तपास्यो आ लाग माँ;
ते भाटे[1] का'न काला शुं थाव छो, हाँरे सौ पेखे सहीय रोना साथ माँ;
बाई मीरा के प्रभु गिरधर ना गुण, हाँरे प्रभु आव्या छो मारा हाथ माँ;
॥४८४॥†

२९

वहीयाँ जो ग्रही रे, मेरी सुद्ध न रही रे, काहना वहीयाँ जो ग्रही रे।
जगमग ज्योत जड़ाव को ग्रेनो, गज मोतियन की सेट लटकी रही रे।
मे दधी बेचन आती गोकुल मे रे, पकडोरी पालव मेरे जलको ग्रही रे।
जाई पोकारूँ कसकी आगेरे, तेरी नगरी मे मेरे बसवो नहि रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर ,झगडत झगडत सारी रैन बीत गई रे।
॥४८५॥†

३०

शामरे की दृष्टि भानुं प्रेमकी कटारी है, भाई शामरे की दृष्टि भानुं।
चान्दा त्याँ चकोर बसे, दीपक जले, पतग जल विना मरे मीन,
ऐसी प्रीत प्यारी है।
गोकुल गाम उजारी कीनो, मथुरा मे सादेर लीनो, कुबजा कुँ राजदीनो,
राधे तो बिसारी रे।
कुवजा कुँ कहीयो जाय, बिनति सुनत वजराय, इतनी अरज हमारी,
मीराँ तो तुम्हारी है ॥४८६॥†

उपर्युक्त से भाव-साम्य रखता हुआ एक पद खडी बोली मे भी प्राप्त है।

---

१ इस लिये।

३१

वृजमाँ नाव्या[1] फरीने[2] गोपीनो वा'लो, व्रज माँ नाव्या फरीनो।
गामने गोकुल यो मेली मथुरा पधारिया वा'लो, जईवरिया कुब्जा कारीनो।
सातरी दिवस हरि वादो करीने गयो छो, पटमास थमाछे हरी ने।
सोलसे गोपी नो साथे रास रचे थे वा'ला, उमा मुख मुरली धरीने।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुन वा ला, चरन कमल चित हरी ने।
॥४८७॥†

३२

गगरिया वेड़ा ढलसे, उढानी मारी आपो, गागरिया वेडा ढलसे।
साव सो नानी मारी, जड़ित्र उघानी वा'ला, सुने री तार मारो खडसे।
कस तो दाय नो कुरु छे राज वा'ला, कस कह्यू जू पडसे।
जल रे जमुना ना वा'ला मोटो छे आरो रे, नित्य उठि नाहवाँ जाऊ परसे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर वा'ला, गोपी नो स्वामी मुझने मलसे।
॥४८८॥†

३३

वा'ला ना कान हेडा रे ओधव जी, एवा काल ना कठन हेड़ा रे।
टीटू डीना इण्डा[3] डगरिया मञ्जारी, ना राख्या दइया रे।
ग्रेह थी गजराज उगारियो, गोकुल मा चारी गइया रे।
गोकुल सधन रेलतु राख्युं, गोबरधन कर धरिया रे।
मीराँ गावे गिरधर ना गुन, मैं तो तोरे लागूं पइया रे।॥४८९॥†

३४

उढानी मोरे आलो रे, गागरिया बेढा ढलसे।
जल जमना भरूआ गयाँ ता, चीर खस्योने बेढु परसें।

---

१ न + आव्या—नाव्या अर्थात् नहीं आये, २ लौटकर, ३ अण्डा।

सास हठीली मारी ननद धुतारी, नाधड़े दीयरियो मूजने वढ़से।
मीराँ गावे प्रभु गिरधर ना गुन, चरण कमल चित हर से ॥४९०॥†

३५

ज्ञान कटारी मारी, अमने प्रेम कटारी मारी।
मारे आँगणे रे रामजी तपसीओ तापे रे,
कानें कुडल जटाँधारी रे, राणाजी अमने।
मकनोसो[1] हाथी रामजी, लाल अवाडी[2] रे,
अँकुश दई दई हारी रे।
खारा समुद्र माँ अमृत नाँ वहे लियुँ रे,
अेवी[3] छे भक्ति अमारी रे।
वाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमल वलिहारी रे ॥४९१॥†

३६

राखो रे श्याम हरि लज्जा मोरी, राखो श्याम हरि।
भीम ही बैठे, अर्जुन ही वैठे, तेणें[4] मारी गरज ना खरी।
दुष्ट दुर्योधन चीरने खेचावे, सभा बीच खड़ी रे करी।
गरूड चढीने गोविन्द जी रे आव्या, चीरना तो वाण भरी।
वाई मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरणे आवे तो उवरी ॥४९२॥†

३७

ओ आवे हरि हसता सजनी, ओ आवे हरि हसता।
मुझ अवला एकलडी जानी, पीताम्बर केड़े कसता।
पचरंगी पाध केसरिया रे वाधा, फुलडा मेहेले तोरा।

---

१ मदमाता, २ हौदा ३ ऐमी, ४ उनमे।

मारे आगिनए द्राख बिजोरा, मेवले भराऊँ तारा खोला[१] ।
प्रीत करे ने तेनी पुठ न मेले, पासे थी से नथी खसता[२] ।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, हाँ रे वालो हृदय कमलमाँ वसता ।
॥४९३॥†

३८

दव[३] तो लागेल डुंगर[४] मे, कहो ने ओधा जी हवे केम करी अे ।
केम ते करी अे, अमे केम करी अे, दव तो लागेल डुगंर मे ।
छालवा[५] जइये तो वाहला हाली न शकीए, वेशी रहीए तो अमे
वली मरीए रे ।
आरे वरतीए नथी ठेकाणुंरू रे, वाहला हेरी परवरती नी पाँखे
अमे फरीए रे ।
ससार सागर महाजण भरीओ वाहला हेरी, वाँहेड़ी झालो नीकर
बूड़ी मरीए रे । ·
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हेरी, गुरु जी तारें तो अमे
अमे तरीए रे । ॥४९४॥†

३९

जाण्यूँ जाण्यूँ हेत तमारू जदवारे लोल; हेतज होय तो हुईं डामा बरताय जो;
अमे तमारी आँख डिये अलखामणा[६] रे लोल; बालप होय तो नयणा
माँ कलकाय जो ।
पारिजातक नूँ फूल रे नारद लखियारे लोल;
जै सोप्यूँ राणी रुकमणी ने दरबार जो ।
राके पाखडकी मारे मदिर नव मोकली रे लोल;
कीधी मुज थीरा अदकेरी नार जो ।
अचरत पाम्या ने आनन्द उतर्यो रे लोल;
जाओ जाओ जाओ नहिं बोलूँ सुन्दर श्याम जो ।

---

१ गोद, २ हटना, ३ अग्नि, ४ जगल, ५ दौडना, ६ परिचय ।

रूकमणी ने मदिर जैने रंगे रमोरे लोल;
हवे तमारे अमसाथे शुं काम जो।
अलगा रहो अलबेला मने अडशे नही रे लोल;
तम साथें नहि बोलूं नदकुमार जो।
भले ने पधारो मोनती तणे रे लोल,
आज पछी आवशोमा मारे द्वार जो।
नारदे कह्यूं सतभामा साभलो रे लोल;
ऐ निर्लज ने नथी तमारू काम जो।
काला ने वा'ला करतो ते आवशेरे लोल,
मोटा कुलनी मूक शोभा मान जो।
उतरचा आभ्रणारे सर्व अग थकी रे लोल,
लो शामलिया तमारो शणगार जो।
मारा रे मैयरनी ओढूं आढणी रे लोल,
बीजूं आयो माने तो दरबार जो।
चरणा चीर उतारी चोली चूंदरी रे लोल,
उरथ की उतारचो नवसर हार जो।
काबी ने कडला रे भोटी डामणी रे लोल,
सर्व सभाली लेजो नन्दकुमार जो।
आगलथी नव जाण्यूं मे तो रावडूं रे लोल,
धरथी न जाण्यूं धूतारानो ढग जो।
वाला पणरी प्रीत अमारी पालटी रे लोल,
ए निर्लज ने शानो दीजे रग जो।
धीरज नी बातो धरथी जाणी नही रे लोल,
प्रीत करीने परवश कीधा प्राण जो।
कालजणा कोरी ने भीतर भेदिया रे लोल,
मीट उलियाँ मार्या मोहना वाण जो।
प्रीत करी पर हरऊँ नोतू पधारू रे लोल,
थोडा दिवस माँ शूं दीधां मने सुख जो।

स्वपनाना सुख डारे स्वपने वही गया रे लोल;
देहड़ लीमां प्रगट्या दारुण दुख जो।
पूरण पाप मल्यां रे अे अवला तणा रे लोल;
जेनो परण्यो पर घेर रमवा जाय जो।
अवोलड़ा लीधा रे वाले वेहाथीरे लोल;
जे नारी नूँ जोबन भोला खाय जो।
पाणीडा पीनेरे घर शूं पूछिये रे लोल;
तेरी पिता अे शोध्या पूरण वैर जो।
उद्देरी आपी रे अेना हात मारे लोल;
गल थूथी मा घोल न पाया अरे जो।
शोकडलीना वे मने वहु साभवेरे लोल,
नयणथी छूटे छै जलनी धार जो।
हैडू नव फोड्यू रे हजूए अमतणूँ रे लोल;
उर ऊपर काई अहचा मेघ मलार जो।
रावा ने मेण सूँ वोलो मुख कीरे लोल;
कुलवन्ती तमे केम करो कल्यान्त जो।
पटराणी तमथी वीजी घारी न थी रे लोल;
घणो वधारे घरे घरे विरोध जो।
साँचू जो कहु तो तमे नव साभलो रे लोल;
तोरा तमारू मन नव माने काम जो।
मोहन जी कहेरे सती तमे साभलोरे लोल,
कहो तो मगावू पारिजातक नू आड़ जो।
आणी ने रोपाऊ तमारो आँगणे रे लोल,
राणी रोपत जी ने मूको राड़ जो ॥४९५॥†

राधा वर्णन

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

मोहन जावो कठे[1] सावरियाँ मोहन जावो कठे।
तुम रहो न अठे[2] सावरियाँ मोहन जावो कठे।
गोकुल वसवो फीको लागे, मथुरा मे काई लड्डु वटे।
नित को आणो जाणो छोडि दे, नित के आये जाये से तेरा मान घटे।
राधा रुक्मण और सतभामा, कुब्जा ने कोई लीनी पटे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम सुमराँ सूँ सकट कटे ।।४९६।।†

पाठान्तर १,

जावो कठे रे रामा, रह्वो अठे सावलियाँ।
नित काई जावो, नित काई आवो, नित का जाया से मान घटे।
गोकुल वसवो फिकोई लागे, मथुरा मे काई लाडु बटे।
गोकुल मे काई धेनु चरावे, मथुरा में काई राज लुटे।
राधाई रुक्मण और सतभामा, कुब्जा कांई थारे सग पटे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम सुमरां सूँ सकट कटे।

उपर्युक्त पदाभिव्यक्तियो मे पूर्वापर सबध का अभाव है। 'चन्द्रसखी' के नाम पर प्रचलित एक ऐसा निम्नांकित पद मिलता है जिसका उपर्युक्त पदो से गहरा साम्य है।

काई मिस जाया छोजी राज अठे।
राय आगणिये ठाढा रहियो, आगे जावोला[3] कटे।
राधा रुक्मण अर सतभामा, कुब्जा ने काई लीनो पटे।

---

१ कहाँ, २ यहाँ, ३ जावेंगे।

हाथ को हीरो खोय दियो है, खोटी लाल सटे।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि, लीनी है सीस सटे।

उपर्युक्त पदो के साम्य को देखते हुए चन्द्रसखी का ही यह पद कुछ हेर फेर के साथ मीराँ के नाम पर भी चल पड़ा हो, ऐसा असम्भव नही प्रतीत होता।

२

आली ! म्हाने लागे वृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविन्द जी को।
निरमल नीर बहत जमुना मे भोजन दूध दही को।
रतन सिघासन आप विराजै, मुगट धर्‌यो तुलसी को।
कुजन कुजन फिरत राधिका, सबद सुनत मुरली को।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भजन बिना नर फीको ॥४९७॥

३

उधो ! म्हाने लागे वृन्दावन नीको रे।
वृन्दावन मे धेनु बोहोत है, भोजन दूध दही को।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, सिर केसर को टीको।
घर घर मे तुलसी को बिड़लौ, दरसण माधवजी को रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरी बिना सब फीको रे ॥४९८॥

उपर्युक्त दोनो पदो का गहरा साम्य विचारणीय है। बहुत सम्भव है कि ये दो स्वतत्र पद न होकर एक ही पद के गेय रूपान्तर हो।

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

१

आवत मोरी गलियन मे गिरधारी, मैं तो छुप गई लाज की मारी।
कुसुमल पाग केसर्या जामा, ऊपर फूल हजारी।
मुकुट ऊपरे छत्र विराजे, कुंडल की छवि न्यारी[1]।
केसरी चीर दरियाई को लेंगो, ऊपर अंगिया भारी।
आवते देखे किसन मुरारी, छुप गई राधा प्यारी।
मोर मुकुट मनोहर सोहै, नथनी की छवि न्यारी।
गल मोतियन की माल विराजे, चरण कमल बलिहारी।
ऊभी[2] राधा प्यारी अरज करत है, सुण जे किसन मुरारी।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पर वारी ॥४९१॥†

पद को तीन अशो मे बाँटा जा सकता है। प्रथमाश "आवत मोरी · ·· अंगिया भारी" मे अपनी व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति है। "आवते देखे · किसन मुरारी" लगभग प्रथम पक्ति की ही पुनरुक्ति है। परन्तु जहाँ प्रथम पक्ति मे अपनी भावनाओ का ही वर्णन हुआ है, वहाँ द्वितीयाश मे उन्ही भावो का राधा मे आरोप किया गया है। तृतीयाश "ऊभी राधा · पर वारी" का शेष पद से समन्वय ही नही होता। ऐसे सगति-हीन पदो की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है।

२

थाने कुब्जा ही मनभानी, हम सों न बोलना हो राज।
हमरी कहा सुनी विष लागे, वाहा जाय प्रेम रस पागे।
उन सग हिलमिल रहना, हँसना बोलना हो राज।
हम सो कहें सिंगार उतारो, दृग अंजन सब ही धोय डारो।

---

१ अपूर्व, २ खड़ी हुई।

छापा तिलक सवारो, पहिरो चोलना हो राज।
जमना के तट धेनु चरावे, बेसी में कछु अचरज गावे।
नई नई तान सुनावे, छाछ मछोलना जी राज।
म्हारी प्रीत तुम्ही सो लागी, कुल मरजाद सब ही हम त्यागे।
मीराँ के प्रभु गिरधारी, वन बन डोलना हो राज ॥५००॥†

इस पद को भी स्पष्ट ही दो भागो में बाँटा जा सकता है। "थाने कुब्जा हो·····चोलना हो राज।" प्रथमाश है। बीच की दो पक्तियो "जमुना के तट ·····छाछ मछोलना जी राज" का पूर्वा श से कोई सवन्ध नही प्रतीत होता। "छाछ मछोलना जी राज" जैसी अभिव्यक्ति भी निरर्थक ही प्रतीत होती है। फिर पद की आठवी पक्ति का सबन्ध पूर्वार्द्ध से ही जुडता है, जब कि अन्तिम पक्ति सम्पूर्ण पद से भिन्न पड़ती है। अन्तिम पक्ति मे "मीराँ क प्रभु गिरधारी" जसा प्रयोग भी सर्वथा नूतन है।

पद की भाषा मे राजस्थानी और भोजपुरी का सम्मिश्रण हुआ है, जिसका कारण एकमात्र गेय परम्परा ही हो सकती है।

पाठान्तर १,

थारे कुब्जा ही मनमानी, म्हाँसूं अनबोलना हो राज।
हम मे कहै सुहाग उतारो, दृग अजन सब ही धो डारो।
माथे तिलक चढावो, पहरो चोलना हो राज।
हमरी कही बिपै सम लागै, घर घर जाय भवर रस पागै।
उन्ही के सग रहना, हँसना बोलना हो राज।
वृन्दावन मे धेनु धरावै, बसी मे कछु अचरज गावै।
बाकी तान सनावे, छतिया छोलना[1] हो राज।
हमरी प्रीत तुम्ही सग लागे, लोक लाज सब कुल को त्यागी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर, बन बन डोलना हो राज।†

---

१ छोलना जलाना।

पाठान्तर २,

थांके दासी ही मनमानी, म्हाँसे अनबोलना हो राज।
हमकँ कहे सिगार उतारो, दृग अंजन सबही धो डारो।
माँथे तिलक लगावो, पहेरो चोलणा हो राज।
कुबज्या कंवर कंस की दासी, ज्यां देखवाँ मोये आवत हाँसी।
ज्यो पटराणी कीनी, हँस बोलणा म्हाराज।
कुबज्या के संग भोग वणायो, हमको लिख कर जोग पठायो।
मीरॉ भई दिवानी वन वन डोलणा हो राज।†

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

तेरो कान्ह कालो हो भाई, मेरी राधे गोरी हो।
ऐसी राधे रूप वनी, कंचन सी देह ठनी।
ऐसो कारो कान्ह पर, कोटि राधे वारी हो।
गोकुल उजार कीनो, मथुरा वसाय लीनो।
कुब्जा कूं राज दीनो, राधे को विसारी हो।
विनती सुनो ब्रजराज, लागूंगी तुम्हारे पाय।
मीरॉ प्रभु सों कहीयो जाय, सेवक तुम्हारी हो।।५०१।।†

इस पद मे भी भाव सामजस्य नही है। "तेरो कान्ह ····राधे वारी हो" प्रथमाश मे स्पष्ट है कि कथनोपकथन दो व्यक्तियो के बीच हो रहा है। "गोकुल उजार ····विसारी हो" वाला अश एक शिकायत के रूप में ही आता है जिसका प्रथमाश से कोई सबन्ध *नही प्रतीत होता। छठी पक्ति मे विनती स्वयं "ब्रजराय" को ही सुनायी* गयी है, जब कि अन्तिम पक्ति से यही स्पष्ट होता है कि "ब्रजराय" तक सदेशा पहुँचा देने की "वीनती" किसी अन्य से की जा रही है। एक ऐसा ही पद चन्द्रसखी के नाम पर भी पाया जाता है :—

"कैसे व्याहूँ राधे, कन्हैयो तेरो कारो भाई।
घर घर री वो गऊ चरावै, ओढण कवल कारो।
छीन झपट दही खात विरज में, चलैगो कैसे राधे को गुजारो।
मेरी राधा अजब सुंदरी, तेरो कन्हैया कारो।
कारो कारो मत करो, कान्हो है विरज को उजियारो।
नाग नाथ रेती पर डारचो, मारी फूंक कृष्ण भयो कारो।
पीताम्वर की कछनी काछै, मोहन मुरली वारो।
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छवि, कान्ह त्रिलोकी सूं न्यारो।"

दोनो पदो मे भाव और भाषा साम्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रसखी का ही पद मीराँ के नाम पर प्रचलित हो गया है।

२

झूलत राधा सग गिरिधर।
अवीर गुलाल उडावत, राधा भरि पिचकारी रग।
लाल भई वृन्दावन, जमुना केशर चूवत रग।
नाचत ताल अधर सुर भरे, धिम धिम बाजै मृदग।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरन कमल कूँ रग ॥५०२॥†

प्रथम पक्ति मे राधा का कृष्ण के सग झूलने की और शेष पद मे होली खेलने की ही अभिव्यक्ति है। पद की तीसरी पक्ति और अन्तिम पक्ति का द्वितीयाश "चरन कमल कूँ रग" अर्थहीन प्रतीत होता है।

पाठान्तर १,

झुलत राधा सग गिरिधर, झुलत राधा सग।
अवील गुलाल की धुम मचाई, डारत पिचकारी रग।
लाल भयो वृन्दावन जमना, केसर चुवत अनंग।
नाचत ताल अधारे सुर सुन्दरी, डारी डारी बाजे ताल मृदग।
मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल कूँ बहोत रंग।

पद की अन्तिम पक्ति मे अधिकाश गुजराती पदो की तरह "मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण" का ही प्रयोग हुआ है।

३

चलो व्रज की नारी, सखी, नन्द पौरी ठाढे मुरारी।
राधा, चन्द्रभागा, चन्द्रावलि, भामा, ललित, सुशीले।
सज्यावली कनक घट शिर धरि, अब मौर जव लीन्हें।
नये नये चीर कुसुम्मी सारी, वसन्त अभरन साजिय हो।
नये नये केलि कर मोहन सग, नव नवल पिया भजिये हो।
चोवा चन्दन वूका चन्दर, उडत गुलाल अबीरे।
खेले फाग बड गोपी, छिरकत श्याम सरीरे।
ताल मृदग ढोल डफ महुवर, बीना जत्र रसाल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हँसी कराय गोपाल ॥५०३॥†

पदाभिव्यक्ति मे असगति स्पष्ट है। आधे पद मे वसन्त का और आधे मे होली खेलने का वर्णन है।

पाठान्तर १,

होरी खेलन चलो व्रजनारी, सखि नन्द पौरि ठाढे मुरारी।
राधा, चन्द्रभागा, चन्द्रावलि, भामा, ललिता, सुशीले।
शुभ सूचक कनक घर शिर धरी, अब मौर जव लीन्हे।
नये नये चीर कुसुम्मी सारी, भूषण अनेकानेक सजिए।
विविधि केलि करव मोहन के सग, नवल कान्ह पिय भजिये।
चोवा चन्दन वूका वन्दन, उडत गुलाल अबीर।
खेलन फाग वडे भाग गोपी, छिरकत श्याम सरीर।
चग मृदग दग डफ महुवर, वाजे वेणु रसाल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, रसिक राय द्विजपाल।†

इस पाठान्तर में 'करव' शब्द का प्रयोग पूर्वी भाषा के प्रभाव का द्योतक है।

४

कैसे आवों हो नन्दनलाल तेरी व्रजनगरी, गोकुल नगरी।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहे जमुना गहरी।
पाँव धर्‍यां मेरी पायल भीजै, कूदि परौ वहि जाओ सारी।
मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, मारग मे मोहन झगरी।
बरज यशोदा अपने लाल को, छीन लई मोरी नथली।
रहु रहु ग्वालिन झूठ न बोलो, कान अकेलो तुम सगरी।
मेरो कन्हैया पाँच बरस को, तुम ग्वालन अलमस्त भई।
जाय पुकारो हो कंस राजा से, न्याय नही तेरी गोकुल नगरी।
वृन्दावन की कुज गलिन में, बाँह पकर राधे झगरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, साधु संग करि हम सुधरी ॥५०४॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध और सगति का अभाव है। तृतीय पक्ति "पाँव धर्‍यां"··· जाओ सारी" सर्वथा अर्थहीन है। "झूठ न बोलो," "तेरी," "तुम" आदि शब्दो से पद की भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है। "अलमस्त" शब्द का प्रयोग उर्दू के प्रभाव को भी इगित करता है। इसी प्रकार का एक पद मीराँ के नाम पर प्रचलित गुजराती पदो मे भी प्राप्त है।

५

हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को।
मोर मुकुट माथे तिलक बिराजै, कुडल अलकाकारी को।
अधर मधुर पर बसी बाज, रीझ रीझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीराँ, मोहन गिरिधारी को ॥५०५॥†

अन्तिम पक्ति की शैली सर्वथा नूतन है।

६

झट द्यो मेरो चीर रे मोरारी रे, झट द्यो मेरो चीर।
मेरो चीर कदम चढ बैठो, मै जल बीच उघाडी।

हाँरे वा'ला मैं जलबीच उघाड़ी।
उभी राधा अरज करत है, दो चीर दो ओ गिरधारी।
प्रभु मैं तेरे पाय परूँगी।
जो राधा तेरो चीर चहावत हो, जल से हो जा न्यारी।
हाँ रे, वा'ला जल से हो जा न्यारी।
जल से न्यारी कान्हा कवुए न होवृगी, तुम हो पुरुष हम नारी।
लाज मोकूँ आवत भारी।
तुम तो कुँवर नन्दलाल कहावो, मैं वृषभानु दुलारी।
हाँ रे, वा'ला मैं वृषभानु दुलारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, तुम जीते हम हारी।
चरण जाऊँ बलिहारी॥ ५०६॥†

उपर्युक्त पद की भाषा पर खडी बोली का और शैली पर गुजराती भाषा में प्राप्त पदों की शैली का प्रभाव सुस्पष्ट है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

वारो यशोदा तारा दानी ने, आली गारा जाल करे छे।
लाडकवायो बाई लामज तमने, ते थी घनो रावा राणी ने।
जल यमुना जताँ मारगे पालव, ग्रहियो मारो तानी न।
एक वार मार्‍युं बीजी वार मार्‍युं शरम तमारी घनी आनी ने।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित मानी ने॥५०७॥†

२

बोले झीणा मोर, राधे तारा डुँगरिया पर बोले झीणा मोर।
ए मौर ही बोले व पैया ही बोले, कोयल करे घन शोर।
······भली बीजली चमके, बादल हुआ घन घोर।
झरमर झरमर मेहुलो बरसे, भीजे मारा सालुडानी कोर।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, प्रभुजी म्हारा चितडानो चोर॥५०८॥†

३

काहानो माग्यो दे,धुतारो माग्यो दे,वर तो राधानो,मनें कहानो माग्यो दे।
वृन्दारे वनमाँ जेदी रास रम्याँ, ता सोल से गोपी माँ घेलो कहान।
हाथी ने घोडा वाई माल खजाना, हैया केरो हार ले मान।
तल भर जव भर वछो नव कीधो, जवे तोली ने पाछो ले।
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल मे चित दे ॥५०९॥†

बाँसुरी वर्णन

व्रजभाषा में प्राप्त पद

१

कान्हा रसिया वृन्दावन बासी।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे,मुरली बजावे मृदुलासी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, श्रवण कुडल फलासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बिना मोल की दासी ॥५१०॥

पाठान्तर १,

म्हारी वालपना की परीति थे निभाज्यो रैना।
जमुना के नीराँ तीरा धेनु चरावै, कुडल झलकत काना।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हर नौ माह रो धाना।

यह पद उपर्युक्त पद का गेय रुपान्तर मात्र प्रतीत होता है, क्योंकि प्रथम पक्ति के सिवा सम्पूर्ण पद की भाव और भाषा भी लगभग एक ही ह। विभिन्न स्थानो पर प्रचलित होने के कारण स्थानीय बोलियो का प्रभाव पदो से स्पष्ट होता है।

पद की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट है। इस रूपान्तर की अभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है। इसी पद से साम्य रखता एक और भी निम्नाकित पद प्राप्त है —

या मोहन के मै रूप लुभानी।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मद मुसकानी।

जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, वंसी मे गावै मीठी वानी।
तन मन धन गिरिधर पर वारूँ, चरण कवल माही लपटानी।

२

आजु मै देख्यो गिरधारी।
सुन्दर वदन मदन की शोभा, चितवन अनियारी।
वजावत वशी कुज मे।
गावत ताल तरग रंग ध्वनि, नाचत ग्वाल गन मे।
माधुरी मूरति वह प्यारी।
बसि रहै निस दिन हिरदै विच, टरै नही टारी।
वाही पर तन मन हो वारी।
वह मूरति मोहनि निहारत, लोक लाज डारी।
तुलसी वन कुंजन सचारी।
गिरिधर नवल नटनागर मीराँ वलिहारी ॥५११॥

३

प्यारी मै ऐसे दख श्याम।
वाँसुरी वजावत गावत कल्याण।
कव की ठाढी भैयाँ, सुध वुध भूल गैयाँ।
छौने जैसे जादू डारा, भूले मोसे काम।
जव धुन कान पैयाँ, देह की ना सुध सैयाँ।
तन मन हर लीन्हो, विरहो वाले कान्ह।
मीराँ वहि प्रेम पाया, गिरिधर लाल ध्याया।
देह सो विदेह भैयाँ, लागो पग ध्यान ॥५१२॥†

उपर्युक्त पद मे तीन विभिन्न वोलियो का सम्मिश्रण विचारणीय है। पद की भाषा प्रमुखत ब्रज है तथापि त्रियापदो पर पजावी प्रभाव स्पष्ट है। "मै ऐसे देखे श्याम", "पाया" आदि प्रयोगो से आधुनिक प्रभाव भी स्पष्ट हो उठता है। निम्नाकित एक और पद ऐसा मिलता है जिसकी प्रथम पक्ति उपर्युक्त पद की प्रथम पक्ति का पाठान्तर प्रतीत होती है, परन्तु शेष पद सर्वथा विभिन्न पडता है।

४

कही ऐसे देखे री घनश्याम।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल झलकत काना।
साँवरी सूरत पर तिलक बिराजे, तिस मे लगे रहे मेरे प्राना।
बरसाने सो चली गुजरिया, नन्दग्राम को जाना।
आगे केशव धेनु चरावे, लगे प्रेम के बाना।
सागर सूखि कमल मुरझाना, हसा किया पयाना।
भौरे रह गये प्रीति के धोखे, फेर मिलन को जाना ॥५१३॥†

इस पद मे कही से भी यह स्पष्ट नही होता कि यह पद किस के *द्वारा बनाया गया है, तथापि तथाकथित मीराँ क पदसग्रहो मे प्राप्त* है। पदाभिव्यक्ति स्पष्ट ही अर्थहीन है।

५

बाँके साँवरियाँ ने घेरि मोहि आन के।
जो गई जमुना जल भरन, मारग रोक्यो मेरो आन के।
वृन्दावन की कुज गलिन मे मुरली बजावे, आन तान के।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, प्रीत पुरातन जान के ॥५१४॥†

६

भई हो बावरी सुन क बाँसुरी।
श्रवण सुणत गोरी सुध बुध बिसरी, लगी रहत तामे मनकी बाँसुरी।
नेम धरम कोन कीनी मुरलिया, कौन तिहारे पासुरी।
मीराँ के प्रभु वश कर लीन्हे, सप्त ताननि की फाँसुरी॥५१५॥†
पद की तृतीय पक्ति का शेष पद से समन्वय नही होता।

७

मुरलिया बाजे जमुना तीर।
मुरलि सुनत मेरो मन हरि लीन्हो, चीत धरत नही धीर।
कारो कन्हैया, कारी कामरिया,कारो जमुना को नीर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पै सीर ॥५१६॥†

८

मोरे अंगना में मुरली वजाय गयो रे।
छोटे छोटे चरण, वडे वड़े नयना,
वृन्दावन की कुज गलिन मे, मारि गयो सयना '
मेरी आली, मेरी आली कहो कित जाऊँ,
मुरली मे गावै लै लै मेरो नाम ।
ऊँची नीची घाटी, मोसे चढऊँ न जाय,
मुरली की धुनि सुनि, मोसे रहऊँ न जाय।
कित गई गैया, कित गए ग्वाल, कित गये वसी वजावन हारा।
घर आई गैया, घर आये ग्वाल, अजहूँ न आये मेरे मदन गोपाल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर लाल, पाये हैं दर्शन भई निहाल ।
॥५१७॥†

उपर्युक्त पद मे पूर्वापर सवध का निर्वाह नहीं हुआ है। पद स० ३ और उपर्युक्त दोनो पदो मे 'मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर' न होकर "मीराँ के प्रभु गिरिधर लाल" का ही प्रयोग हुआ है, जो विचारणीय है।

९

कवन गुमान भरी वसी, तू कवन गुमान भरी।
अपने तन पै छेद परेचे, वाला तूं विछरी।
जाँत पाँत सब तेरो मैं जाणूं, तू वन की लकरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, राधा सें क्यूं झगरी ॥५१८॥†

पद की दूसरी पक्ति का द्वितीयाश "वाला तू विछरी" अर्थहीन प्रतीत होता है। ऐसा ही एक पद सूरदास का भी प्राप्त है :—

वासुरी तू कवन गुमान भरी।
सोने की नाही, रूपे की नाही, नाही रतन जरी।
जात सिफत तेरी सव कोई जानै, मधुवन की लकरी।

क्या री भयो जब हरि मुख लागी,बाजत विरह भरी।
सूरदास प्रभु अब क्या करिये, अधरन लागत री।
('बृहद्राग रत्नाकर' पद १५०, पृष्ठ ४८)

उपर्युक्त पदो मे भाव और भाषा देखते यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि सूरदास का ही पद मीराँ के नाम पर भी चल पड़ा हो।

१०

राधा प्यारी दे डारो जू बसी हमारी।
ये बसी मे मेरा प्राण बसत है, वो बसी गई चोरी।
ना सोने की बसी, ना रूपे की, हरे हरे बास की पोरी।
घड़ी एक मुख मे,घड़ी एक कर मे,घड़ी एक अधर धरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल पर वरी ॥५१९॥†

पाठान्तर १,

श्री राधे रानी, दे डारो बसी मोरी।
जा बसी मे मेरो प्राण बसत है, सो बसी गई चोरी।
काहे से गाऊँ, काहे से बजाऊँ, काहे से लाऊँ गैया घेरी।
मुख से गाओ कान्हा,हाथो से बजाओ,लकुटी से लाओ गैया घेरी।
हा हा करत तेरे पैया परत हूँ, तरस खाओ प्यारी मोरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बसी लेकर छोड़ी।

उपर्युक्त पाठान्तर मे पहले पद से कुछ अधिक पक्तियाँ है। साथ ही इस पाठान्तर की भाषा के क्रिया पदो पर आधुनिक प्रभाव विशेष विचारणीय है। भाव और भाषा साम्य रखता हुआ एक ऐसा ही पद 'चन्द्र सखी' के नाम पर भी प्रचलित है :—

श्री राधे रानी, दे डारो ना बाँसुरी मोरी।
जा बसी में मेरो प्राण बसत है, सो बसी गई चोरी।

सोने की नाही कान्हा, रूपे की नाही, हरे बाँस की पोरी।
काहे से गावूँ राधे, काहे से बजाऊँ, काहे से लाऊँ गैया घेरी।
मुख से गाओ प्यारे, ताल से बजावो, लकुटिया से लाओ गैया घेरी
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि, हरि चरणन की चेरी।

११

चालो मन गगा जमुना तीर।
गगा जमुना निरमल पाणी, सीतल होत सरीर।
वंसी बजावत गावत कान्हा, सग लियो बलवीर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल झलकत हीर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पै सीर ॥५२०॥

उपर्युक्त पद मे कुछ पक्तियाँ निम्नाकित रूप मे भी प्राप्त हैं :—

द्वितीय पक्ति :—

"या बसी में मेरो प्राण बसत है, वो बसी लेई गई चेरी।"

चतुर्थ पक्ति मे "घड़ी" शब्द के बदले "घटी" का भी प्रयोग मिलता है।

१२

बसीवारे हो कान्हा मोरी रे गागरी उतार।
गगरी उतार मेरो तिलक सभार।
यमुना के नीरे तीरे बरसीलो मेह,
छोटे से कन्हैया जी सू लागो म्हारो नेह।
वृन्दावन मे गऊएँ चरावे, तोर लियो गरवा को हार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तोरे गई बलिहार ॥५२१॥†

पदाभिव्यक्ति में संगति नही है। उपर्युक्त पद की शैली का चन्द्रसखी के पदो की शैली से बहुत साम्य है।

१३

तो सो लाग्यो नेहरा, प्यारे नागर नंद कुमार।
मुरली तेरी मन हर्यो, विसर्यो घर व्यवहार।
जब ते श्रवननि धुनि परी, घर आगण न सुहावै।
पारधि ज्यूं चूकै नही, मृगी बेधि दई आय।
पानी पीर न जानई ज्यो, मीन तडफि मरि जाय।
रसिक मधुप के मरम को, नहि समझत कमल सुभाव।
दीपक को जो दया नही, समझत उड़ि उड़ि मरत पतंग।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिले, जैसे पानी मिलि गयो रंग ॥५२२॥†

उपर्युक्त पद की प्रथम पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर प्राप्त है :—
"तू नागर नन्दकुमार, तो सो लाग्यो नेहरा।"

१४

गाव राग कल्याण, मोहन गावे राग कल्याण।
आप गावे ने आप बजावे, मोरली सुँ मिलावे तान।
मोर पछी सिर मुकुट बिराजे, कुण्डल झलके कान।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर नागर, गोपिये तजियो ध्यान।
॥५२३॥†

१५

गौडी तो अव मिट गई, जब अस्त भयो है भाण।
रात घटिका हो गई जब, प्रकट्यो राग कल्याण।
कल्याण कल्याण सब को कहे, मैं क्या कहूँ कल्याण।
जा घेर सेवा श्याम की, ता घेर सदा कल्याण।
अगो अग की उलट भयो, जब प्रकट्यो राग कल्याण।
कल्याण राग सो महाबली, सब राग को राखत मान।
सिघल देश की पद्मिनी, जपती राग कल्याण ॥५२४॥†

भाषा मे अर्थ-संगति नही है। उपर्युक्त पद मीराँ-विरचित है ऐसा भी कोई आभास पदाभिव्यक्ति से नही मिलता।

पद सं० ३, १४ और १५ इन तीनो ही पद मे राग कल्याण की व्युत्पत्ति का वर्णन या प्रशसा है। पद सं० ३ की भाषा पंजाबी से प्रभावित है। पद सं० २४ की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है और पद सं० १५ की भाषा गुजराती से प्रभावित है। उपर्युक्त परिस्थिति मे ऐसे पदो को प्रक्षिप्त मानना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

वागे छे रे, वागे छे रे, पेला वनड़ा माँ, मीठी वेणु वागे छे दुरनो
उर लागे छे।
सासु सती माती सुख निद्रा माँ, जाऊँ तोरे ननदल जागे छे।
ससुरो हमरो परम सुहागी, दियेरी वो छन छेतो दिल माँ दाझे छे।
मीराँ वाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, जनम मरण भे भागे छे ॥५२५॥†

२

अेरे मोरली नन्दावन रागी, वागी छे जमनाने तीरे रे।
मोरली ने नादे घेलाँ कीधाँ, मन काँई काँई कामण कीधाँ रे।
जमनाने नीर तीर धेनु चरावे, काँधे काली काँवली रे।
मोर मुगट पिताम्वर शोभे, मधुरी सी मोरली वजावे रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरणकमल वल्हिारी रे ॥५२६॥†

३

चालो नी जोवा जइये रे, माँ मोरली वागी।
भर निद्रा माँ हुँगे सुती ती, जव कि ने जोवा जागी।
वृन्दावन ने मारग जाता, सामो मलियो सुहागी।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल लेहे लागी ॥५२७॥†

४

एक दिन मोरली बजाई, कनैया एक दिन मोरली बजाई।
मोरली नाना दे मेरो मन हरि लीनो, जोम की सुरता उठाई।
गौओ तो सब घास ना खाये, ... ।
शर्वरी तो वली स्तभ भई है, चन्द्र गयो छुपाई रे।
मेघ घटा घट थई रही छे, बादरी कारी गै वाही रे।
मीरां बाई के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चित छाई रे।
॥५२८॥†

५

लीधाँ रे भटके, म्हारा मन लीधाँ रे लटके।
गात्र रंग कीधां गिरिधारिए, जो मार्या झटके।
मन रे मारू मोरली में मोह्यु, पेला वांस तणे कटके।
मीरां के प्रभु गिरिधर ना गुण, हो रंग लाग्य अटके ॥५२९॥†

६

मोरलीए मोह्यां मोहन, तारी मोरलीए मन मोह्यां।
थारे कारण शामलिया वाहला, गण भुवन मेणे जोया रे।
थारा सरीखा प्रभु नव कोई दीठा, गण भुवन मनड़े न मोह्याँ रे।
मीरां के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित्र प्रोयाँ रे ॥५३०॥†

७

मार्या छे मोहन बाण, वा'ली डे मार्या छे मोहना बाण।
तमारी मोरलीए मारॉ मनडॉ विंधायाँ,विंधायाँ,तन मन प्राण।
वृन्दावन ने मारग जातां, हाँ रे मारो पालवड़ो मो ताण।
जल जमना जल भरवा गयाँ ताँ, काँठले उभो पेलो काण।
मीरां बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित्त आण ॥५३१॥†

८

वागे छे रे, वागे छे, वृन्दावन मुरली वागे छे,

तेनो शब्द गगन माँ गाँजे छे।

वन्द्रा ते वन ने मारग जाता, वा'लो दान दधिना माँगे छे।

वन्द्रा ते वन माँ रास रचायो छे, वा'लो रास मण्डल माँ विराजे छे।

पीला पीताम्बर जरकस जामा, वा'ला ने पीलो ते पटको विराजे छे।

काने ते कुण्डल मुस्तके मुगट,हाँरे वा'ला मुख पर मुरली विराजे छे।

वन्द्रा ते वन नी कुंज गलिन माँ, वा'ले थनक थई थई नाचे छे।

वाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,वा'ला दरशन यों दुखड़ा भागे छे।

॥५३२॥†

नाथ-प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

जावा दे जावा दे, जोगी किस का मीत।
सदा उदासी रहै मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत।
वोलत वचन मधुर से मानूं, जोरत नाहिं प्रीत।
मैं जाणूं या पार निभेगी, छाँड़ि चले अधवीच।
मीराँ के प्रभु स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत।।५३३।।

२

जोगिया जी छाइ रह्यो परदेस।
जव का विछुडिया फेर न मिलिया, वहोरि दियो न सदेस।
या तन ऊपरि भसम रमाऊँ, खोर करूँ सिर केस।
भगवाँ भेख धरूँ तुम कारण, ढूंढ़त च्यारूँ देस।
मीरा के प्रभु राम मिलण कूं, जीवनि जनम अनेम।।५३४।।

३

जोगिया जी ! निसि दिन जोहाँ थाँरी वाट।
पाँव न चालै, पथ दुहेलो, आडा ओघड घाट।
नगर आई जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।
मैं भोली भोलापन किन्हो, राख्यो नही विलमाइ।
जोगिया कूं जोवत वहूं दिन वीता, अजहूँ आयो नाहिं।
विरह वुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन माँहि।
कै तो जोगी जग में नाहीं, कैर विसारी मोय।

कांई करूँ, कित जाऊँ सजनी, नैण गुमायो रोय।
आरति तेरे अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि।
मीरां व्याकुल विरहणी रे, तुम विन तलफत प्राण ॥५३५॥

४

पिय विन सूनो छैं जी म्हांरो देस।
ऐसा हैं कोई पिव कूँ मिलावै, तन मन करूँ सब पेस।
तेरे कारण वन वन डोलूँ, कर जोगण को भेस।
अवधि वदीति अजहूँ न आये, पडर होइ गया केस।
मीराँ के प्रभु कवर मिलोगे, तजि दियो नगर नरेस ॥५३६॥

५

जोगिया जी आवो थे या देस।
नैणन देखूं नाथ मेरो, ध्याय[1] करूँ आदेस।
आया सावण मास सजनी, भरे जल थल ताल।
रावल कुण विलमाइ[2] राख्यो, विरहिन है बेहाल।
बिछड़ियाँ कोई भौ[3] भयो रे, जोगी, ए दिन अहला[4] जाइ।
एक बेर देह फेरि, नगर हमारे आइ।
वा सूरति मेरे मन बसे रे, जोगी छिन भर रह्यो न जाइ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यो हरि आइ ॥५३७॥

पाठान्तर १,

जोगिया जी आजो इण देस।
मैं जास्या देखूं नाथ नैं, धाइ करूँ आदेस।
आया सावण भादवा, भरिया जलथल ताल।
साँई कूँ बिलमाई राख्यो, ब्रहनी है बैहाल।

१ दौडकर, २ फुसला रखना, ३ युग, ४ व्यर्थ।

विसरयाँ वोहो दिन भया, विसरचो पलक न जाइ।
ऐक वेरी देह फेरि, नगरि हमारे आइ।
वा मूरत म्हारे मन बसे, विसरचो पलधू न जाइ।
मीराँ के कोई नहिं दूजौ, दरसण दीजो आइ।

प्रथम पाठ की अभिव्यक्ति में अधिक संगति है।

६

म्हाँरो घर रमतो ही आई रे तू जोगिया।
कानाँ विच कुंडल, गले विच सेली, अग भभूत रमाई रे।
तुम देख्याँ विन कल न पडत है, ग्रिह आँगणो न सुहाई रे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यो मोकूँ आई रे ॥५३८॥

पद की प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त "म्हाँरो" शब्द के स्थान पर "सारो" का प्रयोग भी कही कही मिलता है। अर्थ संगति के विचार से "म्हारो" का प्रयोग ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

पद की अन्तिम पक्तियों के निम्नाकित पाठान्तर भी मिलते है:—

"मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, ध्यावै सेस महेस"।
और
"मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तज दियो नगर नरेस"

७

जोगिया जी दरसण दीजो राज।
कर जोड़िया करण करूँ, म्हाँरी वाहा गहवाँ की लाज।
लोक लाज जव सारी डारी, छाड़यो जग उपदेस।
ब्रह्म अगिन मे प्राण दाझे, म्हाँरो सुण लीजो आदेस।
साँच मुद्रा भाव कथा, साज्यो नप सव साज।
जोगणि होय जग ढूंढमूँ रे, म्हाँरी घर घर फेरी आस।
दरश दिवानी तन देपि आपनूँ, मलिया परम दयाल।
मीराँ के मनि आनन्द हुआ, रुम रुम पुसियाल ॥५३९॥†

पाठान्तर १,

जोगिया दरस दीजो राज, बाँह गह्यां की लाज।
लोक लाज विसारि डारिय, छाँड्यो जग उपदेस।
विरह अगिन में प्राणि दाझं, सुणि लिज्यो आदेश।
पाँच मुद्रा भाव कथा, नप सिप साजे साज।
जोगिण होय जग ढूंढ़सूं, म्हाँरी घर घर फेरी आज।
दरद दिवानी तन जाणि आपनी, मिलिया राम दयाल।
मीराँ के मन आनन्द उपज्यौ, रोम रोम खुसियाल।।†

दोनो ही पाठो मे अन्तिम दोनो पक्तियाँ मिलन और आनन्द को ही अभिव्यक्त करती है, जब शेष सम्पूर्ण पद से वियोग और प्रतीक्षा के साथ ही साथ जोगी द्वारा प्रदर्शित अवहेलना के प्रति एक गहरी शिकायत भी लक्षित होती है। शिकायत की यह अभिव्यक्ति नाथ-प्रभाव द्योतक अधिकाश पदों की विशेषता है।

८

तेरो मरम नहि पायो रे जोगी।
आसण माँडि गुफा मे बैठ्यो, ध्यान हरि को लगायो।
गल बीच सेली, हाथ हाँजरियो, अग भभूत रमायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सो ही पायो।।५४०।।

९

कोई दिन याद करोगे, रमता राम अतीत।
आसण माँडि अडिग होय बैठ्या,याही भजन की रीत।
मै तो जाणू जोगी सग चलेगा, छाँडि गया अधबीच।
आत न दीसे, जात न दीसे, जोगी किस का मीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, चरण न आवै चीत।।५४१।।

पद की प्रथम पक्ति की भाषा पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। इस पद और पद स० ८ की द्वितीय पक्ति का भाव और भाषा-साम्य विचारणीय है। इस पद की द्वितीय पक्ति की अभिव्यक्ति "याही भजन की रीत" मे आराध्य के प्रति बडा मार्मिक व्यग है।

१०

धूतारा जोगी एकर सूँ हँसि बोल ।
जगत बदीत करी मनमोहना, कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले मृगछाला, तू जन गुढिया खोल।
सदन सरोज वदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बभूत न बटवो, अजूं मुनि मुख खोल।
चढती बैंस[1] नैंण अनियाले[2], तू घरि घरि मत डोल।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,चेरी भई बिन मोल ॥५४२॥

११

धूतारा जोगी एक वेरिया मुख बोल रे ।
कान कुडल गल बीच सेली, अवतेरी मुनि मुख खोल रे।
रास रच्यो वसी बट जमुना, ता दिन कीनी कोल रे।
पूरब जनम की में हूँ गोपिका,अधविच पड गयो झोल रे।
जगत बदी ते तुम करो मोहन, अब क्यूँ बजाओ ढोल रे।
तेरे कारण सब जग त्याग्यो, अब मोहें कर सो लोल रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चेरी भई बिन मोल रे ॥५४३॥†

उपर्युत दोनो पदो की प्रथम पक्तियो मे गहरा साम्य है। द्वितीय पद की अभिव्यक्ति कही कही असगत और अर्थहीन है। प्रथम पद पर नाथ-परम्परा का विशेष प्रभाव है और दूसरे पद पर वैष्णव-परम्परा का गहरा प्रभाव है। प्रथम पद में तो आराध्य "धूतारा जोगी" से "एकर सूँ हँसि बोल" की प्रार्थना है और एतदर्थ प्रयास भी है और द्वितीय पद मे पूर्व जन्म के 'कोल' की याद दिलाई जा रही है। "पूरव जनम की में हूँ गोपिका" जैसी अभिव्यक्ति वैष्णव-प्रभाव द्योतक अन्य पदो में भी मिलती है।* इस पद की भाषा पर भी खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

---

१ वयस, २ तीखे।

* देखें, मीराँ, एक अध्ययन,

उपर्युक्त परिस्थिति मे प्रथम पद ही प्रामाणिकता के अधिक निकट पड़ता प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति के आधार पर यह पद विशेष विचारणीय है।

१२

जोगियो आणि मिल्यो अनुरागी।
ससा सोक अग नहि त्रिसना, दुवध्या[1] सब ही त्यागी।
मोर मुगट पीताम्बर सोहै, स्याम बरन बडभागी।
जनम जनम को साहिब म्हाँरो, वाही सो लौ लागी।
अपणा पिव सो हिलमिल खेलाँ, हरि दरशन अनुरागी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, अब मै भई सुभागी॥५४४॥†

पाठान्तर १,

जोगियो आणि मिल्यो अनुरागी।
ससय सोक अग नहि त्रिसना, दुबध्या सव ही त्यागी।
मोर मुकुट पिताम्बर सोहै, स्याम बरन बड भागी।
जनम जनम को मित्र हमारो, अधर सुधारस पागी।
अपणा पिय सूँ हिलमिल खेलाँ, हरि दरसन अनुरागी।
मीराँ तो गिरधर मनमानी, अव तो भई है सुभागी।†

नाथ प्रभाव द्योतक सम्पूर्ण पदो मे यही एक ऐसा पद है जिसमे मिलन और तद्जन्य आनन्द की अभिव्यक्ति हुई है। इस पद की एक और विशेपता भी है। अन्य सभी नाथ प्रभाव द्योतक पदो मे आराध्य की वेशभूपा का वर्णन नाथ-परप्परानुसार सुसज्जित जोगी के अनुकूल ही है, परन्तु यहाँ आराध्य का वर्णन वैष्णव-परम्परानुकूल है। उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति के अनुसार मीराँ के आराध्य 'जोगी' 'मोर मुकुट पीताम्वर' ही धारण किए हुए है। द्वितीय पाठान्तर पर ब्रजभापा का कुछ विशेप प्रभाव स्पप्ट है। पद विशेप रूपेण विचारणीय है।

---

१ दुविधा।

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

१

आपणा गिरधर के कारणे, (वा) मीराँ वैरागण हो गई रे।
जब ते सिर पर जटा रखाई, नैणा नीद गई रे।
दड कमंडल और गूदड़ी, सिर पर धार लई रे।
छापा तिलक बनाये छवि सो, माला हात लिई रे।
दोऊ कुल छाँड़ि भई वैरागण, हरि सो टेर दई रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, गोविन्द सरण भई रे ।।५४५।।†

पाठान्तर १,

आपणा गिरधर कै कारणै, मीराँ वैरागण भई रे।
सिर पर जटा बधाई, नैणा नीद गई रे।
दड कमडल और गूदडी, सिर पर धार लई रे।
छापा तिलक बनाये छवि सो, माला हात लई रे।
दोऊ कुल छाँडि भई वैरागण, हरि सो टेर दई रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, गोविन्द सरण भई रे।†

पाठान्तर २,

अपणै प्रीतम के कारणै, मीराँ वैरागण भई रे।
जब तें सीस पै जटा रखाई, नैणा नीद गई रे।
दोऊ कुल छांड भई वैरागण, हरि सो टेर देई रे।
छापा तिलक तुलसी की माला, कुल की लाज गई रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, गोविन्द सरण लई रे।†

पाठान्तर ३,

अपने प्रीतम के कारणै, वा मीराँ वैरागन हो गई रे।
जब से सिर पर जटा बिठाई, नैनन नीद गई रे।

दोऊ कुल छांड़ चली वृन्दावन, हरि को टेर गई रे।
छापा तिलक माल गल तुलसी, कुल की लाज गई रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, गोविन्द सरण लई रे।।†

उपर्युक्त तीनो पाठो मे गेय परम्परा के कारण पड़ा हलका हेर-फेर स्पष्ट हो उठता है। सभी पाठो मे मीराँ के प्रति किसी अन्य की ही उक्ति स्पष्ट हो उठती है। साथ ही एक और अभिव्यक्ति भी विचारणीय है। वैरागण मीराँ की वेशभूषा मे नाथ और वैष्णव, दोनों ही परम्परा का समन्वय है, जैसा कि किसी भी अन्य पद मे नही है। शुद्ध राजस्थानी मे प्राप्त ऐसे पदो मे भी एक पद (स० ६) ऐसा मिलता है जिसमे मीराँ के आराध्य जोगी की वेश भूषा वैष्णव-परम्परानुसार ही है। उक्त पद के द्वितीय पाठ पर व्रजभाषा का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव भी है। उपर्युक्त दोनो ही पद विशेष विचारणीय है।

२

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी।
तुम देख्या बिन कल न पडत है, तलफ तलफ जिय जासी।
तेरे खातर जोगण हूँगी, करवत लूँगी कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल की दासी।।५४६।।

पद की भाषा पर आधुनिक प्रभाव स्पष्ट है।

३

माई ! म्हानै रमइयो है दे गयो भेष[1]।
हम जाने हरि परम सनेही, पूरब जनम को लेप।
अग विभूत गले मृगछाला, घर घर जपत अलेय।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रामजी मिलन की टेक।।५४७।।†

इस पद पर भी वैष्णव और नाथ दोनो ही परम्पराओ का प्रभाव स्पष्ट है। "घर घर अलख जगाय" जैसी अभिव्यक्ति नाथ-प्रभाव द्योतक अधिकाश पदो मे प्राप्त है, परन्तु "घर घर जपत अलेय" जैसी अभिव्यक्ति इस पद की विशेपता है। द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त "लेप" के स्थान पर "पेप" का भी प्रयोग मिलता है।

---

१ वेश।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

जोगिया मेरे तेरी।
मनसा वाचा करमणा, प्रभु, पुरवौ मेरी।
मैं पतिवरत पीव की, हो मोल लयी चेरी।
तुम विन कोई दूजो देवा, सुपनै नहिं हेरी।
माता पिता सुत बधु द्वारा, अै पांव मे वेरी।
तुम विन कोऊ नाही मेरो, प्रगट कहूँ टेरी।
एक विरिया[1] मेरे नगर, दे जावो फेरी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, राखो चरण मेरी ॥५४८॥

२

जोगिया री सूरत मन में वसी।
नित प्रति ध्यान धरत हूँ, दिल मे, निसि दिन होत कुसी।
कहा करूँ, कित जाऊँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी।
मीराँ कहै प्रभु कवर मिलोगे, प्रीति रसीली वसी ॥५४९॥

३

जोगिया जी, तू कव रे मिलोगे आई।
तेरे ही कारण जोग लियो है, घर घर अलख जगाई।
दिवस न भूख, रैण नही निद्रा, तुम विन कछु न सुहाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल कर तपत वुझाई ॥५५०॥

४

जोगिया से प्रीत किया दुख होई।
प्रीत कियाँ सुख न मोरी सजनी, जोगी मीत न कोई।
रानि दिवस कल नाहि परत है, तुम मिलिया विन मोइ।

---

१ वार।

ऐसी सूरत या जग माँहि, फेरि न देखी सोई।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलिया आणन्द होई ॥५५१॥

५

जोगी मत जा, मत जा, पांव परूँ मैं तेरी।
प्रेम भक्ति को पैंड़ो ही न्यारो, हम कूँ गैल वता जा।
अगर चन्दन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल वल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, जोत मे जोत मिला जा ॥५५२॥

उपर्युक्त सभी पदो में प्रयुक्त क्रिया पदो पर आधुनिक प्रभाव विशेष विचारणीय है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

मै ने सारा जगल ढूंढा रे, जोगिड़ा ना पाया।
काना विच कुण्डल, जोगी गले विच सेली, घर घर अलख जगाये रे।
अगर चन्दन की धुनो, जोगी, धकाई, अंग बीच भभूत लगाये रे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सबद का ध्यान लगाये रे।
॥५५३॥†

उपर्युक्त पद गुजराती पद संग्रहो मे ही प्राप्त है, यद्यपि पद की भाषा पर गुजराती का कोई विशेष प्रभाव नहीं प्रतीत होता।

इस पद से व्यक्त होनेवाली भावनायें नाथ-प्रभाव द्योतक प्राय. अन्य पदो में भी मिल जाती है।

२

मलवो[1] जटाधारी जोगेश्वर बावा, मल्यो[2] रे जयधारी।
हाथ माँ झारी हूँ तो बाल कुँवारी, बाला, देवल[3] पूजवाने चाली।

---

१ मिलो, २ मिल गया, ३ मन्दिर।

साड़ी फाड़ी ने कफनी कीधी, वाला, अंग पर विभूति लगाड़ी।
आसण बाली वालो मढ़ी माँ बैठो, वाला घेर घेर[1] अलख जगाड़ी।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, प्रेम नी कटारी मुने मारी ॥५५४॥

उपर्युक्त की पद प्रथम पक्ति मे 'मलवो' और 'मल्यो' दोनों ही शब्दो का प्रयोग हुआ है। अर्थ सगति के दृष्टिकोण से यह अशुद्ध है। सम्पूर्ण पदाभिव्यक्ति के देखते 'मलवो के बदले 'मल्यो' प्रयोग ही शुद्ध प्रतीत होता है।

"घेर घेर अलख जगाडी" जैसी भावना नाथ-प्रभाव द्योतक अधिकाश पदो की विशेषता है।

३

उठ तो चाले अवधूत, मरी माँ कोई ना विराजे, उठ चले अवधूत।
पथी हतो[2] ते पथे लाग्यो, आसन पड़ रही विभूत।
चेलो साथी कोई ना सूधर्यो, सब ही नीबडया[3] कपूत।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, टूट तो गए घर सूत ॥५५५॥

यह पद अपनी तरह का एक ही है। पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

---

१ घर, २ था, ३ निकले।

संतमत-प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

ग्यान कूं वाण वसी हो, म्हॉरॉ सतगरु जी हो।
वखतर फूटी हिय, भीतर चालि खुसी।
वाहरि घाव दीसत नही कोई, उरि बीच पूरि खसी।
तन तरवारि भालिका भाल्का, सवदी की वरछी धसी।
राम दिवानी मै तो पल्क न वीसारूँ, जणि' र करावो (जगमे) हँसी।
॥५५६॥†

पदाभिव्यक्ति मे असगति है। साथ ही पदाभिव्यक्ति से यह भी नही आभासित होता कि पद मीरॉ रचित ही है।

२

वडे घर ताली लागी रे, म्हॉरॉं मन री डनारथ भागी रे।
छीलरिये म्हॉरो चित्त नही रे, डावरिये कुण जाव।
गगा जमुना सो काम नही रे, मै तो जाय मिलूं दरियाव।
हाल्या मोल्यॉं सूं काम नही रे, सीख नही सरदार।
कामदारॉं मूं काम नही रे, लोहा चढे मिर भार।
कामदारॉं सूं काम नही रे, मै तो जवाव करूँ दरवार।
काचा कथीर सूं काम नही रे, म्हॉरो हीरा को व्योपार।
सोना रूपॉं सूं काम नही रे, लोहा चढे मिर भार।
भाग हमारो जागियो रे, भयो समद सूं सीर।
अमृत प्याला छाडि के, कुण पीवै कडवो नीर।
पापी कूं प्रभु परचो दियो, दियो रे खजानो पूर।
मीरॉं के प्रभु गिरिधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ॥५५७॥†

उपर्युक्त पद राजस्थान के जन-प्रिय भजनो की लय पर है। भावाभिव्यक्ति में अर्थ-सगति नही है।

३

चालो अगम के देस, काल देखत डरै।
वहाँ भरा प्रेम का हौज, हसा केल्यां[1] करै।
ओढ़ण लज्जा चीर, धीरज को घाघरो।
छिमता काँकण हाथ, सुमति को मून्दरो।
दिल दुलड़ी दरियाव, साँच को दोवड़ो।
उबटन गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो।
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को झूठणो।
बेसर हरि को नाम, चूड़ो चित उजलो।
जोहर सील सतोष, निरत को घूघरो।
विदली गज अरु हार, तिलक गुरु ग्यान को।
साज सोलह सिणगार, पहिर सोने राखड़ी।
साँवलियाँ सूं प्रीति, औराँ सूं आखड़ी।
पतिबरता की सेज प्रभु जी पधारिया।
गावे मीराँ बाई दासी कर राखिया॥५५८॥†

इस तरह के गीत राजस्थान मे कीर्तन मडलियो मे विशेष रूप से प्रचलित है। पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है। उपर्युक्त दोनो पदो की भाषा आधुनिक राजस्थानी कही जा सकती है।

४

राम नाम मेरे मन बसियो, राम रसियो रिझाऊँ, ए माय।
मद भागिण करम अभागिन, कीरत कैसे गाऊँ, ए माय।
विरह पिजर की बाड सखी री, उठ कर जी हुलसाऊँ[2], ए माय।
मन कूं मार मजूं सतगरु सूं, दुरमत दूर गमाऊँ, ए माय।

---

१ केलि, २ प्रसन्न करूँ।

डाको नाम सुरत की डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढाऊँ, ए माय।
ज्ञान को ढोल वन्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ, ए माय।
तन करूँ ताल मन करूँ मोरचग सोती सुरत जगाऊँ, ए माय।
नीरत करूँ, मैं प्रीतम आगे, तौ अमरापुर पाऊँ, ए माय।
मो अवला पर किरपा कीज्यो, गुण गोविन्द को गाऊँ, ए माय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, रज चरणा की पाऊँ, ए माय ॥ ५५९ ॥

पाठान्तर १,

रसियो राम रिझाऊँ ए माइ, राम नाम मेरे मन बसियो।
बिरहै पीड़ की बात सखी री, कॉसूँ कहूँ समझाई।
तन करि ताल र मन करि मिरदग, सुणतहि सुरति जगाऊँ ए माई।
सील सिगार साज तन ऊपर, प्रभु के सनमुख जाऊँ, ए माई।
लोक लाज कुल सक निवारी, राम जी मिल्या सुख पाऊँ ए माई।
मीराँ के प्रभु तुमरे मिलन कूँ, चरण कमल बलि जाऊँ ए माई।

५

म्हाँरो जनम मरण रो साथी, थाँ ने नही विसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ विन कल न पडत है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ चढ पथ निहारूँ, रोय रोय अखियाँ राती।
यो ससार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती।
दोऊकर जोड्या अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बडो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सदगुरु हस्त धर्यो सिर ऊपर, अकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणा चित राती ॥५६०॥

उपर्युक्त पद मे विभिन्न भावनाओ का समावेश हुआ है। वियोग, निर्वेद और मिलन तीनो भावनाओ की क्रमश अभिव्यक्ति हुई है। अतः पूर्वापर सबध मे असम्बद्धता आ गई है। "म्हाँरो" जनम

उपर्युक्त पद राजस्थान के जन-प्रिय भजनो की लय पर है। भावाभिव्यक्ति मे अर्थ-सगति नही है।

३

चालो अगम के देस, काल देखत डरै।
वहाँ भरा प्रेम का हौज, हसा केल्या[1] करै।
ओढण लज्जा चीर, धीरज को घाघरो।
छिमता काकण हाथ, सुमति को मून्दरो।
दिल दुलडी दरियाव, साँच को दोवड़ो।
उवटन गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो।
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को झूठणो।
वेसर हरि को नाम, चूड़ो चित उजलो।
जोहर सील सतोष, निरत को घूघरो।
विदली गज अरू हार, तिलक गुरु ग्यान को।
साज सोलह सिणगार, पहिर सोने राखड़ी।
साँवलियाँ सूं प्रीति, औराँ सूं आखड़ी।
पतिवरता की सेज प्रभु जी पधारिया।
गावे मीराँ वाई दासी कर राखिया॥५५८॥†

इस तरह के गीत राजस्थान मे कीर्तन मडलियो मे विशेष रूप से प्रचलित है। पदाभिव्यक्ति में सगति का अभाव है। उपर्युक्त दोनो पदो की भाषा आधुनिक राजस्थानी कही जा सकती है।

४

राम नाम मेरे मन वसियो, राम रसियो रिझाऊँ, ए माय।
मद भागिण करम अभागिन, कीरत कैसे गाऊँ, ए माय।
विरह पिजर की वाड सखी री, उठ कर जी हुलसाऊँ[2], ए माय।
मन कूं मार सजूं सतगरु सूं, दुरमत दूर गमाऊँ, ए माय।

---

१ केलि, २ प्रसन्न करूँ।

डाको नाम सुरत की डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढ़ाऊँ, ए माय।
ज्ञान को ढोल बन्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ, ए माय।
तन करूँ ताल मन करूँ मोरचग सोती सुरत जगाऊँ, ए माय।
नीरत करूँ, मै प्रीतम आगे, तो अमरापुर पाऊँ, ए माय।
मो अवला पर किरपा कीज्यो, गुण गोविन्द को गाऊँ, ए माय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, रज चरणा की पाऊँ, ए माय ॥ ५५९ ॥

पाठान्तर १,

रसियो राम रिझाऊँ ए माइ, राम नाम मेरे मन बसियो।
विरहै पीड़ की बात सखी री, काँसूं कहूँ समझाई।
तन करि ताल र मन करि मिरदग, सुणतहि सुरति जगाऊँ ए माई।
सील सिंगार साज तन ऊपर, प्रभु के सनमुख जाऊँ, ए माई।
लोक लाज कुल सक निवारी, राम जी मिल्या सुख पाऊँ ए माई।
मीराँ के प्रभु तुमरे मिलन कूं, चरण कमल बलि जाऊँ ए माई।

५

म्हाँरो जनम मरण रो साथी, थाँ ने नही विसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ विन कल न पडत है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ चढ पथ निहारुँ, रोय रोय अखियाँ राती।
यो ससार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती।
दोऊकर जोड्या अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो वडो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सदगुरु हस्त धर्यो सिर ऊपर, अकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रुप निहारुँ, निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणा चित राती ॥५६०॥

उपर्युक्त पद में विभिन्न भावनाओ का समावेश हुआ है। वियोग, निर्वेद और मिलन तीनो भावनाओ की क्रमश अभिव्यक्ति हुई है। अत. पूर्वापर सबध में असम्बद्धता आ गई है। "म्हाँरो" जनम

मरण रो साथी····रोय रोय अखियाँ राती..." से वियोग, "यो ससार····दे समझाती" से निर्वेद और अन्तिम दो पक्तियों से मिलन-जनित आनन्द ही व्यक्त होता है।

६

मिलता जाज्यो हो गुरु ज्ञानी, थाँरी सूरत देखि लुभानी।
मेरो नाम वूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ विरह दिवानी।
रात दिवस कल नाहि परत है, जैसे मीन विन पानी।
दरस विना मोहिं कछु ना सुहावै, तलफ तलफ मर जानी।
मीराँ तो चरणन की चेरी, सुण लीजै सुख दानी ॥५६१॥

प्रथम पक्ति मे 'हो गुरु ग्यानी' के बदले कही कही 'हो जी गुमानी' पाठ भी मिलता है। चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित निम्नांकित पद की और इस उपर्युक्त पद की प्रथम पक्तियो मे भाव और भाषा का गहरा साम्य है, यद्यपि शेष पदाभिव्यक्ति सर्वथा भिन्न पड़ती है।

मिलता जाज्यो राज गुमानी, थारी सूरत देख लुभानी।
म्हांरो नाम थे जाणो बूझो, मैं हूँ राम दिवानी।
आमी सामी[१] पोल[२] नन्द की, चन्दन चोक निसानी।
थे म्हारे घर आवो बसी वाला, करस्यां बहुत लड़ानी[३]।
करु रसोई सोध[४] की जी, भोत करूँ मिजमानी।
थे आवो हरि धेन चरावण, मैं जल जाना पाणी।
थे नन्द जी का लाल कँहावो, मे गोपी मस्तानी।
जमना जी के नीराँ तीराँ, थे हरि धेन चराज्यो।
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छवि, नित वरसाणे आज्यो।

चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित इस पद मे पुनरुक्ति और अर्थ-असम्बद्धता दोनो ही दोष है, जो मीराँ के नाम पर प्रचलित पद मे नही है। अत बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि मीराँ का पद ही गेय परम्परा फलस्वरूप चन्द्रसखी के नाम पर चल पडा हो।

---

१ आमने सामने, २ सदर दरवाजा, ३ खातिरदारी, ४ शुद्धता।

७

आज्यो आज्यो गोविन्द म्हाँरे म्हैल, निहाराँ थाँरी वाटड़ली खड़ीजी।
म्हाँरे आज्यो।
तन का त्यागू कपडा जी, अग ते परभात,
खड़ी जोवती राह मे जी, सतगरु पोछे दाता आय।
पियालो लियाँ हाजर खडी जी पन।
साधु हमारी आतमा जी, हम साधन की देह,
रोम रोम मे रम रही जी, ज्यूं वादल में मेह।
सुरत हरि नाम से लगी जी।
मीराँ हरि लाडली जी, तुम मीराँ के स्याम,
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसण द्यो गोविन्दा आय।
सुरत निज नाम से लगी जी ॥५६२॥ †

८

आवो आवो जी रग भीना, म्हाँरे म्हैल, प्याला तो लियाँ हाजर खडी
सत जुग मे सूली रही, त्रेता लई जगाय।
द्वापर में समझी नही, कलजुग पोहँच्यो आय।
सतगरु शब्द उचारिया जी, विनती करो सुनाय।
मीराँ नै गिरधर मिल्याँ जी, निरभै मगल गाय ॥५६३॥ †

उपर्युक्त दोनो पदो मे अर्थ-सगति नही है।

९

राणा जी गिरधर रा गुण गास्याँ।
गुर परताप साध की सगति, सहजै ही तिर जास्याँ।
म्हाँरे तो पण चरणामृत को, निति उठि देवल जास्याँ।
कथा करितण सुख निसि वासर, महाप्रसाद ले धास्याँ।
सुनि सुनि वचन साधरा, घुघरा निरत कराँ और नाचाँ।

प्रेम प्रतीति जाय निसी वासर, वहुरि न भो[1] जल आस्याँ।
लोक वेद की काण न मानूं, राम तणे रग राँचाँ।
नाॅव अमोलिक[2] इमरित रूपी, सिर के साँटै लास्याँ।
उमड भायो म्हाँरे ऊपर, 'विपरो प्यालो धरयाँ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पीवत मन हुलास्याँ ॥५६४॥ †

पदाभिव्यक्ति मे संगति का अभाव है। सत और वैष्णव दोनों ही मतो का प्रभाव समान रूपेण लक्षित हो उठता है।

१०

सतगुरु म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी।
थे छो म्हाँराँ गुण रा सागर, जोगण म्हाँरो मति जाज्यो जी।
लोक न धीजै[3], म्हाँरो मन न पतीजै[4], मुखडारा सबद सुणाज्यो जी।
म्हे तो दासी जनम जनम की, म्हाँरे आँगणि रमता आज्यो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बेड़ा पार लगाज्यो जी ॥५६५॥†

११

पीया की खुमार, मैं तो बावरी भई ये माय।
अमल न खायो आयो मोकूँ, यो इचरज देखो भार।
यातन की मैं वीण वजाऊँ, रीग रीग[5] बाँधू तार।
समझ बूझ मिल जायँ दुलारो, जद रीझै रिझवाल ॥५६६॥†

उपर्युक्त पद के विपय मे श्री सूर्यकरण जी चतुर्वेदी लिखते हैं, "मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर" जैसी छाप न होने पर भी यह पद भाव और भापा की दृष्टि से मीराँ जी का है।"

मेरे विचार मे ऐसे पदो को प्रक्षिप्त मानना ही युक्तियुक्त है।

---

१ भव, २ अमूल्य, ३ विश्वास करे, ४ मन नही भरता, विश्वास नही होता, ५ रग रग।

१२

जागो म्हाँरा, जगपति राइक, हँसि बोलो क्यूँ नहिं।
हरि छो जी हिरदा माँहि, पट खोलो क्यूँ नहिं।
तन मन सुरति सँजोई, सीस चरणाँ धरूँ।
जहाँ जहाँ देखूँ म्हाँरो राम, जहाँ सेवा करूँ।
सदकै करूँ जी सरीर, जुग जुग वारणै।
छोडि छोड़ि कुल की लाज, साहिब तेरे कारणै।
थोड़ि थोडि करूँ सिलाम, बहोत करि जाण ज्यो।
बन्दि हूँ खानाजाद, महीर, करि मान ज्यो ॥५६७॥ †

उपर्युक्त पद मीराँ के पदो के अन्तर्गत ही प्राप्त है, यद्यपि पदाभिव्यक्ति से ऐसा कही से आभासित नही होता है।

१३

साँवरियो म्हानै भाँग पिलाई, मेरी अँखिया में लाली छाई।
काहे री कूँडी (राधे) काहे रा घोटा, काहे री सुवाफी वणाई।
तन कर कूँडी प्यारे मन कर घोटा, सुरती री सुवाफी वणाई।
कदम नीचे छाँण पिवाई।
पाँचो गुवाल मिल घोटन बैठे श्री गगा भर ल्याई जलझारी।
प्रेम करि (राधेजी को) अवक चखाई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, प्रेम की रीत निभाई।
चरण माँहि मनड़ो लगाई ॥५६८॥ †

प्रभुजी मन माने तब तार।
नदिया गहरी नाव पुरानी, अब कैसे उतरूँ पार।
वेद पुराना सब कुछ देखे, अन्त न लागे पार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, नाम निरन्तर सार ॥५६९॥ †

१४

करना फकीरी तो क्या दिलगीरी, सदा मगन मन रहना रे।
कोई दिन बाडी तो कोई दिन बंगला कोई दिन जंगल रहना रे।
कोई दिन हाथी कोई दिन घोडा, कोई दिन पाँखो से चलना रे।
कोई दिन गाद्दी कोई दिन तकिया, कोई दिन भोय मे पड़ना रे।
कोई दिन खाना तो कोई दिन पीना, कोई दिन भूख ही मरना रे।
कोई दिन पहनाँ तो कोई दिन ओढा, कोई दिन चिथरा पैरना रे।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, ऐसा कता करना रे।।५७०।।†

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

१

किल गयो पंछी बोल तो।
कची रे मटीदा महल चुणाया, गोरवाँ ही गोरवाँ[1] डोल तो।
गुरु गोविन्द को कह्यो न मान्यो, ऐडो ही ऐडो डोल तो।
ऐंठी रेठढी पाग झुका तो, छाया निरख तो चाल तो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, हरि चरणा चित ल्यावतो।
।।५७१।।†

पदाभिव्यक्ति सर्वथा असगत ही है।

२

बाल्हा, मै वैरागिण हूंगी हो।
जो जो भेख म्हाँरो साहिब रीझै, सोइ सोइ धरुँगी हो।
सील सतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी हो।
जाको नाम निरजन कहि, ताको ध्यान धरूँगी हो।
प्रेम प्रीत सूँ हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो।

---

१ बारी।

या तन की मैं करूँ कीगरी, रसना नाम रटूँगी हो।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, साधाँ सग रहूँगी हो।।५७२।।†

पद के सभी क्रियापदो पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। प्रत्येक पक्ति के अन्त मे 'हो' का प्रयोग अवधी प्रभाव को भी इगित करता है।

३

हेली, सुरत सोहागिन नार, सुरत मोरी राम से लगी।
लगनी लहगा पहिर सुहागिन, बीती जाय वहार।
धन जोवन दिन चार का रे, जात न लागे वार।
झूठे वर को क्या वरूँ जी, अधबीच में तज जाय।
वर वरलाँ राम जी, म्हाँरो चूडो अमर हो जाय।
राम नाम का चुडला हो, निरगुन सुरमो सार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणां की मैं दासी।
चालाँ वाही देस प्रीतम पाँवाँ, चालाँ वाही देस।
कहो तो कुसुम्बी सारी संगावा, कहो तो भगवाँ भेख।
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ, कहो तो छिटकावाँ केस।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सुनियो विडद नरेस ।।५७३।।†

उपर्युक्त पद स्पष्ट रूप से दो भागो में विभक्त किया जा सकता है। "हेली सुरत सुहागन नार · हरि चरणा की मैं दासी" पहला और "चालाँ वाही देस · सुनियो विडद नरेस" दूसरा। यह दूसरा अश स्वतत्र पद के रूप में भी प्रचलित है। दोनों अर्द्धाशो में कोई भाव साम्य नही है। इस दूसरे अश की भाषा भी ठेठ राजस्थानी है, जब कि प्रथमाश की भाषा पर व्रज और खडी बोलियो का भी प्रभाव स्पष्ट हो उठता है।

पाठान्तर १,

पिर धीवी माया जल में पड़ी।
तू तो समझि सुहागण सुरता नारि, पलक कमरे रामसू लगी
लगनी लँहगो पहरि सुहागण, बीतौ जाई विन्हार।
धन जोवन दिन च्यार का जातन लागे बार।
राम नाम को चुड़लो पहरौ, सुमरण काजल सार।
माला ल्यौ हरिनाम की, उतारि चलौ पैली पार।
अैसा बरकौ काई वसूजी, जनमत ही मर जाय।
वर बरस्याँ म्हाँरो साँवरोजी अमर चूड़ा होइ जाय।
जनमें मरै करै घर केता, बिखराता नर नारि।
मीराँ रत्ती राम सूंजी, सावरियो भरतार ॥†

पाठान्तर मे पूर्व पाठ का द्वितीयांश नही है। इससे मेरे उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है।

४

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी बहुरन आता।
अब के मोसर[१] ज्ञान विचारो राम राम मुख गीता।
सतगुरु मिलिया सुंज पिछानी, ऐसा ब्रह्म मे पाती।
सगुरा सूरा अमृत पीवै, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भयो मेरो मन सुख मे, गोविन्द का गुण गाती।
साहिब पाया आदि अनादि, नातर भव मे जाती।
मीराँ कहै इक आस आप की, और सूँ सकुचाती ॥५७४॥†

पद की भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। विचारणीय बात है कि उपर्युक्त तीनो ही पदो की भाषा खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनो ही से प्रभावित है। साथ ही तीनो की अभिव्यक्ति निर्वेद-द्योतक ही है। राजस्थानी मे प्राप्त कुछ पदो से भी निर्वेद की भावना झलकती है, तथापि अधिकांश पदाभिव्यक्तियाँ वियोगात्मक ही है।

---

१ अवसर।

५

मैं तो हरि चरणन की दासी, अब मैं काहे को जाऊँ कासी।
घट ही मे गगा, घट ही में जमुना, घट घट है अविनासी।
घट ही में पुसकर औलेथेश्वर, लछिमन कवर विलासी।
जगेनाथ गगासागर है, साखी गुपाल ब्रजवासी।
सेतु वध रामेश्वर ईश्वर मूलवटी सुर जासी।
अवधपुरी मधुपुरी द्वारिका, चित्रकूट यमुना सी।
गोवरधन गोकुल वृन्दावन, बीच मंडल चौरासी।
हरिद्वार कुरुखेत जनकपुर, गोदावरी हुलासी।
तीरथ बड़े प्रयाग गया जी, कासी तरुवर वासी।
गिरिनार विन्ध्याचल सगिनार रग है, सुधर कपिल दुखनासी।
बदरी नाथ केदार गगोतरी, वैजनाथ कैलासी।
पचवटी पपापुर रुक्मिणी, देव कपिल युवरासी।
नैमपार श्रगीरिष मिसरिष, कासी पाप विनासी।
मुटुकनाथ अस मानसरोवर, भानलता अरु हाँसी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सहज कटै यम फाँसी ।।५७५।।†

पदाभिव्यक्ति सर्वथा अर्थहीन है। भाषा की दृष्टि से भी यह विचारणीय है। प्रथम और अन्तिम पक्ति मे प्रयुक्त क्रियापदो के आधार पर भाषा खड़ी बोली से प्रभावित कही जा सकती है। शेष सम्पूर्ण पद की भाषा को बोलचाल की भाषा कहा जा सकता है। ऐसे अर्थहीन पदो को प्रामाणिक सग्रह मे स्थान नही मिलना ही उपयुक्त होगा।

पदाभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है, क्योकि इससे रदास का गुरु होना अति स्पष्ट हो जाता है। साथ ही पदाभिव्यक्ति से यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि "गुरु रैदास" और "आराध्य पिय" दो विभिन्न सत्ताएँ हैं।

कुछ ठेठ उर्दू शब्दो का प्रयोग विशेष विचारणीय ह। सम्भवत यह सधुक्कड़ी भाषा का ही प्रभाव हो।

६

सखी, तैंने नैंन गमाय दिया रोय।
वालापन की चटक चुदरिया, दिन दिन मैली होय।
वालपन लडकिन सग खेली, रंग रूप दियो खोय।
वाही सोच मीराँ भई दिवानी, तेरो दरद न जानै कोय।
लेनहार लेने को आये, लें चल ले चल होय।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, वैंद साँवलियाँ होय॥५८१॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव हैं। पद की तीसरी और चौथी पक्तियाँ अर्थहीन ही प्रतीत होती है। पद की अन्तिम तीन पक्तियो का "मेरो दरद न जाने कोय" पद स० ४ से साम्य सुस्पष्ट है। अत. इस परिस्थिति में पद को प्रामाणिक न मानना ही अधिक युक्तिसगत है।

७

पिया, मोहिं आरति तेरी हो।
आरति तेरे नाम की, मोहि साँझ सवेरी हो।
या तन कों दिवला करूँ, मनसा की वाती हो।
तेल जलाऊँ प्रेम की, वालूँ दिन राती हो।
पाटी पारूँ ज्ञान की, वुद्धि माँग सवारूँ हो।
पिया तेरे कारणे, धन जोवन वारूँ हो।
सेजडिया बहु रगिया, चगा फूल विछाया हो।
रैंण गई तारा गिणत, प्रभु अजहू न आया हो।
आयो सावण भादवो, वर्षा ऋतु आई हो।

स्याम पधारियाँ सेज में, सूती सेन जगाई हो।
तुम हो पूरे साइयाँ, पूरा सुख दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै हो ॥५८२॥†

पदाभिव्यक्ति मे असंगति है। प्रथम अर्द्धांश से वियोग भावना व्यक्त होती है, जब कि पद की दसवी और ग्यारहवी पक्तियों से मिलन-जनित आनन्द ही स्पष्ट हो उठता है। अन्तिम पक्ति से फिर वियोग की स्थिति ही लक्षित होती है।

पाठान्तर १.

स्याम तेरी आरति लागी हो।
गुरु परतापे पाइया, तन दुरमति भागा हो।
या तन को दिवला करो, मनसा की करूँ वाती हो।
तेल भरारों प्रेम का, वारों दिन राती हो।
पाटी पारो ज्ञान की, मति माँग सँवारुँ हो।
तेरे कारन साँवरे, धन जोबन वारो हो।
यह सेजिया वहुरग की, वहु फूल बिछाए हो।
पथ में जोहों स्याम का, अजहूँ नहि आये हो।
सावन भादो उमडो, वर्षा ऋतु आई हो।
मोह घटा घन घेरि कै, नैननि झरि लाई हो।
माता पिता तुम को दियो, तुम्ही भल जानो हो।
तुम तजि और भरतार को, मन में नहि आनो हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै हो।†

इस पाठान्तर की भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव सुस्पष्ट है, जो विचारणीय है।

"माता पिता तुम को दियो" जैसी अभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

पाठान्तर २,

पिया मोहे आरति तेरी हो।
तेरी तेरा नाँव की, मोहि साँझ सवेरी हो।
या तन को दिवला करूँ, मनसा की वाती हो।
तेलज सींचूं प्रेम को, जालूं दिन राती हो।
चुन चुन कलियाँ सेज बिछाऊँ, अन्तर सियाऊँ हो।
वाटज जोऊँ साँझ की, पिया अजहूं न आये हो।
चूक परी तो माफ करीजै, दरशन दीजै हो।
मीरां व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै हो।†

पदाभिव्यक्ति मे असगति है।

पाठान्तर ३,

पिया मोहिं आरति तेरी हो।
आरति तेरे नाम की, मोहि साँझि सवेरी हो।
या तन को दिवला करूँ, मनसा की वाती हो।
तेल जलाऊँ प्रेम की, वालूं दिन राती हो।
पाटी पारूँ ज्ञान की, वुद्धि माँग सँवारूँ हो।
तो पर मेरे साँइयाँ, धन जोवन वारूँ हो।
सेजडिया बहु रंगिया, चगा फूल विछाया हो।
रैन घटी मग जोवती, प्रभु अजहूं न आया हो।
मेहा घूट्यो घन घेरि, बीज झलाझल हो रही।
स्याम पधार्‌या सेज में, सूती सेन जगाई हो।
तुम पुरातन पुरख, पूरा सुख दीजै हो।
मीरां व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै हो।†

उपर्युक्त पाठ प्रथम पाठ का ही गेय रूपान्तर है। इस रूपान्तर की अभिव्यक्ति भी असगत ही है।

८

री मेरे पार निकस गया, सतगुरु मार्‌या तीर।
बिरह भाल लगि उर अन्तरि, व्याकुल भया सरीर।
इत उत चित चालै कवहूँ नहि, डारी प्रेम जंजीर।
के जाने मेरी प्रीतम प्यारो, और न जाने पीर।
कहा करूँ मेरो बस नहि सजनी, नैन झरत दोऊ नीर।
मीराँ कहे प्रभु तुम मिलिया बिन, प्राण धरत नहीं धीर ॥५८३॥

९

भरमारी रे बाना, मेरे सतगुरु बिरह लगाय के।
पाँव न पगा कानन बहिरा, सूझत नाहिं न नैना।
खडी खडी रे पथ निहारूँ, मरम न कोई जाना।
सतगुरु औषध ऐसी दीन्ही, रूम रूम भई चैना।
सतगुरु जैसा वैद नही कोई, पूछो वैद पुराना।
मैं तो राजी भई मेरे मन मे, मोहि पिया मिले इक छिन मे।
पिया मिल्या मोहि किरपा कीन्ही, दीदार दिखाया हरी ने।
सतगुरु सबद लखाया असरी, ध्यान लगाया धुन मे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मगन भई मेरे मन मे ॥५८४॥†

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। पद की दूसरी पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबंध का निर्वाह नही होता। इस पदाभिव्यक्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह पहलू है कि इससे 'पिया', 'हरी' और 'सतगुरु' की तीन विभिन्न सत्ताएँ सुस्पष्ट हो उठती हैं।

पद मे शुद्ध व्रजभाषा के साथ ही साथ ठेठ उर्दू शब्दों का प्रयोग भी विचारणीय है।

१०

नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहिब पाऊँ।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न लाऊँ री।

त्रिकुटी महल बना है झरोखा, तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल में सूरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बार बार बलि जाऊँ री ॥५८५॥†

उपर्युक्त पद की भाषा पर आधुनिक प्रभाव विशेष विचारणीय है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

मार्या रे मोहना बाण, धूतारे, मने मार्या मोहना बाण।
ध्रू ने मार्या, प्रह्लादा ने मार्या, ते ठरीना बेठा ठाम।
शुकदेव ने गर्भवास माँ मार्या, ते चारे युग माँ परमाण।
हिरण्यकश्यप भी मारी वा'ले, उगार्यो प्रह्लाद, दैत्यनो फोड्यो छे ठाम।
सायर पान बाँधी वा'ले सेन उतारी, रावण हण्यो एक बाण।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, हमने पार उतारो स्याम ॥५८६॥†

२

तमे जानि लियो समुद्र सरीखा, मारा वीरा रे।
आदिल तो खोली ने दीवो करोरे होजी। टेक।
आरे काया माँ छे वाडियो रे होजी।
माहे मोर करे छे झीगोरा रे, मारा०।
आरे काया माँ छे सरोवर रे होजी,
माहे हँस तो करे छे कलोला रे, मारा०।
आरे काया माँ छे हाटणा रे होजी,
तमे वणज व्यापार करो ने अपरपारा रे, मारा०।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण होजी,
दे जो अमने सत चरणे वासेरा रे, मारा० ॥५८७॥†

३

मदिरियमाँ दिवडा विना नुं अधारूँ।
खलमल्याँ देवल उभी रही थाँ भली, भाटुँ नहिं झाले अेना भार रे।

हाथ माँ नाटकड़ी घरोघर घुमती, कोई ने आलो ओघारूँ रे।
उठी गयो वाणियोने पडी रही हाटडी रे, जमड़ा करे छे धीगाणुं रे।
वाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आवता जमड़ानें पाछो वालो रे।
॥५८८॥†

४

जुनूँ थयूँ रे, देवल, जुनूँ थयूँ।
मारो हँसलो नानो ने देवल जुनूँ थयू।
आ रे काया रे हंसा, डोलवाने लागी रे।
पडी गया दाँत, मॉयली रेखू तो रही।
तारे ने मारे हसा, प्रीत्युं बँधाणी रे।
उडि गयो हस, पाँजर पडी रे रहियु।
वाई मीराँ कहे छे, प्रभु गिरधर ना गुण।
प्रेम ना प्यालो तमनें, पाऊँ नें पीऊँ ॥ ५८९ ॥†

५

आरत तोरी रे प्रिय, मोरी आरत तोरी रे।
आरत तोरा नाम की, भजलो साँझ सवेरी।
श्रावण भादरवो उलट्यो रे, वृखा ऋतु आगी रे।
बीज झवाझव हो रही रे, मेह झड लागी रे।
आतन को दिवडा करूँ रे, मनस करूँ वाती रे।
तेल जलावूं प्रेमनाँ रे, मोती माँग समाऊँ रे।
प्रीया तोरणे कारणो रे, भर जोवन वारूँ रे।
तम हो पुरण पुराणा रे, पुरण सुख देजो रे।
मीराँ वाई व्रेहनी व्याकुली, अपणी कर ले जो ले ॥५९०॥†

यह पद मिश्रित भाषा में प्राप्त पद स० ५८२ का ही गुजरातीकरण सा प्रतीत होता है।

शब्दानुक्रमणी

मीरां के जीवन सम्बन्धित विशिष्ट व्यक्ति तथा स्थान

बाँसुरी वर्णन

नाथ-प्रभाव द्योतक पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

व्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

संत-मत प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

व्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

जीवन खण्ड

मतभेद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

तू मत वरजै माई री, साधाँ दरसन जाती ।
राम नाम हिरदै वसै, माहिले मदमाती ।
माई कहै सुन धीहड़ी, काहे गुण फूली ।
लोक सोवै सुख नींदड़ली, थे क्यूं रैणज भूली ।
गेली दुनियाँ वावली, ज्याँकूँ राम न भावै ।
ज्या रे हिरदै हरि वसै, त्याँ कूँ नींद न आवै ।
चौवास्याँ की वावड़ी, ज्याँ कू नीर न पीजै ।
हरि नारे अमृत झरै, ज्याँ की आस करीजै ।
रूप सुरंगा राम जी, मुख निरखत जीजै ।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै ।।१।।†

उपर्युक्त पद में "माहिले" के स्थान में "म्हाँरे" होना युक्तियुक्त है, क्योंकि "माहिले" जैसा कोई शब्द हिन्दी या राजस्थानी में नहीं है।

२

मीराँ माई, म्हाँने सुपणे में परण गया जगदीस ।
सोती को सुपणा आविया जी, सुपणा विस्वावीस[१] ।
माँ· गेली[२] दीखे मीरा वावली, सुपणा आल जंजाल ।
मीराँ. माई, म्हाँने सुपणे में, परण गया गोपाल ।

---

१ शुभ, २ पागल,

अंग अंग हल्दी मै करी जी, सूधे भीज्यो गात।
माई, म्हाँने सुपणे में परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोटि जहाँ जाण[1] पधारे, दुल्हा श्री भगवान।
सुपणे मे तोरण[2] बाँधियो जी, सुपणे में आयी जाण।
मीरां को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनम के भाग।
सुपणे मे म्हाँने परण गया जी, हो गया अचल सुहाग ॥२॥†

पाठान्तर—१

माई म्हाँने सुपना मे परणी गोपाल।
गैली ये मीराँ भई बावरी, सुपनू छै आल जंजाल।
जो तू ने सुपना मे गिरधर मिलिया, तो कछुक सैनाण बताय।
हल्दी तो पीठी म्हाँरे अंग लिपटाई, मेँहदी सूँ राच्या म्हाँरा हाथ।
छप्पन कोड़ जादू जान पधारिया, दूल्हो श्री भगवान।
साँवरियो सिर पेच कलगी, सोरठणी तलवार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पूरबले भरतार।†

पाठान्तर—२

माई, री म्हाँने सुपणे मे परणी गोपाल।
राती पीरी चूनर पहरी, महदी पान रसाल।
काँई करौं और सग भाँवर, म्हाँने जग जजाल।
मीराँ प्रभु गिरधरन लाल सूँ, करी सगाई हाल।†

पाठान्तर—३

माई, मैं तो सपना में परणी गोपाल।
हाथी भी लायो घोडा भी लायो और लायो सुखपाल।†

---

१ बारात, २ लकडी का बनाया हुआ एक चित्रित त्रिकोण जो बारात के समय पर लडकी के पिता के दरवाजे पर बाँध दिया जाता है। नियमानुसार दुल्हा नीम की छडी से इसको छू देता है, तब अन्य रस्में की जाती हैं।

पाठान्तर—४

माई हूँ सुपणे मे परणी गोपाल।
मति करो म्हाँरी व्याव सगाई, क्यूँ बाँधो जंजाल।
झूठा मात पिता बंधु, वध्यौ अवध्या ख्याल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साँचो पति नन्दलाल।†

उपर्युक्त दोनो पदों की प्रामाणिकता सदिग्ध है। मीराँ की छोटी वयस मे ही मीराँ की माता का निधन हो गया था, यही अद्यावधि सर्वमान्य है। भाषा पर भी आधुनिक राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट है।

३

कूडो वर कुण परणीजे माय, परणूँ तो मर मर जाय।
लख चौरासी को चूडलो रे वाला, पहर्‌यो कितीयक वार।
कै तो जीव जानत है सजनी, कै जाने सिरजणहार।
सात वरस की मैं राम आरध्यौ, जव पाया करतार।
मीराँ ने परमातम मिलीया, भव भव का भरतार॥ ३॥†

यह पद श्री भटनागर जी द्वारा प्राप्त हुआ है। पदाभिव्यक्ति मे अर्थ सगति नही है। अत पद को प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

४

म्हॉने गुरु गोविन्द री आण, गोरल ना पूजाँ।
और जो पूजो गोरज्या जी, थे क्यूँ न पूजो गोर।
मन वाँछत फल पावस्यो जी, थे क्यूँ पूजो और।
नहिं हम पूजाँ गोरज्याँ जी, नहिं पूजाँ अनदेव।
वाल सनेही गोविन्दो, साध सता को काम।
थे वेटी राठोडाँ की, थाँने राज दियो भगवान।
राज करे ज्याँने करने दीज्यो, मैं भगता री दास।

सेवा साधू जनन की, म्हाँरे राम मिलण की आस।
लाजै पीहर सासरो, माइतणौ मौसाल।
सब ही लाजै मेडतिया जी, थाँसू बुरा कहै ससार।
चोरी करूँ न मारगी[1], नहि मै करूँ अकाज।
पुन्न के मारग चालताँ, झक मारो ससार।
नहि मै पीहर सासरे, नहि मै पिया जी की साथ।
मीराँ ने गोविन्द मिलिया जी, गुरू मिलया रैदास ॥४॥

पाठान्तर—१

साधो रो संग निवारो राई[2], भाभी जी गोरल पूजो जी राज।
साइयाँ[3] पूजे गोर ने थे पूजो गणगोर, मन बाँछत फल पावस्यौ।
भाभी जी रुठे गणगोर।
नैं पूजूँ गणगौर नैं नहि पूजूँ अनदेव,
वाल सामरो जाको थे नहि जानो भेव।
सेवा सालगराम की साध संता रो काम,
थे, बेटी राठौड़ की, थाँने राज दियो भगवान।
राज करे ज्याँने करन द्यो, मैं सन्तां की दास।
भगति करौं भगवान की, म्हाँरे राम मिलण की आस।
लाजै पीहर सासरो, लाजै या मोसार,
नितरा[4] आवै ओलमा, थाने बुरा कहै ससार।
चोरी न करूँ कुमारगी, नहि कुमाऊ पाप,
पुन रे मारग चालता, म्हासू काई हठ लाग्या छो आप।
कदि[5] ठाकुर परचो[6] दियो, कदि मानी परतीति।
कुल को नातो तोड़ियो, भाभी जी नहि छै राजा की रीति।
नहि जाऊ पीहर सासरे, नहि पिया के पास।
मीराँ सरणै राम के, म्हाने गुरू मिलिया रैदास।

---

१ कुमार्गी होना, २ राजा, ३ सखियाँ, ४ नित्यप्रति, ५ कब, ६ प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाना.

५

मीराँ तो जन्मी मेरता सजनी म्हांरी हे।
आन लियो ओतार[1] पिय म्हांरो गिरधारी।
और सहेली पूजे गोरजा सजनी म्हारी हे।
थे वी पूजो गोर पिय म्हांरो गिरधारी।
और तो पूजे गोरजा हे सजनी म्हांरी हे।
म्हें म्हांको सालिगराम पिय म्हारो गिरधारी।
परोहित उरे[2] बुलाय के हे सजनी म्हारी हे।
मीराँ की लगन लिखाय पिय म्हारो गिरधारी।
पिरोहित वैसो विच जाय के हे सजनी म्हांरी हे।
पौच्यो छै गढ चितौर हे पिय म्हांरो गिरधारी।
गेली भई मीरा वावली सजनी म्हारी हे।
अकल कुमारी[3] वारी वसँ पिय म्हारो गिरधारी।
कागद मीरा मोकल्यां हे सजनी म्हांरी हे।
थारी खुसी परै तो राणा आव पिय म्हांरो गिरधारी।
हाथी सिधारे राणा सात सैं सजनी म्हारी हे।
घुरला वार न पार पिय म्हारो गिरधारी।
नेजे तो आवे चमकता म्हांरी सजनी हे।
उडती आवे छै खेह पिया म्हांरो गिरधारी।
काकड[4] आयो राणा राजई सजनी म्हारी हे।
काकड करहा[5] झुकाय पिय म्हारो गिरधारी।
आय पहुच्यो राणा मेडते सजनी म्हारी हे।
वाजे वहोत वजाय पिय म्हारो गिरधारी।
वागा तो आया राणा राई सजनी म्हारी हे।
तबुवा दिये है तनाय पिय म्हारो गिरधारी।

---

१ अवतार, २ यहाँ, ३ अखड कुमारी, ४ सरहद, ५ मरहद ने अपने सिवर झुका दिये, अर्थात् मरहद के लोगो ने वारात सजाकर आते हुए राणा का विशेष स्वागत किया।

तोरण आया राणा राजई सजनी म्हांरी हे।
कामिण[1] कलस सँवारि पिय म्हांरो गिरधारी।
फेरॉं[2] तो आयां राणा राजई सजनी म्हारी हे।
एक मीराँ की मीराँ दोय पिय म्हारी गिरधारी।
परण पधारियो राणा राजई सजनी म्हारी हे।
पहुच्यो गढ चितौर पिय म्हारो गिरधारी।
महला पधार्‌यो राणा राजई सजनी म्हारी हे।
एक मीराँ की चार मीराँ पिया म्हारो गिरधारी।
सछा उरे बुलाय कै सजनी म्हारी हे।
मीराँ कू समझाय, पिय म्हारो गिरधारी।
समझाये समझे नहिं सजनी म्हारी हे।
बजर सिला विष बाट पिय म्हारो गिरधारी।
वजर सिला बिष बाटियो सजनी म्हारी हे।
पर फेटा बीच छानि पिय म्हारो गिरधारी।
पर फेटा बीच छानियो सजनी म्हारी हे।
देवो मीराँ जी को जाय पिय म्हांरो गिरधारी।
चरनोदक आरोग्यो[3] सजनी म्हांरी हे।
दूनो बढयौ छै सनेस[4] पिय म्हारो गिरधारी।
पगा जू बाधे घूघरा, सजनी म्हारी हे।
गावै छै गुन गोविन्द पिय म्हारो गिरधारी।
पटका[5] खोल पगा पर्‌यो सजनी म्हारी हे।
अपनो गुरुजी बताय पिय म्हारो गिरधारी।
म्हारो गुरु रैदास है सजनी म्हारी हे।
पढ़े सुने फल होय पिय म्हारो गिरधारी ॥५॥ †

लगभग एक ही भावना को व्यक्त करने वाले उपर्युक्त दोनों ही पद विशेष ध्यान देने योग्य है। पहले पद से यह स्पष्ट नहीं होता कि

---

१ घर में काम करने वाले नौकर, २ भाँवरे, ३ खा लिया, ४ स्नेह, ५ दरवाजा।

वार्तालाप किस विशेष व्यक्ति से हो रहा है। पहले पद (नं० ४) के दूसरे पाठ से वार्तालाप का किसी ननद के साथ होना और दूसरे पद (नं०५) से वार्तालाप का किसी सखी के साथ होना ही स्पष्ट होता है। साथ ही इस पद (नं० ५) की कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं। पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट है कि मीराँ का विरोध न केवल गोर–पूजा से है अपितु राणा के साथ निश्चित किए गए विवाह से भी है। परन्तु इस विरोध के बावजूद भी मीराँ का विवाह हो जाता है। चित्तौड़ पहुँच कर भी मीराँ राणा की कुल परम्पराओ को स्वीकार नही करती। अत: विष देने की योजना की जाती है। इस योजना मे निष्फल हो राणा प्रायश्चित करते हैं तथा मीराँ के गुरु को जानने की इच्छा प्रकट करते हैं। यह "रैदास" कौन हो सकते हैं? मीराँ द्वारा बार बार "रैदास" को अपना गुरु बताना भी एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है।

६

दे माई म्हाको गिरधर लाल।
थारे चरणा की आनि करत हो, और न मणि लाल।
नात सगो परिवारो सारो, मने लागे मानो काल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, छवि लखि भई निहाल ॥६॥†

उपर्युक्त पद प्रियादास कृत "भक्तमाल" की टीका मे आए उद्धरण का ही गेय-रूपान्तर मात्र सिद्ध होता है।

७

मीराँ ए ज्ञान धरम की गाठडी, हीरा रतन जडाओ जी।
लोग थांरी निन्दरा करें, साधा मे मत जाओ जी।
कुण गुरु समझायो, घर को धन्धो छोडचो जी।
लोग थांरी निन्दरा करें, साधा मे मत जाओ जी।
कने कहोगी वाई माइडी, कणे कहोगी वाई बीरो जी?
कूण थारा पगलिया चापसी, कूण बूझे मन री बात?
बुढी टेढी म्हारी मायडी, बीरा भर्यो ससार।

पावड़ीं[1] पगलिया चापसी[2] माला वुझैं मन की वात ।
हरिदास दर्जी की बीनती जी, धोला[3] वस्तर सिमाओ जी ।
देर नगारो[3] मीराँ चढ गयी, माता हियो मत हारो जी ।
बागां मे बोली कोयली, बन में दादुर मोर ।
मीराँ ने गिरिधर मिलिया जी, नागर नन्द किशोर ॥७॥†

उपर्युक्त पद से यह अज्ञात ही रह जाता है कि ऐसी दृढ अभिव्यक्ति किसके प्रति हुई ? बहुत सम्भव है कि यह हरिदास दर्जी नामक कोई "रैदासी" संत ही मीराँ के गुरु "रैदास" हों।

८

कोई कछु कहो रे रंग लाग्यो, रंगलाग्यो भ्रम भाग्यो ।
लोग कहै मीराँ भई बावरी, भ्रम दूनी ने खा गयो ।
कोई कहै रंग लाग्यो ।
मीराँ साधा मे यूँ रम बैठी, ज्यूँ गूदड़ी मे तागो ।
सोने मे सुहागो ।
मीराँ सूती अपनें भवन मे, सतगुरु आय जगा गयो ।
ज्ञानी गुरु आय जगा गयो ॥८॥†

९

थाने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी ।
राणे रोस कियो था ऊपर, साधो मे मत जारी ।
कुल को दाग लगै छे भाभी, निन्दा हो रही भारी ।
साधो रे संग बन बन भटको, लाज गमाई सारी ।
बडा घरा मे जन्म लियो छै, नाचो दै दै तारी ।
वर पायो हिंदुवाणे सूरज, अब विदल मे काई धारी ।
मीराँ गिरधर माध संग तज, चलो हमारे लारी ।

---

१ खडाऊ या चप्पल, २ दबावेगी, ३ डके की चोट,

मीराँ : मीराँ बात नही जग छानी, ऊदाँ समझो सुघर सयानी ।
साधू मात पिता मेरे, सजन सनेही ग्यानी ।
संत चरण की सरण रैण दिन, सत्त कहत हू बानी ।
राणा ने समझाओ जाओ, मैं तो बात न मानी ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, संता हाथ विकानी ।

ऊदाँ : भाभी ! बोलो बात विचारी ।
साधो की सगति दुख भारी, मानो बात हमारी ।
छापा तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारी ।
रतन जडित पहिरो आभूषण, भोगो भोग अपारी ।
मीराँ जी थे चालो महल में, थाँने सोगन म्हारी ।

मीराँ : भाव भगत भूपण सजे, सील सतो सिंगार ।
ओढी चूनर प्रेम की, म्हारो गिरधर जी भरतार ।
ऊदाँ बाई मन समझ, जाओ अपने धाम ।
राज पाट भोगो तुम ही, हमसे न तासूँ काम ॥९॥

१०

म्हारी बात जगत सूँ छानी, साधा सूँ नहीं छानी री ।
साधू मात पिता कुल मेरे, साधू निरमल ग्यानी री ।
राणा ने समझाओ बाई, (ऊदाँ) मैं तो एक न मानी री ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सतन हाथ विकानी री ॥१०॥†

इस पद को स्वतन्त्र पद न मानकर पद स ७ की ही कुछ पक्तियो "मीराँ गिरिधर ...... हाथ बिकानी" का ही गेय रूपान्तर मानना अधिक युक्ति-सगत प्रतीत होता है। प्रथम पक्ति के सिवा अन्य पक्तियों पर ब्रजभाषा की छाप स्पष्ट है।

११

भाभी मीराँ ! कुल ने लगायी गाल, ईडर गढ़ ते आया ओलमा[1] ।
बाई ऊदाँ ! थाँरे म्हाँरे नातो नाहि, बासो वस्या का आया जी ओलमा ।
भाभी मीराँ ! साधाँ को संग निवारि, सारो सहर थाँरी निन्दा करै ।
बाई ऊदाँ करे तो पड़्या झख मारो, मन लाग्यो रमता राम सूँ ।
भाभी मीराँ पहरो नी मोत्या को हार, गहणो पहर्‌यो रतन जड़ाव को ।
बाई ऊदाँ छोड्यो मोत्या को हार, गहणो तो पहर्‌यो सील सन्तोष को ।
भाभी मीराँ ! औराँ के आवे छै आच्छी[2] रूढ़ी जान,
थाँरे आवे हरिजन पावनाँ ।
बाई ऊदाँ चौवसियाँ[3] झाँक, साधाँ को मडल लागे सुहावणो ।
भाभी मीराँ ! लाजे गढ चितौड़, राणो जी लाजै गढ रा राजवी ।
बाई ऊदाँ ! तार्‌यो तार्‌यो चित्तौड़, राणा जी तार्‌या गढ रा राजवी ।
भाभी मीराँ ! लाजै लाजै थारा मायड़ बाप, पीहर लाजै जी मेड़तो ।
बाई उदाँ ! तार्‌या म्हे तो मायड़ बाप, पीहर तार्‌यो जी मेड़तो ।
भाभी मीराँ ! राणा जी कियो छै था पर कोप, रतन कचोले विष घोलियो ।
बाई ऊदाँ ! घोल्यो तो घोलवा द्यो कर, चरणामृत वो ही म्हे पीवस्यां ।
भाभी मीराँ ! देखतड़ा ही मर जाय, विष तो कहिए वासक नाग को ।
बाई ऊदाँ ! नही म्हारे माय र बाप, अमर डाली धरती झेलिया ।
भाभी मीराँ ! राणा उभा छै थारे द्वार, पोथी मागें छै थारे ज्ञान की ।
बाई ऊदाँ ! म्हारी खाड़ा री धार, ज्ञान निभावन राणा छै नही ।
भाभी मीराँ ! राणा जी रो वचन न लोप, उन रूठ्या भीड़ी कोऊ नही ।
बाई ऊदाँ ! रमापति आवे म्हारी भीड़, अरज करू छूँ तासू बीनती ॥११॥†

१२

भाभी मीराँ हो साधा को सग निवारि,
थारी लोक निन्दा करै ।

---

१ निवायत २ भली सुन्दर, ३ बरामदा ।

वाई ऊदाँ हो लोकां ने लोकां रो भाव,
म्हे म्हांको राम लड़ावस्यां ।
भाभी मीरां हो लाजे सेस[1] मेवाड़,
लाजै कुम्भा जी रो वैसणो[2] ।
भाभी मीराँ हो लाजै नो कोटि मारवाड़,
लाजै दूदा जी रो मेड़तो ।

भाभी मीराँ हो लाजै माई मोसाल, लाजै हो पीहर थारो सासरो ।
भाभी मीराँ हो थापरि राणो कोपिया, बाटकड़े विप घोलने ।
वाई ऊदाँ हो साथरी[3] सेज बिछाई, नैणा मे विप सचर्‌यो[4] ।
वाई ऊदाँ मदर भयो है उजास, सही साध रो तारण आवई ।
वाई ऊदाँ, दूधा पखालूँ हरि रा पाव, रतन जड़ित गोविन्द जी ने वैसणो ।
वाई ऊदाँ हूँ मोत्या थाल भराई, करस्या गोविन्द जी री आरती ।
राणा जी रो वाघेला थेल्यो ने मीराँ जी, खवरि मुइ के जीवै मीराँ मेडती ।

राणा सिसोद्या वाजे छै ताल मृदंग,
वाजै छै गोविन्द जी रा घूघरा ।
राणा सिसोदिया झालर रो झणकार,
नारद सग मीराँ निरत करे ।
भाभी मीराँ हो खोलो ने दुवार,
ऊभो राणा जी विनती करे ।
वाई ऊदाँ थे राणा ने रावले[5] मेल्हि,
कुल रो ही नातो म्हारे कोई नहीं ।
भाभी मीराँ हो खोली ने धरम दुवार,
पथीड़ो दिखावौ ताहरा देवरो[6] ।
वाई ऊदाँ हो पंथडो खाड़ा री धार,
पथड़ो निवाहनहारो कोई नहीं ।

---

१ सौ अर्थात् सौ सौ वार मेवाड लजाता है। २ वास स्थान ३ गुदडी, ४ व्याप गया। ५ राणा के खवासो के रहने के लिए बनाया गया महल विशेष, ६ मदिर।

११

भाभी मीराँ ! कुल ने लगायी गाल, ईडर गढ ते आया ओलमा[1] ।
वाई ऊदाँ ! थाँरे म्हाँरे नातो नाहि, वासो वस्या का आया जी ओलमा ।
भाभी मीराँ ! साधाँ को सग निवारि, सारो सहर थाँरी निन्दा करै ।
वाई ऊदाँ करे तो पड़्या झख मारो, मन लाग्यो रमता राम सूँ ।
भाभी मीराँ पहरो नी मोत्या को हार, गहणो पहर्यो रतन जड़ाव को ।
वाई ऊदाँ छोड्यो मोत्या को हार, गहणो तो पहर्यो सील सन्तोष को ।
भाभी मीराँ ! औराँ के आवे छै आच्छी[2] रूढ़ी जान,
थाँरे आवे हरिजन पावनाँ ।
वाई ऊदाँ चौवसियाँ[3] झांक, साधाँ को मंडल लागे सुहावणों ।
भाभी मीराँ ! लाजे गढ चितौड़, राणो जी लाजै गढ रा राजवी ।
वाई ऊदाँ ! तार्‌यो तार्‌यो चित्तौड़, राणा जी तार्‌या गढ रा राजवी ।
भाभी मीराँ ! लाजै लाजै थारा मायड़ वाप, पीहर लाजै जी मेड़तो ।
वाई उदाँ ! तार्‌या म्हे तो मायड़ वाप, पीहर तार्‌यो जी मेड़तो ।
भाभी मीराँ ! राणा जी कियो छै थां पर कोप, रतन कचोले विष घोलियो।
वाई ऊदाँ ! घोल्यो तो घोलवा द्यो कर, चरणामृत वो ही म्हे पीवस्या ।
भाभी मीराँ ! देखतडा ही मर जाय, विष तो कहिए वासक नाग को ।
वाई ऊदाँ ! नही म्हारे माय र वाप, अमर डाली धरती झेलिया ।
भाभी मीराँ ! राणा उभा छै थारे द्वार, पोथी मागे छै थारे ज्ञान की ।
वाई ऊदाँ ! म्हारी खाड़ा री धार, ज्ञान निभावन राणा छै नही ।
भाभी मीराँ ! राणा जी रो वचन न लोप, उन रूठ्या भीड़ी कोऊ नही ।
वाई ऊदाँ ! रमापति आवे म्हारी भीड़, अरज करू छूँ तासू वीनती ॥११॥†

१२

भाभी मीराँ हो साधा को संग निवारि,
थारी लोक निन्दा करै ।

---

१ निरायन, २ भली सुन्दर, ३ वगम्दा ।

वाई ऊदाँ हो लोका ने लोकां रो भाव,
म्हें म्हाको राम लड़ावस्यां ।
भाभी मीरां हो लाजे सेस[1] मेवाड़,
लाजै कुम्भा जी रो वैसणो[2] ।
भाभी मीराँ हो लाजै नो कोटि मारवाड़,
लाजै दूदा जी रो मेड़तो ।

भाभी मीराँ हो लाजै माई मोसाल, लाजै हो पीहर थारो सासरो।
भाभी मीराँ हो थापरि राणो कोपिया, वाटकड़े विप घोलने।
वाई ऊदाँ हो साथरी[3] सेज विछाई, नैणा मे विप सचर्‌यो[4]।
वाई ऊदाँ मदर भयो है उजास, सही साध रो तारण आवई।
वाई ऊदाँ, दूधा पखालूँ हरि रा पाव, रतन जड़ित गोविन्द जी ने वैसणो ।
वाई ऊदाँ हूँ मोत्या थाल भराई, करस्यां गोविन्द जी री आरती।
राणा जी रो वाघेला थेल्यो ने मीराँ जी, खवरि मुइ के जीवै मीराँ मेडती।

राणा सिसोद्या वाजे छै ताल मृदंग,
वाजै छै गोविन्द जी रा घूघरा ।
राणा सिसोदिया झालर रो झणकार,
नारद संग मीराँ निरत करे ।
भाभी मीराँ हो खोलो ने दुवार,
ऊभो राणा जी विनती करे ।
वाई ऊदाँ थे राणा नें रावले[5] मेल्हि,
कुल रो ही नातो म्हारे कोई नही ।
भाभी मीराँ हो खोली ने धरम दुवार,
पधीडो दिखावौ ताहरा देवरो[6] ।
वाई ऊदाँ हो पथडो खाडा री धार,
पथड़ो निवाहनहारो कोई नही ।

---

१ सौ अर्थात् सौ सौ वार मेवाड लजाता है। २ वास स्थान ३ गुदडी, ४ व्याप गया। ५ राणा के खवासो के रहनेके लिए बनाया गया महल विशेष, ६ मदिर।

११

भाभी मीराँ ! कुल ने लगायी गाल, ईंडर गढ ते आया ओलमा[1] ।
वाई ऊदाँ ! थाँरे म्हाँरे नातो नाहि, वासो वस्या का आया जी ओलमा ।
भाभी मीराँ ! साधाँ को सग निवारि, सारो सहर थाँरी निन्दा करै ।
वाई ऊदाँ करे तो पड़्या झख मारो, मन लाग्यो रमता राम सूं ।
भाभी मीराँ पहरो नी मोत्या को हार, गहणो पहर्यो रतन जड़ाव को ।
वाई ऊदाँ छोड्यो मोत्या को हार, गहणो तो पहर्यो सील सन्तोष को ।
भाभी मीराँ ! औराँ के आवे छै आच्छी[2] रूढ़ी जान,
थाँरे आवे हरिजन पावनाँ ।
वाई ऊदाँ चौबसियाँ[3] झांक, साधाँ को मडल लागे सुहावणो ।
भाभी मीराँ ! लाजे गढ चितौड, राणो जी लाजै गढ रा राजवी ।
वाई ऊदाँ ! तार्यो तार्यो चित्तौड़, राणा जी तार्या गढ़ रा राजवी ।
भाभी मीराँ ! लाजै लाजै थारा मायड़ वाप, पीहर लाजै जी मेड़तो ।
वाई उदाँ ! तार्या म्हे तो मायड़ वाप, पीहर तार्यो जी मेड़तो ।
भाभी मीराँ ! राणा जी कियो छै था पर कोप, रतन कचोले विष घोलियो।
वाई ऊदाँ ! घोल्यो तो घोलवा द्यो कर, चरणामृत वो ही म्हें पीवस्यां ।
भाभी मीराँ ! देखतडा ही मर जाय, विष तो कहिए वासक नाग को ।
वाई ऊदाँ ! नही म्हारे माय र वाप, अमर डाली धरती झेलिया ।
भाभी मीराँ ! राणा उभा छै थारे द्वार, पोथी मागे छै थारे ज्ञान की ।
वाई ऊदाँ ! म्हारी खाड़ा री धार, ज्ञान निभावन राणा छै नही ।
भाभी मीराँ ! राणा जी रो बचन न लोप, उन रूठ्या भीड़ी कोऊ नही ।
वाई ऊदाँ ! रमापति आवे म्हारी भीड़, अरज करु छूं तासू वीनती ॥११॥†

१२

भाभी मीराँ हो साधा को संग निवारि,
थारी लोक निन्दा करे ।

१ सिरायत, २ भली सुन्दर, ३ बरामदा ।